□□

तारा जीवन के उस दौर में प्रवेश कर चुकी थी जब इन्सान अपने और वातावरण के सम्बन्ध में संजीदगी से सोचने लगता है। बीती हुई ग़लतियों को समझता है, परन्तु उनको याद करके मज़ा भी महसूस करता है। ढंग का जीवन शायद इसी प्रकार के जीवन का नाम है।

तारा के बालों में सफ़ेद तार दिन-ब-दिन बढ़ रहे थे, परन्तु उसकी आँखों ने वह चमक न खोई थी जो जीवन और बुद्धिमत्ता की पहचान है। गालों पर कभी तो लाली फूटी होगी। थोड़ी-सी झलक अब भी उसके शानदार जीवन की गवाही देती है।

बरसों पहले वह किसी दूर के स्थान में पैदा हुई। जिस वातावरण में आँख खोली, उसकी इच्छा-शक्ति ने उस वातावरण के साथ मेल न खाया और वह सुर-संगीत की लहरों पर बहती पूना से आ मिली और उसी की होकर रह गई। उसकी सारी इच्छायें और भावनायें गीतों में ढलकर पूना से ऐसे सम्बन्धित हो गईं जैसे वह उसकी आत्मा की मंजिल था।

पूना ने उसे जैसा चाहा बना दिया। परन्तु एक बात वह पूना की इच्छा के बावजूद न छोड़ सकी। वह गाती थी और खूब गाती थी।

पूना उसे डांटता कि गाना-बजाना अच्छी औरतों का काम नहीं, परन्तु वह चोरी-चोरी रियाज़ करती। उसका शौक कम न हुआ। उसके गीत कुञ्ज की अकेली जिन्दगी में यूँ बस गये जैसे बेले के घने वृक्षों में हवा।

पूना के साथ ऐसी अकेली ज़िन्दगी उसके सपनों की मंज़िल थी, जो पूरी भी थी और अधूरी भी। इस अधूरेपन को वह अपने गीतों से पूरा करती। पूना उसको टोकता रहता। परन्तु वह गाती जाती।

यूँ उसकी इस कला का प्रशंसक भी वही था। वही सुनने और सराहने वाला। वही आलोचना करके दिल तोड़ने वाला। दोनों इस अकेली ज़िंदगी में हँसते-खेलते, उकताते, घबराते एक-दूसरे के साथी थे।

शुरू-शुरू में तारा को कुछ उलझन हुई। वह सोचती यहाँ से भाग जाये, किसी आबादी में जाकर फिर एक बार गुम हो जाये। हाँ, वह पूना को विवश करेगी, तारा दिल में सोचती। और दूसरी बहुत-सी बातों के सम्बन्ध में ग़ौर करके उसके विचारों की धारा बदल जाती और भागने की बजाये इस क़ैद की ठंडी घुटन में साँस लेना और जीना उसे अधिक अच्छा लगता। किसी ज़माने में उसने यही चाहा था कि वह हो, पूना हो, और कोई अकेला स्थान हो—अब यह सब कुछ तारा के पास था। यहाँ उन्हें तंग करने के लिये कोई न आ सकता था। वे दुनिया को बहुत पीछे छोड़ आये थे।

पूना और तारा ने जिन्दगी को एक ही रुख से देखा, उसके कष्टों से भागना चाहा, और उसकी सहूलियतों से प्यार किया। तारा समझती थी कि अब वे इस जिन्दगी से भाग नहीं सकते। वे जिन्दगी की आवश्यकताओं के सामने ठहर न सके थे। भरी दुनिया में वे अपनी बातें मनवा न सके थे। वे कमज़ोर थे। परन्तु बड़े हौसले से उन्होंने एक नई दुनिया बसा ली। उन्होंने अपनी तरफ से जिन्दगी के महत्त्व को झुठलाया नहीं। वे तो बस उसके साथ एक समझौता किये हुए थे। तारा ने सब कुछ त्याग कर पूना को प्राप्त कर लिया था।

□□

नदी के किनारे से थोड़ा हटकर हरियाली में गिरा हुआ झोंपड़ा दूर से वृक्षों का झुंड दिखाई देता। सूखी टहनियों और सरकण्डों की बाढ़ पर इश्कपेचा की बेल लिपट जाने से आँगन सा बन गया था। यह तारा और पूना का घर था। उनके रहने के लिये दो कोठरियाँ, बकरियों के लिये एक छप्पर, मुर्गियों का दरबा—इस भरे-पूरे घर में तारा की पालतू मुर्गियाँ किटकिटाती फिरतीं, पूना की बकरियों के मेमने मिमियाते। इस स्थान पर रहने के पश्चात् पूना को जंगल के एक भाग की चौकीदारी मिल गई थी। साथ ही वह बकरियों का कारोबार भी करता। वह उनसे घरेलू आवश्यकताओं को पूरा करता। किसी बकरी को बेचकर जब वह दो-चार नोट तारा के हाथ में थमाता तो वह उसे चिढ़ाने के लिये कहती—

'बड़े मूर्ख हो, जिस चाम से प्रेम करते हो उसी के दाम खरे कर लेते हो।'

पूना हँस कर जवाब देता—

'तुम से भी तो प्यार करता हूँ।'

तारा तुरन्त पकड़ लेती—

'हाँ-हाँ, वह तो मैं ही धन्य हूँ।'

पूना सर खुजाते हुए सोचता, तारो सच ही कहती है।

वे एक-दूसरे की आँखों में झाँक कर जीते रहे। यह जीना एक पक्की आदत बन गई—यही कारण था कि पूना जब भी शहर जाता तारा के लिये कोई न कोई नई चीज़ उठा लाता। 'ले देख, मैं तेरे लिये क्या लाया हूँ। सारा दिन बेकार पड़ी सड़ा करती है, इनके अंडों के

बच्चे निकलवा लेना, जी बहला रहेगा।'

तारा के संजीदा चेहरे पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। पूना को उसके अपनेपन की कितनी चिन्ता थी। उन्हें बात करने के लिये एक और दिलचस्प विषय मिल गया। विलायती मुर्गियाँ और विलायती चीज़ें—देश के माल और विदेश के उपहार—कितने ही विषय थे जिन पर वे बात करते। कई घंटे गुज़ार देते। बात मुर्गियों से शुरू हुई, और कहीं की कहीं चल निकली। ऐसे में पूना अपनी जानकारी का खूब रौब जमाता। मुर्गों की कहानियाँ सुनाता—बादशाहों, नवाबों के भाग्य के पाँसे पलटते—जीत और हार के दृश्य खींचे जाते—इतिहास में मुर्गे के स्थान और महत्त्व पर लेक्चर देने के बाद पूना तारा की ओर प्रशंसा प्राप्त करने जैसी नज़रों से देखता। तारा शहरों और बस्तियों के बारे में सोचती-सोचती पता नहीं कहाँ गुम हो जाती। पूना झुँझला कर कहता—

'ऐ, सुना कि नहीं सुना? तारो, तू बैठी-बैठी कहाँ खो जाया करती है? यह सब कुछ तुम्हें अच्छा नहीं लगता?'

तारा चौंक पड़ती।

'नहीं तो, कैसी बातें करते हो।'

'किसी बस्ती में चल बसें।' पूना पूछता।

'नहीं, मैं कभी-कभी पिछले जीवन की भूल-भुलैयों में खो जाती हूँ।'

ऐसे अवसर पर पूना तारा के मन को टटोलने की चेष्टा करता और उसे बहलाने के लिये उसे गाने को कहता। तारा अपने तानपूरे से मिट्टी झाड़ लेती, कोई भूला-बिसरा गीत ओठों पर आ जाता, सोये हुए सुर-संगीत जाग उठते—

मोरे मन का मन्दिर सूना रे,
हाय कौन बुझाय गयो दीप।

सुर का सागर उमड़ आता और पूना की आत्मा उसमें नहा कर निखर जाती। तारा की उँगलियाँ तानपूरे के तारों पर तेज़ी से नाचते-

नाचते उस समय थमतीं जब पूना की भीगी आँखें मुँद जातीं और डोलता हुआ सर तारा की गोद में गिर जाता।

□□

समय गुज़रता गया। उनके घर की रौनक़ बढ़ती रही। पालतू जानवरों के कारण बहुत चहल-पहल थी। जीवन बड़े ढंग और मस्ती से गुज़र रहा था। छोटी-मोटी आपसी लड़ाइयाँ भी हो जातीं जो मियाँ-बीवी के भीतरी सम्बन्ध को और भी मज़बूत कर जातीं और उनमें प्यार भर देतीं। कभी पूना ने तारा की मुर्गी को कोसा तो वह चीख-चीख कर हलकान हो गई और चली जाने तक की धमकी दे दी। वह बिना सोचे-समझे धौंस जमा देती और पूना सचमुच उसके रौब में आ जाता। कहीं किसी बकरी ने उल्टी-सीधी जड़ी-बूटी खा ली—अफारा हो गया—दोनों की जान निकलने को हो आती। बकरी के पेट की सिकाई करते, मसाले चटाते, रात-रात भर जागते, पूना अंधेरा देखता न सबेरा, भागा हुआ कस्बे तक जाता, दवाइयाँ आ जातीं, प्रार्थनायें की जातीं। और जब बकरी भली-चंगी हो जाती और कुलाँचे भरने लगती तो दोनों शांति की साँस लेते, जैसे उनका अपना बच्चा मौत के मुँह से वापस आ गया हो।

वे ऐसी छोटी-छोटी चिन्ताओं में उलझे रहते। एक कुतिया का मर जाना या बकरी का बीमार हो जाना उनके जीवन पर किस तरह प्रभाव छोड़ सकता है इसके बारे में उन्होंने कभी भी न सोचा था। परन्तु कभी-कभी अपनी ऐसी चिन्ताओं से वे खुद भी चौंक जाते। मगर प्रकृति का क्या पता। प्रकृति की कोख में ही तो इच्छायें पड़ी रहती हैं। इसी प्रकृति के बीच ही कई रास्ते सहल हो जाते हैं और कई चीज़ें कठिन लगती हैं।

तारा और पूना ने जीवन का प्रारम्भिक रास्ता हँसते-मुस्कराते, एक-दूसरे के हाथ में हाथ दिये तय किया। पहली मंजिल पर एक नया मोड़ आया। यह रास्ता घरेलू-जीवन की मंजिल को जाता है। इसके लिये केवल भावुक होने की आवश्यकता नहीं, इसके लिये कई बातों को सोचना होता है, कई दूसरी कठिनाइयों को भी ध्यान में रखना होता है। भावनाओं के तेज़ बहाव पर बुद्धि प्रहार तक कर सकती है।

□□

अपनी अलग दुनिया में पाँव जम गये तो एक बार फिर उन्हें एक दूसरे को तौलना पड़ा। एक बार फिर एक साथ रहने, मरने, जीने की शपथ खाई।

तारा की कल्पना वास्तविकता में ढलने के सपने देखती। नन्हे-मुन्ने, नर्म और गर्म हाथों के स्पर्श की इच्छा, बाहों में किसी जीवित मासूम मूरत को झुलाने की इच्छा, यह मूरत इतनी जीवित हो जितनी वह खुद। पूना तारा को उलझन को जानता था। तारा पूना की चिन्ता को समझती थी और महसूस करती थी। मगर बच्चा कोई बेले की झाड़ियों में खिला हुआ फूल तो न था कि तारा उसे तोड़ कर सीने पर सजा ले। वह बाज़ार में बिकती कोई चीज़ न था कि पूना ख़रीद कर तारा की झोली में डाल दे, चाहे वह कितनी मंहगी मिले।

इसमें कौन दोषी था। दोनों एक-दूसरे की आँखों में इस प्रश्न का उत्तर तलाश करते। तारा सोचती यदि वह दोषी प्रमाणित हुई तो वह पूना के जीवन से निकल भागेगी। इस संदेह को उसने पूना से भी कहा।

उस दिन से वह सहमा-सहमा रहने लगा। तारा उसकी कमज़ोरी बन गई थी।

परन्तु वह उसको ऐसा प्रमाणित ही क्यों होने दे। यदि अकेले वे इस कमी के शिकार हो जाते हैं तो दुनिया उजड़ तो न जायेगी। वह तारा के बिना घर में रौनकें नहीं लाना चाहता। वह चली गई तो सपना अधूरा रह जायेगा। वैसे अब भी अधूरा है, परन्तु कौन जाने उसका दूसरा भाग कैसा हो। उसको नज़र नहीं आता तो देखने की इच्छा को दबा दो, दफ़न कर दो। देखने की चेष्टा के परिणाम भयानक भी तो हो सकते हैं, पूना सोचता रहता, सोचता रहता।

'कहीं वह खुद ही दोषी न हो—यह सोच कर उसकी सांस फूल गई और वह रुक गया। यह विचार अचानक कैसे आ गया। पहले क्यों न आया। उसके माथे पर पसीना आ गया। शर्म के कारण उसके माथे पर पसीना चमक उठा। और उसने थकी हुई आवाज़ में गहरी नींद सोई तारा को पुकारा, फिर झंझोड़ा और चीखकर बोला—

'ऐ तारो! तू रोज़ बका करती है कि तू मुझे छोड़कर चली जायेगी या कस्बे में जाकर मेरी दूसरी शादी कर देगी—और यदि मैं तुझे किसी के साथ ब्याह दूँ तो तुझे कैसा लगे।'

तारा चिनगारी की तरह भड़क उठी—

'तुम्हारी बुद्धि जंगल में रह कर खो गई है। खामखाह नींद खराब करता है। सो जा, सुबह सोच लेना।'

सुबह हुई। रोज़ की तरह दोनों अपने-अपने काम में लग गये। पूना जंगल की रखवाली करने चला जाता, या नदी के पार कस्बे में कुछ चीज़ें खरीदने—इसी तरह दिन रातों में और रातें दिनों में बदलती रहतीं। जो कभी बच्चे का ख्याल आया तो एक दूसरे की कामना में खत्म कर दिया। उनका प्यार और किसी भी चीज़ को दबा देता, सुला देता।

तारा कहती—मेरे गीत मेरे बच्चे हैं और तानपूरा ममता की धारा, जिसकी तान पर मेरे गीत नाचते हैं, खेलते हैं।

पूना गीतों को सुनकर प्रसन्न हो जाता और पल भर को सारी चिन्ताओं से स्वतंत्र आत्मा कहाँ से कहाँ पहुँच जाती। इसके अतिरिक्त अपने को भुलाने के लिये वहाँ बकरियों के मासूम मेमने थे, कुत्ते के शरारती पिल्ले—बड़े तेज़ और तंग करने वाले—अपनी माँ का नाक में दम किये रखते। तारा उनके साथ हर समय लगी रहती।

□□

मूँगा यूं तो इसी घर और वातावरण में पली-बढ़ी थी परन्तु बड़ी होकर ऐसी नीच निकली कि ख़ुदा का खैर। क्रोध में आती तो घर भर को सर पर उठा लेती। सब उस से दबते थे। जिसको चाहती मार-पीट लेती। डराया-धमकाया, चीज़ छीन ली और चट कर गई। हर स्थान पर दनदनाती हुई पहुँच जाती। अच्छी से अच्छी जगह बैठती। जी में आया तो सारा दिन बाहर धूल फाँकती फिरी। वापसी पर दो-चार लातें और घूँसे भी खा लिये।

तारा को उसके पालने में कुछ भूल हो गई थी, या वह थी ही पक्की हड्डी की कि किसी तरह ठीक न रहती थी। तारा को और बहुत से काम थे। किसी को दुहना है, किसी को चारा खिलाना, और किसी को बोलना सिखाना है।

शाम का अँधेरा फैलने लगा था और तारा सोच रही थी कि पूना की वापसी की प्रतीक्षा करे। वह मज़ारों से फसल का हिसाब लेने गया, अभी तक नहीं लौटा। सौदा आदि लेने बाज़ार की तरफ निकल गया

होगा। बस आता ही होगा। इतने में वह तमाम चौपायों को उनके स्थानों पर बाँध दे। तारा को ऊँची आवाज़ में खुद ही बोलते रहने की आदत पड़ गई थी। उसने अपने परिवार के सदस्यों को ठीक तरह से देखा, मूँगा गुम। तारा को एकदम क्रोध आ गया। गालियाँ दीं, मगर तसल्ली न हुई।

सर्दियों की शाम अंधेरी और चुप थी। तारा बार-बार रास्ता देखने उठती। वह परेशान थी। जी चाहता था सर पीटे। या फिर कोई हाथ आ जाये तो पीटते-पीटते उसकी खाल उधेड़ दे—बस जान ही से मार दे—

मूँगा धुंध के पर्दे में से उभरी। वह तेज़ी से घर की तरफ दौड़ी आ रही थी। तारा का क्रोध तेज़ हो गया। मूँगा आते ही उसकी टाँगों से लिपट गई। मगर उसने ऐसी ज़ोर की ठोकर खाई कि च्याऊँ-च्याऊँ करती दूर जा पड़ी। सहम कर तारा की तरफ देखा। झुटपुटे में आँखों का क्रोध दिखाई न देता था। आवाज में भी सारा क्रोध भरा था। मूँगा तारा को मनाने के लिये एक बार फिर पास आई। पाँवों में लोट-पोट होने की इच्छा ही थी कि तारा ने फिर लातों, घूसों और जूतों की बारिश शुरू कर दी। मूँगा ने बड़े आराम से मार खाई। काश वह इन गालियों और शिकायतों के मतलब को समझ सकती तो यूँ देर-देर तक बाहर रहने की हिम्मत न करती। पर वह यह जानती थी कि यह उसका घर है। यहाँ उससे प्यार करने वाले रहते हैं। वह यह न जानती थी कि प्यार की माँगें क्या-क्या हैं।

वह रुई की तरह धुनकी जाने के बाद चुपचाप कोने में दुबक कर बैठ गई। उसके पिल्ले उसके पास इकट्ठे हो गये। वह क्रोध के होते हुए भी ममता दरशा रही थी और हल्की भौं-भौं के साथ उन पर रौब डाल रही थी। थोड़ी देर बाद वह चित लेटी थी और पिल्ले उसके साथ खेल रहे थे। कभी एक को झापड़ दी, कभी दूसरे के कान को हल्का-सा चूम

लिया, और तीसरे को खींच कर अपने बहुत पास कर लिया। तारा अब शान्ति के साथ उसे देख रही थी।—अभी लल्लू ने माँ से प्यार ले लिया और मुन्नी को देखो मां की दुम खींचे जाता है, शैतान। कालू थनों पर मुँह मार रहा है। लो, मूँगा ने एक ठोकर मारी, और वह गिरा।

हरामजादी, इसी तरह तू मुझे तंग करती है। तारा ने एक दुहत्थड़ मूँगा की कमर में दे मारा। पिल्ले सहम गये।

पूना अभी तक नहीं लौटा था। उसके आते ही शिकायतों और सूचनाओं के दफ्तर खुल जाते। मूँगा के आवारा घूमने का रोना, और मिट्टू की प्रशंसा की जाती। तारा ने सारी चेष्टायें कर लीं कि मूँगा भी शेष पालतू जानवरों की तरह ज़रा ढंग से रहे। बेढंगे काम करने की सज़ा के तौर पर उसे चारा सबके बाद में मिलता। झिड़कियाँ खाती रहती, परन्तु फिर भी वह जैसी थी, वैसी ही रही।

पूना से थोड़ा-बहुत दबती थी। उससे झिड़की खाकर झोंपड़ी के अंदर लप-झप घूमने की हिम्मत कम ही करती। कई बार ऐसा भी हुआ कि पूना ने तारा से उसकी शिकायतें सुन लेने पर भी उसे प्यार किया। उस समय मूंगा बड़े ठस्से से चालें दिखाती फिरती। पूना मामला समाप्त करके गप्पों में लग जाता। सारा घर खुश-खुश नज़र आने लगता।

पूना दीपक जल जाने पर घर लौटा। उसे बाज़ार में घूमते-घामते देर हो गई थी। ज़रा घर से बाहर जायें तो मर्दों को सौ तरह के काम याद आ जाते हैं। वह तो जाता भी तीसरे चौथे था। बहुत-सी चीजें लाद-फाँद कर लाता। तारा ने बढ़ कर गठरियाँ पकड़ लीं, और कहा—

'देर क्यों हो गई? मुझे तो हौल आने लगा था।'

'दिन ढले शहर से निकलना हो सका। और नदी के किनारे तक पहुँचते मल्लाहों ने नावें मोड़ ली थीं। तुम जानती हो अंधेरा फैलने के बाद मल्लाह नदी में नाव नहीं डालते। पुल पर से चक्कर काट कर

आना पड़ा। मैं जानता था तू परेशान हो गई होगी। ऊंह, दुनिया से टक्कर लेने वाली अंधेरे से घबराती है, वाह !' वह हँसा।

'हमेशा अंधेरे से भागती रही हूँ, तुम जानते हो।' तारा ने लम्बी ठंडी साँस भरते हुए कहा।

दोनों धीरे-धीरे बातें करते झोंपड़ी के अंदर चले गये। कड़वे तेल के दीपक की रोशनी में तारा ने देखा पूना की आँखों में प्रेम की वही चमक तैर रही है जिसे आयु की संजीदगी ने गहरा कर दिया है। पूना मुँह-धोता तारा से दिन भर की बातें दिलचस्पी से सुनता रहा। वह खाना खा रही थी। मूंगा की बात आने पर पूना ने उसे पुचकार कर पुकारा—'मूँगा बेटा।' तारा क्रोध की आँच में झुलस गई। पूना खाना खाते-खाते रोटी की टुकड़ियाँ मूँगा के आगे डाल रहा था। तारा ने निहोरे के साथ कहा—

'तुम्हारी इन्हीं बातों ने तो उसे बिगाड़ दिया। पूरा नगर घूम आई, फिर लाडो की लाडो। चल दूर हो—'

एक जोरदार लात कमर में पड़ने वाली थी कि मूँगा फुर्ती से वार बचा गई।

'अरे, तू जानवरों के साथ क्यों दुःखी होती है।'

पूना धीरे-धीरे हँसता उसे समझा रहा था।

खाना खत्म करने के बाद आज की खरीदी हुई चीजें खोलीं और एक-एक करके बीवी को दिखाने लगा।

'यह देख, तेरे लिए साड़ी लाया हूँ, और उसमें घर की दूसरी चीजें हैं।' पूना ने गठरी खोलते हुये कहा।

तारा खुश-खुश लिपटी हुई साड़ी की रस्सी खोल रही थी।

'अरे हाँ, मैं तेरी मोती के लिये कंठी भी लाया हूँ।'

पूना ने जेबें टटोलीं। कंठी पकड़ते हुए तारा की आँखें चमकीं। फिर वह निराश होकर बोली—

बैठे थे, उन्हें मित्रों से शत्रुओं में बदलते देर न लगी। माँ मुँह पर चादर डाले कई दिनों तक बैन करती रही, 'काश वह पैदा न होता, काश वह मर जाता।'

पूना ने ज़िन्दगी के बहुत-से रंगीन मोड़ देखे और दिखाये थे। वह कस्बे में रंगीला जवान प्रसिद्ध था। महफ़िलों की जान, और मेलों-त्योहारों में शान पैदा करने वाला। नौजवान उससे मिलाप रखने में अपने को ऊँचा समझते और बुजुर्ग उस पर भरोसा करते थे। घोड़ी दौड़ाता हुआ किसी गली से गुज़र जाता तो गलियाँ दिल थाम लेतीं। वहाँ जिन्दगी दौड़ जाती। उसने कई अखाड़े जीते और कई हारे। दसियों मित्र पैदा किये और बीसियों शत्रु।

उसे किसी काम की धुन लग जाती तो फिर उसे अपना होश न रहता। काम में यूँ लग जाता जैसे वह केवल यही काम करने के लिए पैदा किया गया हो। वह किसी का हस्तक्षेप पसंद न करता। उसे माँ के अत्यधिक लाड़-प्यार ने बिगाड़ा था। उसी से कुछ दबता भी था। उसे बड़े भाई का लिहाज़ बस आँख की शर्म तक था। उसने अपने लिये रास्ते से अलग हटकर कुछ उसूल बना लिए थे और वह केवल उन्हीं को मानता था। वह अपने-आपको बहुत ऊँची चीज़ समझता था। परन्तु वह कई लोगों को इसी कारण पसंद भी न था। मगर वह इन सबकी चिन्ता नहीं करता था। समाज का जीवित व्यक्ति वही है जो उससे टकराता है। सोसाइटी पत्थर की वह सिल है जिस पर घिस कर इन्सान खरा-खोटा प्रमाणित होता है।

पूना अपनी तरफ से उसूलों को बड़ी सख्ती से मानने वाला था। उसके विचार में यह राजपूती खून के कारण था। वह हर काम में लगन और संजीदगी चाहता था। यही कारण था कि सफलता की देवी अक्सर उसके साथ-साथ रही। पूना का भरोसा बढ़ता गया।

परन्तु इस इतने भरोसे के कारण, जिसे उसका गर्व भी कहा जा

सकता है, कइयों के दिल टूट जाते। तब पूना को भी ठेस पहुँचती। वह उदास रहता। किसी से न बोलता। किसी से कुछ न कहता। अन्त में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता कि वह दूसरों की राय अवश्य लिया करेगा। माँ की बातों पर चलने की चेष्टा करेगा। परन्तु फिर अवसर आने पर सब कुछ भूल जाता।

इन्सान की खुशियों में दूसरों का हाथ अवश्य है, पर उसके दुःखों में केवल उसका अपना। दुःख के झरने सीने में से फूटते हैं, यह बात अलग है कि उनकी लपेट में दूसरे भी आ जायें। वे क्यों आते हैं? कोई उनके दिलों से पूछे—पूना पर सोच विचार का दौरा कभी-कभी पड़ता था। वह उदास हो जाता। फिर सोचते-सोचते सारे दुःख, सारी तोहमतें अपने पर धर कर आराम महसूस करता। ज़िन्दगी अपने तमाम शोख़ रंगों के साथ लौट आती। और वह माँ के पाँव पकड़कर बड़े प्यार से कहता—

'माँ, मैं तेरा कहा कभी नहीं टालूँगा। माँ, तू तो स्वर्ग है। तुमसे मुँह मोड़ना नरक में जाने के समान है। क्षमा कर दो—क्षमा कर दो, माँ।'

वह माँ के सामने छोटे-से बच्चे की तरह मचलता। माँ मुस्कराती तो वह सोचता—ममता वह मीठा अमृत है जो हर आयु के प्राणी को शान्ति देता है।

परन्तु माँ जानती थी कि वह केवल बातें ही बनाना जानता है। वह करेगा वही जो उसके जी में आयेगा। उससे माँ को प्यार था, परन्तु भरोसा न था। वह उसका मुकाबला अपने बड़े बेटे से करती तो उसे पूना में कोई अच्छाई नज़र न आती। अगर खुदा उसे अच्छा डील-डौल न देता तो शायद उसे कोई मुँह भी न लगाता। वह यह न जानती थी कि बेटे के मिज़ाज ने लोगों को उसके प्रति आकर्षित किया है। कोई उससे दूर नहीं रह सकता।

गाँव में उसके बड़े भाई को तो कोई भी इतना न जानता था। सभी बड़ी बी को पूना की माँ और भाई को पूना का भाई कह कर पुकारते थे।

सफलता की शक्ल में फूल मिले तो हँस लिए, असफलता में गालियाँ और जूते पड़े तो ढिठाई से सह लिये। वह हर हाल में हँसता हुआ घर लौटता तो सबसे अधिक भाभो को खतरे की लाल झंडी दिखाने का ख्याल आता। वह उसे कभी क्षमा न करती थी। हमेशा ताना देती—

'गाँव में दनदनाता फिरता है, शरीफ़ की औलाद—मैं तो अपनी बहन का कभी भी रिश्ता न जोड़ने दूँ।'

वह सास को सुना कर कहती।

पूना माँ की बजाय खुद उत्तर देता—

'हम कौन-सा तकिया किये बैठे हैं, और हाँ भाभी, तुम मुझे इतना बड़ा क्यों समझती हो। मैं तो इन्सान हूँ, साधारण इन्सान! तुम मुझे फरिश्ता बनाये बैठी हो, मुझे डर है कुछ और न समझने लगो—'

वह ठहाके से हँसता। भाभी हँसती और दिल के सारे कोने टटोलती। पूना कहाँ-कहाँ बड़ा बनकर बैठा है।

'कोई तुमको बड़ा समझे, वाह—'

वह सर पर पड़े हुए आँचल को थोड़ा और खींचते हुए कहती। और पहलू से चेहरे का पसीना पोंछते हुए यूँ देखती जैसे इस बात को स्वीकार रही हो।

पूना शरारत से आँचल उलट कर दौड़ पड़ता। भाभी पंखिया उसकी कमर में दे मारती।

'मना कर लो खाला जान—'

वह सास को पुकारती।

'अम्मा, यह मेरा और भाभी का मामला है, आप मत आइये बीच में।'

भाभी की छोटी बहन के साथ पूना का रिश्ता तय था। भाभी के साथ उसके दो रिश्ते थे, और दोनों बेतकल्लुफी और छेड़छाड़ के—

पूना घूमने-फिरने की आदत के कारण अधिक शिक्षा प्राप्त न कर सका कि किसी बड़े शहर में जाकर अच्छी नौकरी प्राप्त कर लेता। बड़ा भाई निर्माण-विभाग में नौकर था। पूना ने जमीनों की देख-भाल का काम अपने पर लिया। गाँव के भाई-चारे में जिस तरह की दिलेरी और तेजी की आवश्यकता होती है वह पूना में थी। थानेदारों का-सा दबदबा, थोड़ी-सी गुण्डागर्दी, और बहादुरी—यह खूबियाँ उसमें खानदानी ही थीं; कुछ परिस्थितियों ने पैदा कर दीं और आदत बन गईं।

शादी-ब्याह के अवसरों पर लोगों की नज़र फिरती-फिराती उस पर आकर रुक जाती। किसी की क्या हिम्मत कि खाना बनाने के कमरे के बाहर कोई भिखमंगा या नौकर-चाकर खड़ा हो जाये। वह लट्ठ पकड़कर यूँ फिरता जैसे गाँव का नया-नया चौकीदार। मालदार घराने की शादी में वह अपने निकट के मित्रों की उँगलियाँ घी में डुबो देता और किसी को कानों-कान पता न चलता। यही कारण था कि सर कड़ाही में कभी न होने दिया। हिसाब-किताब सब ठीक।

एक तरह से वह कमाऊ-पूत था, न उड़ाऊ। यारों की यारियाँ पालने के लिए कुछ सामान तो हो, और यह सामान घर से कहाँ तक पूरा हो सकता था। उसके यारों में सभी तरह के लोग थे—सैय्यद, शेख, नाई, धोबी—सब उसे यार कहकर पुकारते। वह बिना झिझक उनकी मंडलियों में बैठता-उठता। घर के लोग भुनभुनाते रहते। माँ दूसरों के ताने सुनकर जलती।

'ऐ हे, इससे तो वह लड़की पैदा होता, मार-पीट कर किसी के हवाले कर देती, यह गन्दी बैठक के ताने तो न मिलते।'

पूना कहता—

'शुक्र कर माँ, लड़की न हुआ। किसी पर जी आ जाता तो उसके

साथ भाग जाती—बता फिर तू क्या करती ।'

माँ का दिल सचमुच डर जाता । और वह झोला फैला कर प्रार्थना करती—

'शुक्र है तेरा परवरदिगार, बेटी न हुई । इज्जतदार घराने की बेटी हो और वह इश्क़ करे । अल्लाह रे तोबा, गला न काट देती, जिन्दा न गाड़ देती ।'

एक अजीब-सा डर बूढ़ी माँ पर सवार हो जाता । वह अच्छे घराने की एक साधारण और सीधी औरत थी । उसके वही विचार थे जो परिवार के शेष बड़े-बूढ़े लोगों के थे । कहीं जवान बेटे ने किसी नीच कौम की लड़की पर नज़र झुका दी, तो भी सारा अपराध लड़की के नाम ही जड़ देंगे ।

'कमीनी—मोरी की ईंट चौबारे में लगना चाहती है—दूर हो, दूर । राजा बेटा, ऐसियों के जाल में फँसेगा भला—'

लाडले चाहे मोरी की ईंटों को चाटते फिरें, और ये कमीनियाँ क्या जानें कि उनका महत्त्व क्या है ? इन्हें गिरावट में ही मर जाना आता है ताकि दूसरे जी खोलकर जी सकें । वे ऊँचे लोगों की चाकरी में बने रहने से ही अपने को भाग्यवान समझती हैं । दुनिया की स्टेज पर वे एक्स्ट्रा हैं, केन्द्रीय-पात्र नहीं । वे इसके योग्य ही नहीं समझी जातीं । हालाँकि दिलों को तोड़ने और जोड़ने के तरीके वे भी सीख सकती हैं । वे दूसरों के दिलों को सम्भाल-सम्भाल कर खुद अपने दिल तोड़ लेती हैं । फिर भी वे बड़े लोगों की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण नहीं बन पातीं ।

वह कहीं किसी गूजर की छोकरी से आँख लड़ा आता तो कोई बात भी थी । इस प्रकार का छोटे लोगों में बैठना-उठना सब को खटकता ।

अखाड़े में मेंढे की तरह लड़ने में कोई बुरा नहीं । हर बात में गाली देने से मर्द की मर्दानगी प्रकट होती है । चुस्की लगाकर घर में आने से बाप-दादा का मान बढ़ता है । जो चीज़ पहले से चली आ रही हो, उसे

आगे भी चलाने में तो खानदान का महत्त्व ही है। पूना के घरवालों को ऐसी सब बातें स्वीकार थीं, जो उनके खानदान में पहले भी थीं।

पूना की फूफी बूढ़-कँवारी मर गई। उसके शरीर को किसी मर्द ने नहीं छुआ। वह विधवा थी, बालविधवा। बचपन में शादी हुई। अभी अपने ही घर में थी कि मियाँ मर गया। फिर वह कब जवान हुई, कब उसके तमाम विचार और अहसास समाप्त हो गये, यह कोई नहीं जानता था।

□□

पूना स्वराज-गढ़ी गांव में कुश्ती लड़ने गया। सरपंच के बेटे की शादी पर बड़े-बड़े कार्यक्रम हुए। पूना इतना मंजा हुआ खिलाड़ी कहाँ था। परन्तु उसकी फुरती और शरीर की सुन्दरता अखाड़े को सजा देती। वह अपने सामने वाले पहलवान को इस तरह ललकारने लगता जैसे मैदान अवश्य ही उसके हाथ में रहेगा। उसकी यही अदा लोगों को पसंद आती। इसी अदा को देख कर लोग उसपर पैसे लगा देते, जैसे वह रेस का तेज़ घोड़ा था। परन्तु वह कई बार लोगों की आशाओं पर पानी फेर देता। पंडाल में खड़े लोग उस पर आवाज़ें कसने लगते। वह हँसी में इन आवाज़ों को उड़ा देता। आज मैदान पूना के हाथ रहा। उसके मित्र शर्तें जीत गये। उसका सामने वाला लोगों के शोर से कुछ इस तरह घबरा गया कि पूना ने दो-चार पटखनियों में ही उसे गिरा दिया। देखने वालों को यह अफ़सोस था कि दंगल अधिक देर नहीं चला। पूना हार जाता तो घर वापस चला जाता, पर आज तो वह स्वराज-गढ़ी का हीरो था। फूला-फूला फिरता था वह। सारे गाँव में आज काफ़ी रौनक़ थी।

रंग-बिरंगे दुपट्टे लहरा रहे थे। अल्हड़ लड़कियाँ इधर से उधर अपने शरीर छुपाती फिरती थीं।

आज शादी के जश्न की रात थी। मगर ऐसी शायराना भी नहीं। शायर लोग ऐसी हंगामों भरी रात का वर्णन कब करते हैं। कभी करें भी तो अरमानों के जनाज़े साथ खींच लाते हैं। उनके यहाँ रात की बात चले तो केवल ज़ुल्फ़ों में उलझ कर रह जायेगी। पूना यह रौनक़ देखकर खुश था। वह ऐसे कई कार्यक्रम देख चुका था। परन्तु उसके लिये यह रात इसलिये अधिक महत्त्वपूर्ण थी कि आज वह जीत गया था। उसे हर चीज़ बेहद सुन्दर नज़र आ रही थी।

रात के खाने से छुट्टी पाकर लोग पंडाल में फिर से इकट्ठे हो गये। चाँद कई हाथ उभर आया। महफ़िल में बैठे बड़े लोगों के लिये दायरे की शक्ल में चारपाइयाँ डाल दी गई थीं। नौकरों ने हुक्के सुलगा दिये थे। शहर से गाने-नाचने वालियों को बुलवाया गया था। साज़िंदे पंडाल के बीच में उजली चाँदनी पर बैठे सुर-ताल ठीक कर रहे थे। और लोगों की फटी-फटी आँखें किसी बिजली के टूट गिरने की प्रतीक्षा में थीं। नौजवानों ने साँस रोक रखी थी। पायल की पहली घन-घन की आवाज़ ने साँसों को फिर से हरकत दे दी। हुस्नबानो के पाँव के साथ जवानों के दिल नाचते रहे और छम-छम की फुहार में नहाते जज़्बात और-और निखरते गये। अकेली हुस्न बानो हुस्न बिखेर रही थी और इतने जवान समेट रहे थे। इतने लोग धन बिखेर रहे थे, और अकेली हुस्न बानो समेट रही थी। कला का जादू पायल की झंकार बना सरों पर चढ़कर बोल रहा था।

हुस्नबानो बादलों में बिजली की तरह अभी यहाँ, अभी वहाँ। कभी इस दिल पर गिरते-गिरते मुड़ गई, कभी उसको टहोका दिया और निकल गई। सामने बैठा हुआ नौजवान नहीं बचेगा—लो वह उसकी तरफ बढ़ती चली जा रही है। छिछलती हुई कटारी की तरह ठोढ़ी को छुआ

और पलट गई—बाल-बाल बचा—उफ़—सब ने दिल थाम रखे थे, अब हँसने लगे।

ये कोठेवालियाँ सचमुच बिजलियाँ होती हैं। कहीं-कहीं और कभी-कभी गिरती हैं। गिर पड़ें तो जला कर राख कर देती हैं। न गिरें तो सुलग-सुलग कर खुद राख हो गईं।

हुस्न बानो ने नाचते-नाचते थकान महसूस की तो बैठ गई। उसके गुलदस्ते की तरह सजे चेहरे पर पसीने की बूंदें झिलमिला रही थीं। उसने एक अदा के साथ रूमाल निकाला और हवा करने लगी। कितनों का जी चाहा होगा कि बढ़कर यह पसीना अपने दामनों में छिपा लें। पूना को बेहद प्यार आया। यूँ ही एक पल को उसने सोचा—जाकर गोरे-गोरे नाजुक पाँव पकड़ ले और उनको दबाये। कितना परिश्रम किया है, कितना सफ़र किया है इन्होंने।

'बेचारी।'

दूसरे क्षण उसके विचार बदल गये।

हुस्नबानो फटी-फटी आँखों से कैसे पंडाल के सारे लोगों को घूर रही है। मनचले फिक़रे कसने वालों को कैसी करारी बातें सुनाती है। कैसा क़हक़हा लगाती है कि गुलदस्ते के फूल पत्ती-पत्ती होकर बिखरते महसूस होते हैं। अपना-अपना धंधा है, जीवित रहने के लिये ढीठ बनना ही पड़ता है।

हंसी-ठठोली के बीच घिरा पूना सोचता रहा।

उस्तादजी ने इतने में सितार के ठाट बदल दिये। तबला बजाने वाला ताल मिला रहा था कि एक शोला लपका, सारी आवाज़ें उसकी लपेट में आकर दम तोड़ गईं। गाने वाली के गले में बैठी सरस्वती देवी ने राग का पहला सुर अलापा। लोगों पर जादू-सा छा गया। कला जो थोड़ी देर पहले नज़रों के सामने नाच रही थी, अब दिलों में दर्द के दीये की तरह लौ देने लगी। पल-पल भीगती रात प्रेमिका की जुल्फ की तरह

गहरी और अर्थपूर्ण होती गई।

पूना ने देखा कि लोगों की आँखें देख नहीं रहीं, सुन रही हैं। सामने बैठी हुई औरत कौन है? जो दीपक राग गा रही है, उसने सारे दीयों की रोशनी फीकी कर दी है। पूना का दिल डोल सा गया।

यह उसके हृदय में धुआँ-धुआँ सा क्यों फैल गया। यह काजल भरी आँख जैसी काली रात डबडबा क्यों गई?

पूना ने अपने दिल में एक दुनिया को दम तोड़ते महसूस किया। फिर अपने शरीर पर चुटकी काटी कि वह जीवित है।

'ठीक हूँ—ठीक हूँ।'

वह अपने-आप को विश्वास दिलाता रहा।

तारा चुप हो गई। उस्ताद जी ने सितार के तारों को अन्तिम बार छूकर छोड़ दिया। लोगों की वाह-वाह से शहद की मक्खियों का संदेह होता था।

आज उसने उस कुश्ता की पहली खुराक खाई थी जो मस्तिष्क को जीवन और रोशनी देती है।

महफ़िल समाप्त हुई। फ़रमायशें कल पर उठा दी गईं। लोग बातें करते-करते सो गये।

पूना जाग रहा था। जाने रात का कौन सा पहर था।

उसकी कल्पना की आँखें चित्र बनाने लगीं। क्षितिज की ओर से धीरे-धीरे बढ़ता चांद उदास परन्तु सुन्दर नजर आता था। कभी उसमें हुस्न बानो नाचने लगती, और कभी तारा चाँद के चेहरे पर छा जाती। चाँद और उसका काला धब्बा। दीपक राग और दिल का धुआँ—

चाँद—अंधेरा—चमक—ऊँचाई और गम्भीर चुप्पी—राग के प्रभाव की भाँति हर ओर फैली हुई कोमल चाँदनी—आवाज के मीठे विष में बुझी हुई किरणें पूना को याद आ रही थीं।

हाँ—गाने वाली का क्या नाम था—तारा—अच्छा, तारा—बस,

बिल्कुल, एकदम ठीक नाम—

रात के अंधेरे को चाँद की आवश्यकता है। तारों की और दीपक की आवश्यकता है—तारा को दीपक ही गाना चाहिये। पर चाँद को उदास नहीं करना चाहिये—और तारों को फीका नहीं पड़ना चाहिये—और दीयों को बुझना नहीं चाहिये—

रोशनी—रोशनी—रोशनी—

पूना की आँख लग गई।

नया दिन निकलने में थोड़ी देर शेष थी।

□□

तारा गायिका अच्छी थी। वैसे वह नृत्य से भी परिचित थी। मगर अपनी आवाज़ के पीछे कई बार वह खुद ओझल हो जाती। सुनने वाले उसे केवल सुनते, देखने की आवश्यकता महसूस न करते।

खुदा ने शक्ल-सूरत में कोई विशेष आकर्षण न दिया था। वह भाव बता कर आवाज़ को उठाती, हाथों से सुर का उतार-चढ़ाव प्रकट करने में झिझकती न थी। फिर भी यदि अच्छा गला न होता तो इस पेशे में उसकी दाल न गलती।

वह दुनिया की ऊँची-नीची बातें देख चुकी थी। अपने आस-पास से कटने की हिम्मत सब में नहीं होती। पर तारा अपने वातावरण से रिश्ता तोड़ कर भाग निकलने की सोचती रहती।

आत्मा का पक्षी शरीर के बिना कहाँ तक उड़ता। कोई भला आदमी हाथ थामने पर संजीदगी से तैयार न होता था।

आज सुबह होते ही जान देने वाले हुस्नवानो को पत्र लिख-लिखकर

भेज रहे थे। संदेशों का ताँता बंधा था :

'जाने-मन, दर्शन की प्यास है।'

दूसरे में लिखा था—

'हुक्म हो तो कदम छूने हाजिर हो जाऊँ।'

हुस्न बानो पढ़-पढ़ कर तारा को सुना रही थी।

'ये मर्द लोग बिछने पर आयें तो फैलते ही चले जाते हैं। अच्छा चेहरा देखा, राल टपक पड़ी। जो किसी ने दाना डाल दिया तो जाल में फंस भी जायेंगे, उँह।' हुस्नबानो को इतने सारे प्रेम पत्र देखकर जाने क्यों ताव आ गया। और वह उन्हें जूतियों के नीचे मसलते हुए कहने लगी—

'वाह, क्या समझा है—'

तारा दिल ही दिल में जली बैठी थी। कह उठी—'बड़ी गर्वीली हो।'

हुस्न बानो ने तेजी से उत्तर दिया, 'तेरा दिल ललचा रहा होगा तारो। काश तेरे भी इतने चाहने वाले होते। तुझे उनसे बड़ी हमदर्दी है।'

हुस्नबानो की ज़ुबान काफी तेज चलती थी। तारा खिसियानी सी हो गई। उसने कहा, 'बुआ, झाड़ की तरह पीछे पड़ गई हो। मैंने तो बात में बात कर दी। ऐसा गर्व भी क्या ?'

'तेरे अरमानों को ठेस पहुँचती है।' हुस्नबानो ने व्यंग किया।

तारा ने कड़वा जवाब देना ठीक न समझा। और हाँ, उसे सचमुच अरमान था कि उसके आसपास प्रेमियों की झुरमुट हो और वह उनमें से अपने सच्चे साथी को पहचान ले, चुन ले।

यूँ वह सबको मीठी बातों से दिलासा दे, फिर उनसे अपनी प्रशंसा सुनते कभी न थके।

हुस्नबानो उसे चुप देखकर समझाने लगी, 'मेरा गर्व सही है—तूने

मीठी बनकर देख लिया। लोग हमारा अपमान करते हैं। हम उन पर क्यों भरोसा करें। इससे पहले कि वह हमें रौंदे, हम क्यों न हल्की ठोकर से उनके शौक को बढ़ावा देते जायें। इसमें उनका लाभ भी है और हमारा भी। देख तारो, इन्सान शौकीन है। परन्तु समाज ने इस शौकीन बनने की अनुमति केवल मर्द को दी है। तुम मीठे शर्बत से दिल को कब तक बहलाओगी। शराब की कड़वाहट चखने वह कहीं और चला जायेगा। बीवी बनकर रहना वेश्या होने से कहीं अधिक कठिन है। बड़े गुण होने चाहिए।'

बीवी का स्थान हुस्नबानो के मस्तिष्क में साफ़ नहीं था। फिर वह धीमे-से बोली, 'हम लोगों के लिए दिल में स्थान बनाते जायें तो पेट कहाँ जाये। सभ्यता का प्रचार करने लगें तो हमारी कौन सुनेगा। 'नौ सौ चूहे खा के बिल्ली हज को चली', नाम क्यों धराते फिरें। खुदा ने जिस काम में रोटी लिख दी, लिख दी। अच्छा कौन है, बुरा कौन है, वह खुद जानता होगा।'

हुस्नबानो को बोलने की आदत थी और तारा को सुनने की। दोनों की खूब निभती। एक गाती अच्छा थी, दूसरी के नाच जादू कर देते थे।

तारा की संजीदगी से वेश्याओं का रोब कायम रहता, और हुस्नबानो की ज़िन्दादिली से ज़िन्दगी।

दिन के नौ बजते-बजते तारा के कुछ चाहने वालों के भी पत्र आ गये। हुस्नबानो ने चुटकी लेकर मुबारक कहा। हुस्नबानो एक पत्र पढ़कर उछल पड़ी, 'वाह मारा—ले री, इसने घर पर मिलने की इच्छा प्रकट की है।'

'यहाँ नहीं मिलेगा शायद—'तारा ने बिना सोचे कहा।

'अकड़ दिखा रहा है। यहाँ सबकी नज़रों में जलन होती है न—ये लोग जितने अधिक खानदानी बनते हैं उतने ही कमज़ोर होते हैं—हाँ, मैं

उत्तर दे दूँ। देख लेंगे, क्या अकड़ है उसकी—'

मिलने वाले मर्द आते रहे। तारा आदत के अनुसार चेहरे पर मुस्कराहट पैदा किये रही। हुस्नबानो की तरह जली कटी सुनाकर मामले को सम्भाल लेना उसे न आता था। हाँ, वह लोगों की नज़रों में आने के लिए खूब हँसती थी। पर हुस्नबानो की सुन्दरता के आगे वह अधिक कुछ न थी।

हमेशा यही हुआ। दो-चार उल्टे-सीधे हाथ मारकर क्रीम तो हुस्न-बानो ले गई। तारा के हिस्से में तलछट आई।

तारा से मर्द कैसी संजीदा बातें करते थे, 'आप संगीत की देवी हैं। आप जब डूब कर गाती हैं तो कितनी पवित्र लगती हैं।'

इन मर्दों के चेहरे किस तरह पक्के-पक्के होते हैं। बुड्ढे और जान-कार, शोखी नाम को नहीं—जीवन से हटे-हटे—उसका भाग्य ही ऐसा था।

'निगोड़ा, मेरी शक्ल की कोई प्रशंसा नहीं करता। मेरे हृदय में कोई नहीं झाँकता। मैं क्या चाहती हूँ, मुझे कितनी प्यास है।'

तारा प्यासी थी। और हुस्नबानो को भी प्यास थी। यह प्यास सब लोगों को लगती है और नये-नये रूप धारती कभी बूँद की इच्छा करती है कभी समुद्र की। मारना चाहो तो खुद को मार देगी, परन्तु आप नहीं मरेगी।

तारा को अपने प्रशंसकों से मिलकर अब प्रसन्नता न होती जिसकी वह आशा लगाये बैठी होती। उसके निकट के लोग उसे होशियार करते।

'लड़की, या तू कला के साथ एक हो जा, या अपने पेशे से।'

तारा इधर की था, न उधर की। उसकी माँ और नानी कहतीं—'खुदा ने अच्छा गला देकर भी कुछ न किया।'

कुछ लोगों की तबीयत ही ऐसी होती है कि सीधे सादे रास्ते पर

चलें। परन्तु प्रकृति उन्हें कठिन रास्तों पर डाल देती है। ऐसे लोग सदा अपने सही रास्ते के लिए भटकते रहते हैं, ताकि उन्हें कभी शान्ति प्राप्त हो सके। इसी सही रास्ते की तलाश में ऐसे लोग कभी-कभी अत्यधिक ओछी और अक्षम्य हरकतें कर देते हैं।

तारा भी एक ऐसा उदाहरण थी।

गाँव से उनकी वापसी के दूसरे दिन ही पूना उनके घर पहुँचा। तारा से मिलने में उसे कोई विशेष कठिनाई न हुई। दो-चार मुलाकातों में ही वे एक-दूसरे के इतने निकट आ गये कि एक-दूसरे से पक्के वादे भी हो गये।

तारा को पहली असफलताओं की शर्म ने मज़बूत कर दिया था, और पूना पर यह पहली चोट थी। वह इस घाव के आनन्द से दूर होना न चाहता था। उसने मा के आँसुओं की चिन्ता की, न खानदान की। कैसे करता। कोई उसके लिए जोगी बनकर घर से निकल आया था।

नंगे पैरों में घुँघरू, लम्बा काला चोंगा, सर पर काला रूमाल, चेहरे पर भभूत, और बाल खुले हुये। वह नाचती, थिरकती, गाँव की गलियाँ नापती रहती।

गाँव के लोगों को अपने वयस्क बच्चों का डर लगने लगा।—'सब बिगड़ जायेंगे।'

'दमादम मस्त कलन्दर' कहती तारा गाँव में लहराती फिरती थी, और समझदार आदमियों ने समझौता कर लिया कि किसी रात इस चलते-फिरते खतरे को ठिकाने लगा देंगे। पूना को भी ऐसी सूचना मिल गई थी। वह अवसर देखकर उसे ले भागा। यह बात, दूर और निकट, सब जगह फैल गई।

उसकी इस हरकत पर कुछ लोगों ने उसे मर्द कहा और कुछ ने नामर्द।

माँ कहती थी—'शर्म वाला था। मेरे लिये तो वह मर गया।'

तारा के घर वालों ने सब्र कर लिया कि लड़की का मिज़ाज शुरू से ही फ़कीरों की तरह का था। वह फ़कीरनी बन के रही। अच्छा हुआ, हमारे पाप भी धुल जायेंगे। उन की नज़रों में तारा जोगन बन कर सम्मान योग्य हो गई थी।

पूना ने वन-विभाग में चौकीदारी की नौकरी कर ली। नदी के पार एक जगह झोंपड़ा डाल कर दोनों मियाँ बीवी रहने लगे। पूना चोरी-छुपे माँ से भी मिल आता। जब माँ मरी, तो फिर वह जंगल का ही हो के रह गया। आवश्यकता पड़ने पर वह शहर हो आता। अपनी जायदाद से वह बराबर अपना हिस्सा लेता रहा।

पूना और तारा जीवन के सीधे रास्ते पर सहज रूप से चल रहे थे।

□□

सोना और गोरी ने उसे भगा-भगा कर थका दिया। अब्बा-मियाँ जंगल का चक्कर लगाने गये, तो अभी तक नहीं लौटे। वह आराम करने के लिये ऊँचे टीले पर बैठ गई। वहाँ से अब्बा-मियाँ को आते हुए भी देखा जा सकता था।

नीले समुद्र से आकाश में बादलों के छोटे-छोटे टुकड़े राजहंसों की तरह तैरते फिर रहे थे। सावन के ये अन्तिम दिन थे। गढ़ों में जगह-जगह पानी खड़ा था। सपना को ऊँचाई पर बैठे अपने झोंपड़े से उठता धुआँ दिखाई देता था—वृक्षों के झुंड में जैसे आग सुलग रही हो।

'माँ कोई चीज़ पका रही होगी।' उसने सोचा।

और फिर उसकी इच्छा हुई कि अभी वहाँ भाग जाये। और चूल्हे के पास माँ के साथ लग कर बैठे। जो भी बन रहा है उसे

आँखों से देखे और नाक से सूँघे, और फिर कच्चा-पक्का जैसा भी हो माँग कर खा जाये। उसके मुँह में पानी भर आया। पर वह अभी-अभी तो आई थी।

अब्बा-मियाँ अभी लौटे न थे। वैसे दिन अभी काफी पड़ा था।

फिर उसने अपनी जेब से बाजरे की मीठी रोटी निकाली और उसे खाने लगी। कितनी मज़ेदार थी। चारों तरफ फैली हुई हरियाली—वह आप ही आप गुनगुनाने लगी—

'मोरा अँगना सूना, जंगले में आई बहार।'

उसने माँ की नकल में आवाज़ को उठाया। अपनी आवाज़ की मिठास पर खुद हैरान थी। उसका मस्तिष्क तब खुद ही प्रश्न कर बैठा। अँगना सूना कैसा होता है? जंगल तो जंगल हुआ, बहार क्या चीज़ है? जंगल में तो घूम रही हूँ। फिर बहार कहाँ है? और मोती कहाँ, गोरा कहाँ है?

सपना को अपनी बकरियों का ख्याल आता चला गया। गोरा झुक कर जोहड़ में से पानी पी रहा था। उसे शरारत सूझी। एक पत्थर निशाना बाँध कर मारा। पत्थर एक छपाक की आवाज़ के साथ पानी में जा गिरा। गोरा चौंक कर भागा। वह हँस पड़ी। कालू कान खड़े करके भौंकने लगा। शायद वह डरपोक गोरे को देख कर हँस रहा था। पानी में भी लहरें पैदा हो गईं। जैसे वह भी हँस रहा हो।

उसने एक और पत्थर दे मारा। फिर वह रोटी खाती रही। पत्थर फेंकती रही। कालू उसके पास आकर बैठ गया। वह ललचाहट से सपना को रोटी खाते देखता रहा। परन्तु वह हमेशा उसे दिखा-दिखा कर खाती और रुला-रुला कर देती।

कालू उसका अच्छा मित्र था। वह ढीठ भी था और सख्त भी। वह कान खींच कर उसके थप्पड़ लगाती, लातें मारतीं, कालू कुत्ता होने के बावजूद प्यार की मार को खूब समझता था।

सपना ने बाकी रोटी कालू के सामने डाल दी। नीचे सारो और मुन्नी आपस में लड़ रही थीं।

'क्यों लड़ मरती हो ?'

उसने हाँक लगाई और अपनी छड़ी घुमा कर फैंकी। दोनों बकरियाँ अलग हो गईं और घास पर जल्दी-जल्दी मुँह मारने लगीं। तमाम दिन खेल-कूद में गुज़ारने के बाद अब उन्होंने संजीदगी से खाने की तरफ ध्यान दिया था।

सपना का खाने का समय भी कुछ अपनी बकरियों से मिलता जुलता था। सुबह माँ सौ मिन्नतों-समाजतों से नाश्ता करवाती। उसे यह जल्दी होती कि सूर्य ऊँचा उठे, अब्बा-मियाँ काम पर चलें, वह भी बकरियों को हाँकती साथ हो ले और कुलाँचें भरती फिरे।

माँ उसकी भूख के ख्याल से हमेशा कुछ न कुछ उसके साथ बाँध देती। साथ ही समझा भी देती—

'देख, कहीं दूर मत निकल जइयो, घर के आस-पास या अब्बा-मियाँ की नज़रों में रहियो, किसी जोहड़-तालाब में मत घुस जाना, उनमें बड़े-बड़े ऊदबिलाव रहते हैं, जो कहीं तुम्हारा हाथ-पाँव किसी के मुँह में आ गया तो पाताल में जाकर दम लेगी।'

सपना ये और इस तरह की भयानक बातें पिछले कई वर्षों से सुनती आई थी, परन्तु ऊदबिलाव से आज तक उसकी मुलाकात न हुई थी। उसकी पाताल की सैर करने की इच्छा अभी तक पूरी न हुई थी।

पाताल क्या है ? कहीं पानी के नीचे ज़मीन के किसी भाग में एक दुनिया बसी है, अब्बा-मियाँ बताते थे। सोने और चाँदी के सुन्दर शहर, उनमें हर चीज़ सोने की है, धरती चाँदी की।

सपना ने सोना-चाँदी तो देखा था, परन्तु उनका शहर देखने की इच्छा थी। विशेषकर पाताल के वह शहर जहाँ सोने के वृक्षों में हीरे-मोतियों के फूल खिलते हैं—नदी-नालों में ठंडा शर्बत बहा करता है,

शहद और दूध के दरिया बहते हैं—सुन्दर-सुन्दर राजकुमारियाँ और राजकुमार वहाँ बसते हैं। जब वे मिल कर नाचते हैं तो परियाँ साज़ बजाती हैं और पक्षी गीत गाते हैं।

अब्बा-मियाँ जब भी कोई कहानी सुनाते उसमें ऐसे देश की बातें अवश्य होतीं। बार-बार ऐसा सुन कर सपना के मस्तिष्क में एक प्रश्न जाग उठा। उसने कहा—'अब्बा मियाँ, कहानियों की दुनिया इतनी सुन्दर है, तो हमारी दुनिया इतनी सुन्दर क्यों नहीं।'

पूना उसके प्रश्न से कुछ चौंक-सा गया। थोड़ी देर बाद बोला, 'बेटा, हमारी दुनिया भी इतनी ही अच्छी और सुन्दर थी। फिर धीरे-धीरे लोग पापी होते गये। उनके गन्दे कामों से हर तरफ अंधेरा छा गया। फिर आग लग गई। दरियाओं का दूध जल गया। धरती की चाँदी पिघल कर मिट्टी हो गई। हर तरफ धूल उड़ने लगी।'

पूना की आँखों में भावुकता के कारण लाली दौड़ गई। अब वह चुप था। सपना ने तड़प कर पूछा :

'फिर—फिर क्या हुआ अब्बा-मियाँ बताओ।'

पूना बच्ची की बेचैनी पर मुस्कराया। सपना में पूरी बात जान लेने की इच्छा भयानक थी।

फिर यह हुआ कि लोग घबरा गये और रोने लगे। वे इतना रोये, इतना रोये कि मूसलाधार बारिश होने लगी। दरिया बह निकले। धरती पर फिर हरियाली छा गई। रंगारंग फूल-फल पैदा होने लगे। और दुनिया नये सिरे से आबाद हो गई।

कहानी के इस अन्त से सपना के खोजी मन को तसल्ली हो गई। उसके बाद उसे ऐसा प्रश्न करने की आवश्यकता महसूस नहीं हुई। क्योंकि उसके इर्द-गिर्द हरा-भरा जंगल था, और नदी थी जो शायद उन लोगों के आँसुओं से शुरू हुई थी, जिन्होंने पाप किये और फिर प्रायश्चित भी किया।

वह सोचतीं पिछले लोग कितने अच्छे थे। नदियाँ तो बहा गये। यदि वे न होते तो आज पानी कहाँ से मिलता। यदि पानी न मिलता तो उसकी सोना, मुन्नी, गोरी और सारो पानी कहाँ से पीतीं। वह खुद कैसे जीवित रहती। पहले तो अब्बा और अम्माँ ही कैसे जी सकते—

उसके मस्तिष्क में इतिहास का स्पष्ट चित्र माँ और बाप से शुरू होता था। या फिर कुछ फ़र्लांग के फ़ासले पर कुन्ती का झोंपड़ा था। कुन्ती उसी की आयु की थी, परन्तु पता नहीं क्या बात थी उसके माता-पिता उसे उसके साथ खेलने की अनुमति नहीं देते थे। वैसे भी वह कई-कई महीने ननिहाल में गुज़ारती। कुन्ती की माँ मैके और ससुराल में घूमती रहती। मियाँ के पास कभी-कभी आ जाती थी। सपना और कुन्ती के बीच हर बार मित्रता होते-होते रह जाती। यही कारण था कि सपना को चुप रहने और सोचने की आदत पड़ गई थी।

सोचना, और पूछना, और फिर सोचना—माँ-बाप को उसकी इस आदत से शिकायत न थी। पूना कहता था—'कुछ न करने से सोचना बेहतर ही होता है।'

□□

सूर्य डूबने को था। बकरियाँ झाड़ियों पर अनचाहे मुँह मार रही थीं। शाम हो रही थी। सपना ने अपनी लाठी सँभाल ली और बकरियों को जोर की ललकार दी। उन्होंने मुँह उठा कर कान खड़े कर लिये, जैसे उत्तर दे रही हों। कालू सपना का संकेत पाकर भाग-भाग कर बकरियों को जमा करने लगा। वह जोहड़ की तरफ चल दी। कमल के फूलों पर सेंदूर-सा बिखर गया था। सूर्य की किरणों के धागे रङ्गीन हो

चले थे। पतले सुनहरी दुपट्टे ने सारे जङ्गल को ढाँप लिया था।

'आज वह ढेर सारे फूल तोड़ कर ले जायेगी।'

वह निश्चय करती हुई चली।

अम्मा कहती है ये कई बीमारियों के लिये लाभदायक होते हैं। जब बहुत दिन बुखार आने के बाद उसके मुँह का स्वाद कड़वा-कड़वा और आँखें पीली-पीलीं हो गई थीं तो माँ कमल के सूखे फूलों को भिगो कर अर्क़ निकालती और उसे पिलाती रही थी। उससे आँखें कितनी उजली हो गई थीं। जैसे कमल के दो फूल।

सपना ने फूल तोड़ने के लिये हाथ बढ़ाया। जोहड़ का किनारा भुरभुरा था। वह पाँव के बोझ से बैठ गया।

'उई अल्ला।'

उसके मुँह से निकला। वह गिरते-गिरते बची। फूल हाथ का थपेड़ा खाकर ज़रा परे खिसक गया। सपना अपने-आप को सँभालने में फूल को भूल गई। छाती धड़-धड़ कर रही थी।

कहीं गिर जाती तो ऊदबिलाव के मुँह में आ जाती। और नहीं तो डूबकर मर ही गई होती अम्मा और बाबा कितना रोते।

अपनी मृत्यु के विचार से उसकी आँखें डबडबा आईं। न भई, हम सोने-चाँदी के शहर नहीं देखते—वह यही सोचती हुई लौट रही थी।

इधर शाम के साये गहरे होने की कोशिश में थे। कालू बकरियों को घेर कर ला चुका था। उसने सपना को आते देखा तो जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। परन्तु सपना सुस्त पाँवों से दोबारा टीले पर चढ़ गई और चारों ओर देखने लगी।

'अब्बा-मियाँ—अब्बा-मियाँ।'

उसने बाप को धीरे से पुकारा। फिर उसकी आँखें उस तरफ़ उठ गईं जहाँ धरती और आकाश मिलते दिखाई देते थे।

काश वह वहाँ पहुँच जाये जहाँ आकाश इतना नीचे झुक कर धरती

से आ मिला है—वह उसे हाथों से छू ले—यहाँ से कितना दूर होगा—यह पास ही तो है और जब रात हो तो बहुत से तारे तोड़ कर झोली भर ले और उनसे हार पिरो ले—गहने बना ले—हाय कैसा मज़ा आये—तारों की चमक उसे पूरे शरीर में बिखरती महसूस हुई। दिल जो कुछ देर पहले उदास था, प्रसन्नता से भर गया।

दूर आकाश पर पक्षी उड़ रहे थे। कितना अच्छा होता यदि वह चील-कौवा होती और आकाश में उड़ती। यह दुनिया भी देखती और वह भी। हाय चील कितनी अच्छी है। आख-थू—उसने थूक दिया।

चील तो मुर्दों को खाती है। गंदगी—गन्दी बू वाले मुर्दे—मैं कोई गन्दी हूँ—वह कितनी देर तक नाक सिकोड़े रही। फिर उसका ध्यान सफेद-सुनहरे-काले बादलों ने खींच लिया।

बादल कितने अच्छे हैं। आदमी इनमें जा बसे। वाह-वाह। क्या बात है। उसके ध्यान में बादलों के चित्र बनने लगे।

लो, वह सोने का दरवाज़ा बन गया। एक भेड़ उसमें से निकल रही है—चाँदी जैसी—वह—वह कितनी बड़ी औरत बन गई—यह ज़रूर शहजादी है—अरे वह तो बैठी-बैठी चल रही है।

यह अब क्या बनेगा ? औरत की नाक गुम—ओंठ फैल गये—यह—धड़ कहाँ है ?

अरे छोटे-छोटे कान—बड़े-बड़े बाल—वह आगे बढ़ रहा है—पंजे उठाये हुए—यह क्या है ? निकट आ रहा है—क्या है यह ?

'शे—र—शेर।'

सपना भयानक रूप से चीखी और दौड़ पड़ी। ढलान से पाँव रपटा और वह लुढ़कती हुई नीचे आ रही। पल भर को सुन्न होकर रह गई जैसे खून ही जम गया हो। उसका शरीर कांप रहा था। वातावरण को चीरती हुई एक आवाज़ उसके कानों से टकराई।

'सपना—ओ सपना—'

अब्बा-मियां ने उसकी चीख सुन ली थी, और वह उसे पुकारता चला आ रहा था। कालू भौंक-भौंक कर हलकान हुआ जाता था।

लड़की के साथ अवश्य कोई दुर्घटना हुई है जो ऐसे चीख रही है। चिन्तित पूना ने आते ही सपना को गोद में उठा लिया। उसकी टांगें पूना के घुटने को छू रही थीं, परन्तु वह उसे ऐसे हिलकारे देने लगा जैसे वह छोटी सी बच्ची हो।

'क्या हुआ—क्या हुआ बेटे—'

वह एक ही वाक्य दुहराता हाँफ रहा था। दुर्घटना के ख्याल ने उसे थका दिया था। सपना बाप के कंधे से लगी रोये जाती थी।

'तुझे कई बार मना किया कि जंगल में न आया कर। घर में बैठ कर खेला कर—मुझे कुन्ती का बाप मिल गया—बातों में देर हो गई—पर तू वापस हो गई होती।'

सपना सिसकियों में बोल न सकती थी। पूना उसे थपथपाता, आँखों से निकट या दूर उस चीज की तलाश कर रहा था जिससे सपना को कष्ट पहुँचा, या जिससे वह डर गई। वह उसके कपड़े झाड़ते हुए पूछने लगा—

'ले अब बता—टीले पर से फिसल गई है—' सपना ने इनकार में सर हिलाया तो वह आश्चर्य में पड़ गया। लड़की कहीं भूत-प्रेत के प्रभाव में तो नहीं आ गई—पूना ने कल्पना दौड़ाई।

सपना रुआंसी आवाज में बोली—

'अब्बा-मियाँ, वहाँ शेर था—शेर—वहाँ बादलों में—मुझे खाने को दौड़ा—मैं भागी—'

पूना ठहाका लगा कर हँस पड़ा।

'और वह तुझे खा ही तो जाता—पगली।'

'हाँ।' सपना ने मासूमी से कहा।

'अच्छा, चल घर चलें—देख लिया कितनी बहादुर है हमारी बेटी।'

पूना बकरियाँ हाँकता हुआ दिल में सोच रहा था कि तारा को आगे के लिए मना कर दे कि लड़की को उसके साथ न भेजा करे—ऐसे ही वह बच्चे की हाँ में हाँ मिला देती है। घर के काम-काज में हाथ बटाना सिखाये। वे बातें करते चल रहे थे।

'अब्बा-मियाँ।'

सपना अब्बा की बांह के साथ झूल गई। वह उसके बारे में बहुत कुछ सोच रहा था। चौंक कर बोला—

'जी बेटे।'

'अब्बा, मुझे वहाँ ले चलो।'

सपना की आँखों में सपने तैर रहे थे।

'कहाँ।'

पूना आश्चर्य में था।

'वहाँ।'

सपना ने क्षितिज की ओर संकेत किया।

'अब्बा-मियाँ, वहाँ जहाँ आकाश धरती पर आ गया है—वह देखो।'

पूना हँसा।

'क्या करोगी वहाँ जा कर।'

'तारे तोड़ कर लाऊँगी।'

लड़की ने तुरंत कहा और बाप की तरफ प्रश्नवाचक आँखों से देखा।

'अब्बा-मियां, चलो, अभी चलो—अभी थोड़ी देर में रात हो जायेगी। फिर रास्ता न मिलेगा। तारे निकलने में थोड़ी देर बाकी है अब्बा-मियां।'

पूना चुपचाप मुस्कराता रहा। फिर शिक्षा देने के ढंग से बोला—
'अच्छी बेटियाँ आकाश से तारे नहीं तोड़ा करतीं। तुम तो अच्छी

और बहुत ही प्यारी बेटी हो—छी—तारे तोड़ना तो गाली है बुरी-सी—और तुम कोई बुरी लड़की हो ? तुम तो अच्छी हो—हो न।'

'हूँ।'

सपना की कमज़ोर आवाज़ पूना को सुनाई न दी और वह बोलता चला गया। पूना, जिसने सपना की कोई भी बात कभी न मोड़ी थी कभी इनकार न किया था वही पूना बेटी की तसल्ली के लिये लम्बी लम्बी बातें बना रहा था।

सपना का नन्हा-सा दिल आज दो बार टूटा था। दो बार निराशा का अहसास हुआ था। वह फूल न तोड़ सकी थी, और तारे भी नहीं।

तो वह क्या कर सकती है ? उसने बड़े दुःख से सोचा और बाप के साथ चलती रही।

दोनों सोच रहे थे, मगर दोनों के ढंग में अन्तर था। एक का जीवन तजुर्बों से भरा था, और दूसरे की अवस्था उस कली की तरह थी जो अभी फूटी न थी। वह आँख खोलने के लिये बेचैन है, और समय है कि अनुमति नहीं देता। उसे क्या पता कि इच्छाओं के पूरा हो जाने से भी जीवन सम्पूर्ण नहीं होता। बल्कि जीवन में प्यास बढ़ती ही जाती है।

जीवन को सँवारने के लिए कई रंगों को धीमा रखना पड़ता है, और कुछ को बहुत तेज़—लाख अपनी पसंद के रंग खपाना चाहो, न जम सकेंगे। इच्छा को दबाना ही पड़ेगा।

□□

घर में पाँव रखा ही था कि तारा बोली—'यह मूंगा की बहन कहाँ से आ गई है—'

मूंगा को मरे कई वर्ष हो गये थे। सपना को उसका धुंधला-सा आकार याद था। परंतु माँ को जब भी कोसना होता मूँगा का नाम ले कर बात करती। उसका नाम सुनते ही सपना के शरीर में आग लग जाती। उसे मूंगा से क्यों मिलाया जाये। वह तो कुतिया थी—बेढब काम वही कर सकती थी। परन्तु तारा भी अपनी आदत से विवश थी। वह इन जानवरों को बच्चों की तरह चाहती थी।

उसकी दृष्टि में कोई बकरी बकरी न थी, और न ही मूंगा कुतिया। सब उसके बच्चे थे। उसके अपने प्यारे बच्चे, शरारती, नटखट, सीधे, संजीदा—उसे प्यार करने वाले, तंग करने वाले, और आँखों के संकेत को समझने वाले, साफ-सुथरे और गंदगी में लथपथ होने वाले—ये सब उसको प्रिय थे।

फिर सपना सबसे अधिक प्रिय मानी जाने लगी और परिवार में मुख्य आकर्षण वही बन गई। वह सब से अधिक चाही जाती थी, परन्तु दूसरों की भी छोटी-छोटी जिदें मानी जाती थीं। ये उसके छोटे बहन-भाई और हमजोली सभी कुछ थे। तारा की तरह वह भी समझती थी कि वह सब एक परिवार के सदस्य हैं और उनकी उदासियाँ और प्रसन्नताएँ बराबर की हैं।

इस प्रकार सोचने के बावजूद भी सपना अब इस आयु में पहुँच कर महसूस करती थी कि जानवर हर हाल में जानवर है। वह उनसे बड़ी है। उन पर वह हुकम चला सकती है। जहाँ चाहे उनको बिठाये, और जी चाहे उनको खाने को दे या न दे। अब्बा-मियां तो कहा ही करते थे—'इनसान जानवरों से निश्चय बेहतर है, तारा। तू अपनापन के मारे सबको इकट्ठा न कर दिया कर।'

इस समय मूंगा का नाम और माँ की सख्त आवाज़ सुनकर वह रो दी। वह आँसू जिन्हें वह रास्ता भर रोके रही थी बह निकले। पूना ने पूछा तो वह सिसकियों में बोली—

'अब्बा-मियाँ, मूँगा तो गंदी थी, मैं कोई गंदी हूँ।'

पूना की दुलार से वह संभल गई। उसने फिर प्रश्न किया--

'अब्बा-मियाँ, अम्मा कहती है, मूँगा आवारा थी, यह आवारा क्या होती है ?'

पूना को तारा पर क्रोध आ गया--

'तुझे कितनी बार समझाया कि तू लड़की के सामने कोई व्यर्थ बात न किया कर, आगे से यह मेरे साथ नहीं जायेगी, यह ऊँच-नीच समझने लगी है। उल्टी-सीधी बातों से क्यों उसे उलझन में डाला जाये।'

सपना अपने ही ख्यालों में गुम बोली--

'मैं जाऊँगी--अब्बा-मियाँ।'

वह आज के दिन को कैसे भुलाये। उसने जागते में सपने देखे थे। नाजुक-नाजुक सपने, जो अधूरे रहे और टूट गये। सपने टूटते हुए मस्तिष्क में चुटकी लेते हैं और यह चुटकी हमेशा याद रहती है।

आज उसने जीवन में पहली बार निराशा को सख्ती से महसूस किया था। उसकी छाप कितनी गहरी थी--दिल भारी-भारी सा, बैठता-बैठता-सा है--वह सोच रही थी।

हर रोज जाये, हर रोज कल्पना में डूब कर उभरे। सितारे और फूल तोड़ न सके। उनको याद तो करे। चुपचाप ऊँचे स्थानों पर बैठ कर।

'अब्बा, आकाश यहाँ से कितनी दूर है।'

सपना का मस्तिष्क मशीन की तरह चल रहा था। वह चुनरी के पल्लू को मुँह में डाले चबा रही थी। तारा चिल्लाई--

'देखो तो, जानवरों वाली बातें तो तुम्हारी बेटी खुद करती है। मैं कहूँ तो तुम्हें क्रोध आ जाता है।'

सपना ने पल्लू चबाना छोड़ दिया। उसने माँ की तरफ़ ऐसी दृष्टि से देखा जिसमें चुनौती थी।

तुमसे रूठी हूँ---कभी न बोलूँगी माँ ! देख लेना, कभी न बोलूँगी। पूना बकरियों को बाड़े में बंद करके मुँह-हाथ धो रहा था, और सपना जहाँ खड़ी थी वहीं खड़ी रही। माँ खाना परोसते हुए कैसी अच्छी लग रही थी। एक मुस्कराहट उसके चेहरे पर आशा के उजाले की तरह खेल रही थी। और मिट्टी के तेल के दीये की काँपती लौ। माँ के बालों की लट, जिसमें कालापन कम था। सपना के दिल में प्यार उमड़ आया। और वह माँ का ध्यान अपनी ओर मोड़ने के लिये ऊँची आवाज़ में रूँ-रूँ करने लगी।

'यह बीन फिर बजने लगी।'

माँ रसोई में बैठी-बैठी बोली। सपना की हँसी छूट गई। वह रुआंसी आवाज में हँस-हँस कर लोटपोट हुई जाती थी और तारा उसे बाहों में लिये न जाने क्या कुछ बोले चली गई।

फिर तीनों खाना खाने में जुट गये। पूना के कहने पर सपना ने शेर वाला किस्सा फिर से सुनाया, जिससे वह डर गई थी।

□□

अंगनाई के बाहर सुखचैन के वृक्ष में सपना के लिये झूला डाल दिया गया था। वह सारा दिन पड़ी झूला करती। पूना उसको साथ न ले जाता था। वह सयानी हो चली थी और माँ-बाप का ख्याल था कि आयु के साथ-साथ कुछ सीख ले। कुछ पढ़-लिख ले। जिस दिन उसने क़ायदा पढ़ना शुरू किया तो वह और मियाँ मिट्ठू साथ-साथ पढ़ने लगे। माँ उसे पढ़ाती और वह मियाँ मिट्ठू को।

झूले की पींग बढ़ाते हुए वह तेज़ से तेज़ आवाज़ में अपना सबक़ रट

रही थी। मिट्ठू नकल उतारने की चेष्टा कर रहा था। सपना ने दाँत चिढ़ा दिये।

'बदतमीज़, बड़ों की नकलें नहीं उतारा करते' फिर ऊँची आवाज़ में पुकारा, 'अम्मा, इससे कहो चुप हो जाये, वरना इसकी गर्दन मरोड़ दूँगी।'

तारा इश्कपेचा की बाढ़ से झांकती हुई बोली, 'अच्छा है, तुम्हारा साथ दे रहा है। देखते हैं पहले किसको सबक़ याद होता है, मिट्ठू को या तुम्हें।'

सपना ने गला फाड़-फाड़ कर तेजी से रटना शुरू कर दिया। अब मिट्ठू साथ न दे सकता था। वह सिटपिटा कर बोला, 'बीबी क्या करती हो—'

वह कलाबाजियाँ लगाता पिंजरे में घूम रहा था और एक ही वाक्य दुहराये जाता था, 'बीबी क्या करती हो—'

दो-चार वाक्य जो आज तक मिट्ठू ने सीखे थे उनमें से एक यह वाक्य भी था, जिसे वह तारा की नकल में सपना के लिए इस्तेमाल करता था—उससे कोई शिकायत होती या हालचाल पता करना होता तो वह तुरन्त कह देता, 'बीबी क्या करती हो, आदाब अर्ज़।'

सपना ने मुँह चिढ़ा दिया और मिट्ठू से बेपरवाह होकर दुबारा पींगें बढ़ाने और सबक़ रटने लगी।

'बानो और मीना दो लड़कियाँ हैं। दोनों एक ही स्कूल में जाती हैं। मिल कर पढ़ती हैं। मिल कर खेलती हैं—मिल कर खेलती हैं—'

वह 'मिल कर खेलने' के माने पर ग़ौर करती रही। फिर पींग बढ़ाते हुए वह यह भूल गई कि क़ायदा नीचे गिर गया है। झूला रोका और क़ायदा उठाने की बजाय गोरा को गोद में उठा लाई। गोद में बिठा कर दो-चार झूले लिये। फिर खुद उतर आई और अकेले गोरा को बिठा दिया। पर वह कहाँ काबू आता था। एक झूले के साथ ही नीचे कूद

गया। सपना ने एक ज़ोर की धप्प उसकी कमर में जमाई और वह मैं-मैं करता दौड़ता गया। हाय, कैसा जी चाहता, कोई उसे झुलाये और वह किसी को—

अभी पिछले त्योहार पर वह अब्बा-मियाँ के साथ मेला देखने गई थी। अल्ला रे, कैसे-कैसे झूले थे वहाँ। एक पर बैठ कर तो उसका दम ऊपर-ऊपर ही होता रहा। अब्बा-मियाँ पास न बैठे होते तो वह मर गई होती। हिंडोला जब ऊपर, बहुत ऊँचा जा कर नीचे आता तो जी डूबता हुआ महसूस होता—वह कराहती हुई पूना के साथ चिमट जाती।

वहाँ लड़कियों के झुण्ड के झुण्ड फिर रहे थे। बिल्कुल बकरियों की तरह कुलेलें करती फिरती थीं। एक-दूसरी के हाथ में हाथ डाले कैसे तेज़-तेज़ बातें करती थीं। क़हक़हे और चुहलें, हर आयु की लड़कियाँ—उसका जी चाहा वह भी बढ़ कर किसी एक का हाथ पकड़ ले, पर वह उनमें से किसी को न जानती थी। हाँ, वह एक अकेली लड़की जिसने पीली गोट का लाल घाघरा पहन रखा था, मजमे में अकेली नाच रही थी। यही उससे थोड़ी बड़ी होगी। अच्छी, कोमल-कोमल, मूर्ति-सी। एक बुड्ढा ढोलक बजा रहा था और वह उसकी थाप पर कुछ-कुछ गा-गा कर नाचे जाती थी।

'यह बुड्ढा उसका अब्बा होगा'—सपना ने सोचा। वह मज़े से पूना के कंधों पर बैठी देख रही थी—लो, अब्बा मियां तो इकन्नी डाल कर चल भी दिये।

यहाँ काला भालू डुग-डुगी की ताल पर चरखा कात रहा था। लो, सास का चरखा कातने से इनकार कर दिया। सब तालियाँ बजाने लगे। सपना ने भी बजाई। बाप रे, भालू का चेहरा कितना डरावना था। सपना ने पूछा, 'अब्बा-मियाँ, अम्मा कहती हैं—भालू आदमी को खा जाता है। यह क्यों नहीं खाता—'

'सिखाया हुआ है' पूना का उत्तर संक्षिप्त था।

'सिखाया हुआ क्या होता है ?' सपना प्रश्न पर प्रश्न किये जाती।

'अब तू भी तो कई अच्छी बातें सीखती है, और हम तुझे सिखाते हैं; इसी प्रकार इस भालू के मालिक हैं, अब्बा अम्मा ने उसे अच्छी बातें सिखाई हैं।'

पूना ने शब्द 'मालिक' जल्दी से खत्म करके अब्बा अम्मा कहा, नहीं तो सपना का दूसरा प्रश्न 'मालिक' पर होता, 'मालिक क्या होता है, अब्बा-मियाँ।'

फिर उसे विस्तार से समझाना पड़ता। परन्तु उसे क्या पता कि वह इस संक्षिप्त उत्तर में भी एक प्रश्न ढूँढ लेगी।

'इसके अब्बा तुम्हारे जैसे हैं ? इसकी माँ अम्मा जैसी ही होगी, अच्छी—अब्बा, जो भालू आदमी को खाते हैं अच्छे तो नहीं होते।'

पूना ने मेले के शोर में डूबे-डूबे कहा, 'नहीं।'

'और उनके अब्बा अम्माँ भी अच्छे नहीं होते।'

'नहीं बेटा।'

सपना की तसल्ली हो गई। अब वह उचक-उचक कर नाचने वाली लड़की को देख रही थी। लड़की घाघरे की गोट चुटकियों में दबाये कैसे ठुमक रही थी। सपना को बहुत भली लगी।

'वह ढोलक बजाने वाला आदमी इस लड़की का अब्बा है न।'

'हाँ बेटा।'

पूना ने तंग आकर उसे नीचे उतार दिया। वह उसके प्रश्नों का उत्तर ठीक तरह से न दे सकता था। क्योंकि सपना के चेहरे की प्रति-क्रियाओं को पढ़ न सकता था। दूसरे वह ऊँचे सिंहासन पर बैठी मज़े से प्रश्न किये जा रही थी—बोले जाती थी।

'उसका अब्बा अच्छा है।'

'नहीं।'

पूना ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया। इससे पूर्व कि सपना फिर 'क्यों'
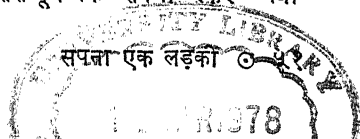
कहे, उसने कहना शुरू किया, 'बेटा, जो बाप बेटी को इस तरह सरे-बाज़ार नचाता है, उसको लोग अच्छा नहीं कहते। बेशर्म कहते हैं—'

'बेशर्म क्या होता है ?'

'बड़ी हो जाओगी तो अपने-आप पता चल जायेगा।'

इस क्षण सपना का जी चाहा कि वह एकदम बड़ी हो जाये। और दुनिया को जान ले। सारी बातें समझ ले। यह भला बड़ा होने में इतनी देर क्यों लगती है। उसे उलझन हो रही थी।

'अब्बा-मियाँ, बड़ा होने में कितनी देर लगेगी।' उसने फिर प्रश्न किया।

पूना उसे खींचता हुआ दुकानों की तरफ ले गया ताकि उसका ध्यान किसी दूसरी तरफ मोड़ सके। वह पूछ-पूछ कर तंग कर रही थी। आज पहली बार मेला देखने आई थी। नई बातों ने उसके मस्तिष्क में खल-बली मचा रखी थी। चूड़ियों की दुकान के सामने जाकर पूना रुक गया।

एक मोटा-सा आदमी ज़मीन पर चादर बिछाये रंग बिरंगी चूड़ियों के गुच्छे सजाये बैठा था। अब्बा-मियाँ बड़ी प्रसन्नता से उसकी तरफ बढ़े—मोटे आदमी को देख कर सपना ने पूना की तरफ ध्यान से देखा। अब्बा की मूँछें तो छोटी हैं। उसकी इतनी बड़ी क्यों हैं ? दाँत कैसे मैले हैं। चंदिया पर कोई बाल नहीं—अरे, वे तो गले मिल रहे हैं। यह अब्बा-मियाँ का मित्र होगा।

पूना, सपना की उपस्थिति को भुला कर चूड़ी वाले के साथ लम्बी बातों में लग गया था। वह अपने-आप को बेकार-सी समझ कर चूड़ियों को छूने और उन्हें उलट-पलट कर देखने लगी। चूड़ी वाले का नौकर छोकरा औरतों को भुगताने की कोशिश कर रहा था। और बड़े रोब से भाव-ताव कर रहा था।

सपना ने बड़ी चूड़ियों को बाँह में पहन कर हवा में नचाया। छुन—छुन—

किसी ने सुना ही नहीं। इधर बातों में गाढ़ी छन रही थी। उधर पसंद और नापसंद का शोर मचा था।

औरतें और लड़कियाँ बातों में उलझी हुई थीं और छोकरे के सामने काली, सूखी, गोरी बाहों की बाढ़-सी लगी थी। वह एक को छोड़ता, दूसरी को पकड़ लेता।

'हमारी बिटिया को भी धानी और लाल चूड़ियाँ पहना दो।' पूना ने सपना का हाथ खींच कर मोटे आदमी के सामने करते हुए कहा, 'यह तुम्हारे ताया-अब्बा होते हैं—इसका नाम सपना है जी—सलाम करो बेटे—'

सपना ने हाथ उठाया और देखा कि वह मोटा आदमी बड़े प्यार से उसकी तरफ देख रहा है और पूछता है, 'कौन-सा रंग पहनेगी रानी बिटिया—'

उसे रंगों और नामों का ज्ञान न था। हाँ, धानी, पीले, लाल नाम सुन रखे थे। पर बात तो पसंद की थी, और पसंद का कोई नाम स्पष्ट न था।

'आकाश के रंग की पहनूंगी' उसने चूड़ियों को बिना देखे ऐसे ही कह दिया। मोटा आदमी हँसा, 'अच्छा तू ही बता, आक़ाश के रंग की चूड़ियाँ कहाँ पड़ी हैं।'

वह और अब्बा उसकी तरफ मुस्करा कर देख रहे थे, जैसे उसकी परीक्षा ले रहे हों। और वह झेंपी हुई सी मुँह में उँगली डाले चूड़ियों को घूर रही थी। फिर उसका हाथ एक गुच्छे पर जा पड़ा। दोनों मर्द एक साथ बोल पड़े, 'शाबाश।'

सपना के चेहरे पर विजय की मुस्कराहट लहराई और प्रसन्नता की लहर को उसने अपने पूरे शरीर में दौड़ते महसूस किया।

'अल्ला रे, लोग कितने अन्धे होते हैं।'

मोटा आदमी उसके हाथों में चूड़ियाँ पहना रहा था और वह सोच

रही थी—चूड़ियों के दाम भी नहीं लिये—यह आदमी जिसे अब्बा-मियाँ ताया-अब्बा कहते हैं, आँखों में प्यार लिये उसे देख रहा है। किस तरह प्यार से बोलता है, कितनी अच्छी बातें करता है।

पूना जब धन्यवाद देते हुए उसको आदाब-अर्ज़ कहने के लिए थोड़ा झुका तो वह आदमी धीमे स्वर में बोला 'भाग्यशाली हो, अच्छी मिल गई कहीं से।'

सपना ने सुना, परन्तु समझा नहीं, वरना बाप से पूछती। वह तो अपनी चूड़ियों को हिला-हिला कर देखने में मग्न थी। झिलमिल करती चूड़ियाँ, फिर उसने धीरे से ताया-मियाँ को सलाम किया और पूना का हाथ पकड़े चल दी। ताया-मियाँ उनको जाते हुए देखता रहा—

बेऔलाद पूना इस छोटी-सी लड़की का हाथ पकड़े किस शान से चला जा रहा था।

बाप-बेटी तमाम दिन मेला में घूमते रहे। सपना ने एक भौंपू खरीदा और ताली बजाने वाली गुड़िया। अब्बा-मियां ने अम्मा के लिये दूसरी दूकान से चूड़ियां खरीदीं—मिठाई और पकौड़े—और जाने क्या-क्या। सपना खा-खाकर तङ्ग आ गई। अब्बा-मियाँ एक दूकान के सामने खड़े उसे सोडावाटर पिला रहे थे। अरे, उड़ने वाले गुब्बारे बिक रहे हैं। उफ़—कितने रङ्ग हैं। बच्चे टूटे पड़ते हैं। अब्बा-मियाँ ने बिना कहे इकट्ठे चार ले लिये। सपना का चेहरा प्रसन्नता से तमतमा उठा। अब्बा ने चारों बाँध कर उसके हाथ में थमा दिए। अरे वह तो ऊपर को उठी जा रही है। जैसे उड़ने लगी हो। हाथ खिंचा जाता था।

वह थक गई थी और धीरे-धीरे चल रही थी। पूना ने फिर उसे कन्धों पर बिठा लिया ताकि जल्दी-जल्दी मेले से बाहर निकल जायें—तीसरा पहर हुए काफी देर हो चुकी थी।

पूना चाहता था कि दिन सांवला पड़ने से पहले दरिया पर पहुँच जाये। अन्तिम नौका निकल गई तो मुसीबत पड़ेगी।

वह चलते-चलते बेटी को तरह-तरह की बातें सुनाता रहा। उसने बताया कि यह ताया-मियाँ उस गाँव के रहने वाले हैं जहाँ वह बचपन में रहता था। जबकि उन दोनों की आयु में अन्तर था, मगर एक ज़माने में दोनों मिल कर घूमे थे, मिल कर खेले थे। वह क़ौम का न्यारिया था—अपना खानदानी पेशा अपनाने की बजाय इधर-उधर के कामों में हाथ डालता रहता था। घर वाले उसको पसंद नहीं करते थे और उसके साथ मेलजोल रखने को अच्छा नहीं मानते थे।

पूना के मस्तिष्क की तह में बैठी तमाम बातें उभर रही थीं, जिनका सम्बन्ध गुजरे ज़माने से था। ये सब चिनगारियों की तरह उसके मस्तिष्क में जीवित थीं। उन्हें समय की मोटी परन्तु नाज़ुक राख ने ढाँप रखा था। पूना को पिछली बातें दुहराने में एक मीठी पीड़ा महसूस हो रही थी। वह बोलते-बोलते चुप हो जाता और फिर अकस्मात चुप्पी को तोड़ कर बोलने लगता।

सपना थोड़ी-थोड़ी देर बाद भौंपू में भूँ-भूँ कर देती और खिल-खिल हँसती। कैसी मज़े की सवारी मिली थी। वाह-वाह।

कलाई में बँधे गुब्बारे ऊपर उड़ रहे थे। और पश्चिम में सफेद बादलों के झुण्ड पीले, लाल और काले रङ्ग बदल रहे थे। शाम के सुनहरे आँचल में ढँकी हर चीज सोने की हो गई थी।

'अल्ला रे, दुनिया कितनी सुन्दर है।'

सपना सोच रही थी।

दूर नदी के किनारे लगी नाव में अन्तिम मुसाफिर बैठ चुका था। पूना ने ज़ोर से पुकारा—

'ओ माँझी, हमें भी लेते जइयो भइया।'

और पूना सपना को नीचे उतार कर तेज़-तेज़ चलने लगा। सपना दौड़ते हुए साथ दे रही थी।

उनके सवार होते ही नौका चल पड़ी। इसमें बहुत से लोग सवार

थे। ये लोग कहाँ रहते हैं ? सपना के दिल में विचार पैदा हुआ। उसके घर के आस-पास क्यों नहीं रहते ?

दूसरे कोने में उसी की आयु की लड़कियाँ बैठी थीं। वह उस लड़की की तरफ प्रसन्नता और ईर्ष्या से देख रही थी जिसके पास इतने सारे खिलौने थे, इतनी बढ़िया और महँगी चूड़ियाँ पहने थी। वह बड़ी प्यारी दृष्टि से उसकी तरफ देख रही थी, जैसे उससे मित्रता करना चाहती हो।

पलक झपकते दूसरा किनारा आ गया। लोग उतर गये, और विभिन्न रास्तों से घरों को रवाना हो गये। इस इलाक़े में कहीं-कहीं कुछ झोंपड़े थे। परन्तु पूना की झोपड़ी सब से अलग थी। नदी के पास, शान्त स्थान, लोगों के साथ अच्छे सम्बन्ध—तारा के बारे में प्रसिद्ध था कि वह शौक़ीन-मिज़ाज और अपनी ही दुनिया में रहने वाली अजीब-सी औरत है। जाने कैसे खानदान से हो—औरतें उससे प्रभावित थीं—और दूर ही भागती थीं—वह जो तानपूरे पर गाती है और रख-रखाव से रहती है, अच्छी औरत नहीं हो सकती—जंगल में रहने वाले लोग भी अपने-अपने स्वतन्त्र विचार रखते थे।

हाँ, पूना के साथ मर्दों का हुक्क़ा-पानी रहता। वह भी उस समय जब वह उनके यहाँ किसी सभा में जाता। उसकी शराफत से सभी प्रभावित थे। वह उनको किसी समय भी सहायता के लिये बुला सकता था। वैसे इस संक्षिप्त-से परिवार की बातचीत कुन्ती के बाप धर्ममित्र के साथ रहती। वह पूना के साथ ही काम भी करता था। और उसकी बीवी कभी भी अधिक समय के लिये उसके पास न रहती थी। वह अक्सर अकेला रहता। खुद ही खाना पकाता। गाय की देखभाल करता। बीवी और रिश्तेदारों के लिये मक्खन और शहद जमा करके सौग़ात भेजा करता।

शुरू-शुरू में वह तारा को अजीब-अजीब नज़रों से देखा करता। उसके मस्तिष्क में साधारण इनसानों की तरह प्रश्न उभरते। पर तारा

के चेहरे पर उसे हमेशा एक ही उत्तर नज़र आता—

'मैं तो केवल औरत हूँ—'

जब से तारा ने उसे भाई कह कर पुकारना शुरू किया था वह बिना झिझक उसे भाभी कहने लगा था। कभी-कभी वह उनकी अँगनाई में आ बैठता और बीवी, बेटी और बिरादरी की बातें सुनाता रहता। गर्मियों की दोपहरों और सर्दियों की लम्बी रातों में वह और पूना बैठ कर गप-शप लगाते, और रस्सियाँ बँटा करते।

सपना, धर्ममित्र चाचा की बातों को सुन कर कुन्ती से इस तरह परिचित हो गई, जैसे वे दोनों गहरी सहेलियाँ हों और इकट्ठी पली-बढ़ी हों। कुन्ती जब कभी वहाँ आती वे एक-दूसरे से जल्दी ही घुलमिल जातीं। और जब वह बिछड़ कर चली जाती तो सपना का दिल कई दिन भरा-भरा-सा रहता और ज़रा-सी ठेस लगने पर छलक जाता।

आज मेले में कुन्ती जैसी बीसियों लड़कियाँ थीं।

घर के निकट पहुँच कर सपना ने ज़ोर-ज़ोर से भोंपू में फूँकें मारनी शुरू कर दीं जैसे अपने आने का ऐलान कर रही हो। वह दौड़ती हुई पूना से पहले घर में प्रवेश कर गई। तारा ने बढ़ कर उसे गले से लगा लिया और ठंडी साँस भरते हुए बोली—

'तुम बाप-बेटी बड़े कठोर हो! इतनी देर—दिया जले पलटना हो सका। तुम तो कहते थे जल्दी चले आयेंगे—'

वह पूना से शिकायत कर रही थी, और चेहरे पर परेशानी के चिन्ह थे।

सपना ने चूड़ियाँ बजा-बजा कर माँ का ध्यान अपनी तरफ मोड़ना चाहा—

'ताया-अब्बा ने दी हैं—ऐसे ही—पैसे भी नहीं लिये—अब्बा-मियाँ देते भी रहे—'

वह प्रसन्नता से नाचे जाती थी और तालियाँ पीट-पीटकर चूड़ियाँ

छनछना रही थी—उस एक का कितना शोर था। पूना और तारा की बात दब के रह गई।

आज उसने एक दिन में दुनिया भर की सैर कर ली थी। कितने चेहरे देखे, इतने जितने जङ्गल में फूल और पौधे—वह अपनी इस सैर को हर रोज़ विस्तार से दुहराती। तारा हमेशा दिलचस्पी से सुनती।

झूले में बैठे-बैठे आज उस घटना को फिर से मस्तिष्क में दुहरा लिया। चित्र एक के बाद एक आँखों के सामने उभरते गये और उसने रुक-रुक कर जी भर कर देखा।

माँ की आवाज़ सुनाई दी। वह शायद सबक़ सुनने के लिये बुला रही थी। जल्दी से उतरी। क़ायदा छाती से लगा कर सुस्त-सुस्त घर के अन्दर चली गई।

'सबक तो उसे याद था। कहीं भूल न गया हो।' उसने दिल ही दिल में दुहराया।

तारा उसे पूना के पास खाना ले जाने के लिये बुला रही थी। वह आज सुबह घर से खाना खाकर नहीं गया।

'अब्बा-मियाँ के पेट में गड़बड़ रहने लगी है। सपना ने सोचा—बूढ़े जो हैं। अम्मा भी बूढ़ी हैं। उसने जब से होश संभाला तारा के सर में सफ़ेदी ही देखी।

जब तारा ने सबक की तरफ कोई ध्यान न दिया तो वह क़ायदे को पलंग पर डाल कर जल्दी जाने के लिये बेचैन हो गई। मां बड़े शान्त-भाव से थाली में सांजने की भुजिया और दाल निकाल रही थी। कटोरी में शक्कर और घी मिला रखा था। सपना की मन-भावनी चीज़।

वह बेटी से सबक सुनना सचमुच भूल गई थी और सपना ने भी याद नहीं दिलाया, क्योंकि अब्बा-मियाँ के पास जाने में देर हो जाने का डर था।

अब्बा मियाँ ने उसके लिये क्या कुछ इकट्ठा कर रखा होगा। रंगीले

पंख, चिड़िया का घोंसला और उसके अंडे ला देने का वादा कई सप्ताह से चला आ रहा था। और सपना का शौक अब पुराना-सा होकर रह गया। जैसे ठहरे हुए पानी पर काई जम जाये। बस, कभी-कभी ख्याल आता तो दिल तड़प उठता। हाय, वह चिड़िया के अंडों में से बच्चे निकलवायेगी। मां कहती थी, चिड़िया बोलने के अतिरिक्त गाती भी है। वह तोता तो अपनी टैं-टैं और कुछ रटी हुई बातों के सिवा कुछ जानता ही नहीं।

फिर वह खुद ही तारा के कूल्हे के साथ लग कर बैठ गई। उसे पता था अम्मा उसे खाना खिलाये बिना न जाने देगी। तारा ने उसे बाहों में लेकर खिलाना शुरू किया।

'शुक्र है, भूख लग आई।'

तारा उसके मुँह में निवाले डालते हुए इधर-उधर की बातें कर रही थी।

'है न भूख ?'

'हूँ।'

सपना ने सच बोल दिया। वरना उसका पूना के साथ मिल कर खाना खाने का विचार था। वह माँ को बताना भी चाहती थी कि उसे भूख नहीं—पर वह झूठ न बोल सकी। तारा उसे अत्यधिक चाहती थी—प्यार का बदला सच के सिवा और कैसे चुकाया जा सकता था। यूँ सच कह देने का विचार उसके मस्तिष्क में कब, कैसे और क्यों आया, उसे मालूम नहीं था। उसे पता चले बिना ही सच बात मुँह से निकल गई थी।

दो-चार निवाले खाकर वह जाने के लिये उठी। तारा उसकी चुप्पी से उकता कर उसकी कमर में एक धप्प जमाती हुई बोली—

'खाना पूरे ध्यान से खाया करते हैं और खुशी-खुशी खाते हैं। कोई पीछे लगा है क्या ?'

फिर कुछ सोचते हुए कहा—

'मैं समझी, तू चुप क्यों है ? सबक़ याद न किया होगा। लो, मैं भी क्या हूँ, सुनना ही भूल गई।'

सपना हँसी, और मुँह में रोटी रखती हुई बोली—

'ऊँ—याद है, अभी सुनाऊँ ?'

'तो फिर तू ढंग से खाती क्यों नहीं ?'

सपना अन्तिम निवाला खाते हुए पोटली संवार रही थी।

'आधा अब्बा-मियां के साथ खाऊँगी।'

'तेरा मेरे पास तो जी ही नहीं लगता।' तारा निराश हो गई, 'जब देखो, इधर-उधर बाबा के पीछे मारी-मारी फिरेगी। याद रख, गीत तो तुझे मैं सुनाती हूँ। नहीं सुनाया करूँगी और रात को साथ भी नहीं सुलाऊँगी। नई गुड़िया बना कर नहीं दूँगी—वही पुरानी सड़ी हुई लिये फिरना।'

सपना को माँ की बातों में चुनौती का अहसास हुआ और वह तारा की गोद में गिर कर मचल गई। तारा झूठ-मूठ मना करती रही—

'परे हट, खाने में पाँव डाल देगी—यह गया गिलास।' सपना के पाँव की ठोकर लगने से पानी से भरा गिलास लुढ़क गया। ठंडा पानी ज़मीन को भिगोता चला गया। छींटे दूर-दूर तक फैल गये। ठीक तारा के दिल की तरह जिसमें सपना ने प्यार का अमृत उंडेल दिया था। उसके तन और मन भीग से गये जैसे उसके अंग-अंग में ठंडी और सौंधी-सौंधी बास भर गई हो। फिर यह बास चारों ओर फैल गई। पास ही गीली धरती के कलेजे से भीगी-भीगी सुगन्धि उठ रही थी।

औरत और धरती एक-दूसरे से कितनी समानता रखती हैं। कितनी जल्दी प्रसन्न हो जाती हैं—पानी और प्यार की धीमी-धीमी नमी हो तो उसे फलने-फूलने से कौन रोक सकता है।

तारा यह सब सोचते हुए सपना को भींच-भींच कर प्यार कर रही

थी और सपना भी तारा के गिर्द अपनी बाहें फैलाये थी। वह खाना उठा कर जाने वाली थी कि तारा ने चुनरी ढंग से लेने की ताकीद की। सपना ने चुनरी को सँवार कर ओढ़ा जैसे वह सपना न हो तारा हो। बड़ी आयु की समझदार औरत, तारा के मस्तिष्क की आँखों में एक ज़माना घूम गया। जब वह सचमुच बड़ी औरत बन जायेगी। वह उसकी नकल में दुपट्टा नहीं ओढ़ेगी बल्कि उसका जी चाहेगा दुपट्टा उसकी छाती पर फैला रहे। दूसरों के सामने दुपट्टे और हाथों में उलझन रहा करेगी, आँचल फिसला करेगा, यह संभाला करेगी, उसे सँवारा करेगी। उसके बाद क्या होगा ? क्या होगा उसके बाद ?

तारा के ओठ कंपकंपाए, जैसे वह जवान सपना को जाते देख खुदा-हाफ़िज़ कह रही हो।

सपना दूर फ़ासले पर, अपने सर पर, छोटी सी पोटलिया रखे अल्हड़पन से मोड़ काट रही थी।

तारा रसोई में आकर बर्तन समेटने लगी, तो उसका ध्यान बट गया।

□□

पूना रस्सियाँ बटते-बटते थक कर हरी-हरी घास पर सुस्ताने के लिए लेट गया। दोपहर होने को थी और उसे भूख लग रही थी। वह करवट लिए रास्ता देख रहा था—कोई न कोई खाना ले कर आता होगा—सूर्य की गर्मी बढ़ गई थी। परिन्दे थोड़ी देर आराम करने के लिए वृक्षों पर आ बैठते हैं। उसकी बकरियाँ खेल-कूद से थक कर खड़ी-खड़ी जुगाली कर रही हैं। उनकी आँखें कितनी भारी और बोझिल हैं—

दूर कहीं चिड़िया की आवाज़ दोपहर के सन्नाटे में गूँज रही है ।

जहाँ पूना लेटा था वहाँ वृक्षों की घनी परछाईं थी और पगडंडी के मोड़ से आगे दृष्टि नहीं जा सकती थी ।

पूना को इस जंगल में आये बहुत वर्ष हो चुके थे । जब वह यहाँ आया था तो कड़ियल जवान था । बुढ़ापा बड़े धीरे-से उसमें डेरा डालने आया था । पूना अपने आपको जवान और ताज़ा महसूस करता । वैसे जीवन में अधिक परिवर्तन भी नहीं हुए । फिर भी बदलते मौसमों के साथ घुलमिल कर उसने यहाँ से किसी और स्थान पर उठ जाने के बारे में कम से कम सोचा । वह अपनी छोटी-सी दुनिया को सम्पूर्ण समझता । इस अलग-अलग जीवन पर उसे गर्व था । परन्तु फिर भी कभी-कभी खुद ही उसे प्यास और ढीलेपन का अहसास होता, जैसे हर समय बुने जाते जीवन में कुछ झोल पड़ने लगे । पूना इस झोल को कसने में लग जाता । कुछ दिन इस झोल को ठीक करने में गुज़र जाते और अगले कुछ महीने इस नई सँवार में बीत जाते । इन दिनों उसे कोई विशेष काम नहीं था । रस्सियाँ बट लीं, बकरियों की देखभाल कर ली, और बस ।

बढ़ती आयु के साथ-साथ जागते में सपने देखने की आदत कम हो जाती है । तजुर्बे इच्छाओं के मुँह पर हाथ रख देते हैं । पूना शुरू ही से केवल सोचते रहने में विश्वास न करता था वह तो 'सोचो और कर डालो' में विश्वास रखता था ।

वातावरण की चुप्पी और चिड़िया की उदास आवाज़ से पूना का जी घबराने लगा । किसी से बात करने को जी चाह रहा था । उसने कालू को पुकारा—

कालू थूथनी उठा उसके पास आकर यूँ रुक गया जैसे कह रहा हो—

'सरकार, क्या हुक्म है ।'

परन्तु उसने उसे दुतकार दिया । वह डर कर पीछे हटा परन्तु गया

नहीं—कितना प्यार करने वाला जानवर है—पूना ने सोचा—अब उसे दया आने लगी थी—वह भी क्या है ? भला कालू ने उसे क्या कहा था ।

फिर पूना ने दिल ही दिल में खुदा का शुक्रिया अदा किया जिसने उसको ऐसे चाहने वाले वफ़ादार लोग दिए थे। तारा को देखो, उसे पाकर जैसे वह सारी दुनिया को पा गई—और सपना, उसकी बेटी अपनी न सही, कौन जाने अपनी बेटी उससे इस तरह प्यार करती भी या नहीं—हाँ उसके बेटी होती कैसे ? वह तारा से औलाद सोच ही नहीं सकता। और यदि कहीं वह दूसरी शादी कर लेता तो फिर क्या होता। तारा चुपके-चुपके रोया और कुढ़ा करती। बच्चे तारा के सगे तो न होते—और यदि तारा के सगे न होते उसके सगे कैसे हो सकते थे। बिल्कुल न हो सकते थे। नहीं हो सकते थे—कभी भी नहीं होते तो—जान से मार देता—'हा-हा-हा।'

वह अपनी कल्पना की उड़ान पर खुद ही ठठा कर हँस पड़ा। वृक्षों से कई पक्षी पंख फड़फड़ा कर उड़ गये। वह बैठा मुस्कराता रहा। धीरे-धीरे वह संजीदा हो गया। दिल के सारे कोनों में टटोलते हुए एक बार फिर उसे अहसास हुआ कि वह तारा के बच्चों के सिवा किसी को प्यार नहीं कर सकता—पर वह सपना को क्यों प्यार करता है ? वह न उसकी कुछ लगती है न तारा की—वह केवल एक थकी हुई आत्मा की तरह उसे बीच रास्ते में मिल गई। एक छोटी सी घटना जीवन और भावनाओं के रास्ते को मोड़ गई थी। वह उसे कुछ इस प्रकार मिली जैसे किसी बच्चे को रास्ते में पड़ी मिट्टी में सनी हुई कोई अशरफ़ी मिल जाए और वह समझ न सके कि यह क्या चीज है ? इसका मूल्य क्या है ? फिर कुर्ते के दामन से उसे रगड़-रगड़ कर देखे। ज्यों-ज्यों रगड़े वह चमकती जाये और चमक से आँखें चुँधिया जायें। वह डरता हुआ घर की तरफ भागे। नहीं तो कोई देख ले, छीन ले। उसने कहीं यह चीज चुराई तो नहीं।

पड़ी हुई पाई है, और पाने के बाद किसकी हिम्मत है कि उसे खो दे ।

पूना गेहूँ की फसल का पता करने अपने गाँव जा रहा था । उसका ख्याल था सूर्य अधिक ऊँचा उठ आने से पूर्व गाँव पहुँच जाए । आम के बागों में कोयल बोल रही थी । पूना ने अपनी रफ़्तार तेज़ कर दी । इक्का-दुक्का लोग आ जा रहे थे । आने वाले से क्षण भर के लिए नज़रें मिलतीं—एक नौजवान साइकल सवार पीछे से आया और पलक झपकते आँखों से ओझल हो गया । पीछे से दो मुसाफिरों की बातें करने की आवाज़ आ रही थी—शायद दोनों मर्द थे—नहीं एक आवाज़ किसी औरत की थी । पूना ने पीछे मुड़कर देखना ठीक न समझा । काश उसका भी कोई साथी होता । बातें करते हुए चलने में फासले का पता नहीं चलता । उसकी चाल आप ही आप सुस्त पड़ गई । देहाती जोड़ा उसके पास से गुज़र गया । औरत खुली ऐड़ी की स्लीपर बजाती मियाँ के पीछे लगभग भाग रही थी । उसकी बाँहों में एक बच्चा था और मर्द ने कंधे पर तेल सनी बड़ी सी लट्ठ रखी हुई थी । लट्ठ में टाट का थैला झूल रहा था ।

पूना क्षण भर को जूती में से कंकरी निकालने के लिए रुका । इसी दौरान देहाती जोड़ा वृक्षों में ओझल हो चुका था । फिर उसे किसी छोटे बच्चे के रोने की आवाज़ सुनाई दी और उसकी रफ़्तार के साथ वह आवाज़ पास आती गई । उसने सोचा देहातियों का बच्चा हठ कर रहा होगा । पूना आगे बढ़ता रहा । अब आवाज़ पीछे से आ रही थी । उसे कुछ उलझन पैदा हुई । वह रुका और चारों ओर देखा । उसी समय उसके कानों से एक और आवाज़ टकराई । यह मर्द की आवाज़ थी । औरत कहाँ गई ? माँ कहाँ गई ?—उसे जानने की इच्छा महसूस हुई । वह अपना रास्ता छोड़कर आवाज़ की तरफ बढ़ा । आमों के घने झुंड से थोड़ा परे जहाँ भांग और बसूटी के पौधों ने घेरा डाल रखा था उसे एक मर्द बैठा दिखाई दिया । वह बच्चे को बहला रहा था । पूना उसकी

ओर बढ़ा। मर्द ने दो-चार थप्पड़ बच्चे के मुँह पर जड़ दिए। बच्चा बिलबिला उठा। पूना ने ज़ोर से ललकारा—

'ए भाई, क्यों मारते हो।'

उधर से कोई उत्तर न मिला। पूना को पास जाने पर पता चला कि यह वह मर्द नहीं जो औरत के साथ जा रहा था, और न यह बच्चा ही उस देहातिन का था। उसका मुन्ना तो महकता हुआ ताजा फूल था। —और इस बच्चे के चेहरे पर कितने दु:ख और कष्टों के चिन्ह बिखरे हैं। उसकी आँखें कह रही थीं कि हम घंटों से रो रही हैं, हमारे आँसुओं से ही हमारी पूरी बात को जान लो।

पूना ने आगे बढ़कर मर्द के उठे हुए थप्पड़ को रोक लिया—

'इस मासूम पर क्या क्रोध—अजीब आदमी हो तुम।' पूना से रहा न गया। मर्द फटी हुई आँखों से उसे देखने लगा। उसका मुँह बन्द था। पूना बच्चे को गोद में उठाकर थपथपाते हुए बोला—

'तुम बहला-बहला कर थक गये हो। कुछ मैं चेष्टा करूँ? क्यों मुन्ने, क्यों रोते हो? कहाँ जा रहे हो भाई?'

पूना ने अपनी धुन में प्रश्न किया।

वह आदमी अपने मुँह ही मुँह में कुछ मिनमिनाया और अपनी चीजें समेटते हुए चलने के लिए उठ खड़ा हुआ।

'मैं भी अकेले चलते-चलते उकता गया था। चलो अच्छा हुआ तुम मिल गये। कौन से गाँव जाओगे?'

स्नेह के मारे पूना की छाती फटी जा रही थी।

फिर वे इकट्ठे चलने लगे। अजनबी की चाल में अपनापन न था। बच्चे ने निढाल होकर अपना सिर पूना के कंधे पर डाल दिया और आँखें बन्द किए धीरे-धीरे खिसकने लगा। अजनबी ने मुन्ने को वापस लेने की चेष्टा की परन्तु पूना नहीं चाहता था, क्योंकि बच्चे के ढीले हाथ-पाँव से पता चलता था कि या तो वह सो गया है या अर्धचेतन है।

कुछ देर के बाद वह अजनबी खुद ही बताने लगा कि वह एक निर्धन किसान है, परसों रात उसकी बीवी हैज़े का शिकार होकर चल बसी और उस पर मुसीबत टूट पड़ी—यह दर्द भरी कहानी सुनकर पूना की आँखें हमदर्दी के आँसुओं से जलने लगीं।

'बड़े दुःखी हो भाई।'

पूना ने महसूस किया कि वह व्यक्ति शहर और देहात की मिलावट है, सीधा-सादा किसान नहीं। उसकी आँखें लाल हैं। शायद बीवी के दुःख में रोता रहा है। पूना के मुँह से आह निकल गई। बीवी के बना जीवन सूना और फीका हो जाता होगा। कँवारेपन की बात दूसरी है।

पूना सोचता हुआ बड़े ध्यान के साथ उस आदमी की दुःख भरी कहानी सुनता रहा। वह मर्द बेहद दुःखी था। बच्चे की शक्ल हर समय आँखों के सामने रहने पर कैसे अच्छे-अच्छे दिनों की याद दिलाती होगी। पूना का दिल घुलता जा रहा था। मर्द कहे जाता था, 'अब मैं इसे इसके ननिहाल छोड़ने जा रहा हूँ। मुझमें इतनी हिम्मत नहीं कि हर समय इसे बिलबिलाते देखता रहूँ। वहाँ ठीक रहेगा। वहाँ इसकी छोटी खाला है। आज नहीं तो कल मुझे दूसरी शादी करनी पड़ेगी। जाने दूसरी आकर इसे कैसा रखे।'

पूना को उसकी बातों में और अधिक दिलचस्पी पैदा हुई। यह कैसा आदमी है। कल बीवी मरी, और आज दूसरी शादी की चिन्ता है।

'क्या तुम अपनी बीवी को चाहते न थे? क्या तुम्हारी शादी जबर्दस्ती की शादी थी?'

मर्द संभलकर बोला—

'क्या चाह, क्या ब्याह भाई, वह करनहार है।' उसने आकाश की तरफ संकेत करते हुए कहा।

'जो उसकी इच्छा, वही हमारी इच्छा।'

'अच्छा तो मुन्ने का नाम क्या है ?'

पूना बात को बदलना चाहता था। उसके भाई कहकर मुखातिब करने से पूना उसके अधिक निकट हो गया। और उससे नजरें मिलाकर बातें करने और सुनने लगा। शब्द 'भाई' में उसे बेहद अपनापन महसूस हुआ था। उसका जी चाहा कि वह उसके चेहरे पर बिखरी हुई दुःख की धूल को हटा दे और आँखों के रास्ते दिल में देख सके—वहाँ कितना दुःख है जिसको वह बातों में टाल रहा है। बात करने के ढंग से वह हिम्मत वाला लग रहा था—झूठा—

अजनबी मुस्कराने की व्यर्थ चेष्टा करते हुए बोला—

'इसका नाम ? इसका नाम तो हमने अभी रखा ही नहीं। बस हम इसे मुन्नी कहकर पुकारते हैं।'

'हैं—यह लड़की है—'

पूना कुछ हैरान था। बच्ची की आयु लगभग दो वर्ष की होगी और अभी तक उसका नाम न रखा गया था।

'मेरा नाम पूना है भाई। मुझे इस इलाके में लोग इसी नाम से जानते हैं। जंगल का रखवाला हूँ। आपका अपना नाम क्या है ? इन्सान को इन्सान से किसी भी समय काम पड़ सकता है। परिचय इसी तरह बढ़ता है। खुदा के घर से तो कोई जान-पहचान लेकर आता नहीं। हाँ नाम तो बता ही देना चाहिए।'

अजनबी पूना के लगातार प्रश्नों से परेशान नजर आता था। बोला—

'नाम—मेरा नाम—दीन मुहम्मद है—'

फिर उसने जल्दी से बच्ची को पूना की गोद से ले लिया और लम्बे-लम्बे डग भरता एक पगडंडी की ओर हो लिया। पूना के दिल में कई संदेह उभर आये। कस्बा पास था। उसे ख्याल पैदा हुआ कि वह इस मर्द के बारे में पुलिस को भी बता दे और उसका पीछा भी करे।

उसके रिपोर्ट करने पर पुलिस हरकत में आ गई। उसी शाम उसे गिरफ्तार कर लिया गया। बच्ची भी मिल गई। पूना को चौकी में बच्ची और मर्द की पहचान के लिए बुलाया गया। सब-इन्स्पेक्टर-पुलिस ने पूना के सामने कुछ प्रश्न किए। उनका व्यवहार पूना के साथ भी सख्त था। संभव है उसका संदेह गलत हो और यह भी संभव था कि पूना को उस मर्द के साथ व्यक्तिगत द्वेष हो और वह उसे फँसाना चाहता हो। थाने में पुलिस के लोगों के सामने सामने खड़े पूना के होश गुम थे। वह अपने को कोस रहा था कि खामखा उसने थाने में रिपोर्ट कर दी। उसे तारा को लेकर भागने की घटना याद आई। यदि तारा के संबंधी भी पीछा करते तो कैसी सख्त परेशानी होती।

उसके प्रश्न हो चुके तो मुजरिम की बारी आई। वह सच बोलने के के लिए तैयार न था। अंट-शंट उत्तर देता था।

वह रात पूना ने काँटों पर काटी। मस्तिष्क में खलबली मची थी। एक शरीफ आदमी को मरवा दिया। वह रात बच्ची के साथ हवालात में कैसे कटी होगी। पूना सोचता रहा और सो न सका। सुबह उसे फिर पुलिस-चौकी हाज़िर होना था।

वह वहाँ समय पर पहुँच गया। अजनबी मर्द की पिटाई हो रही थी। पूना ने आँखें बन्द कर लीं। हर कोड़ा उसकी आत्मा पर बिजली की तरह गिरता।

'तुम क्या कबूतर की तरह आँखें मींचे खड़े हो।'

गालियों और झिड़कियों में से एक आवाज़ उभरी। कोई उससे कह रहा था। पूना चौंक उठा—

'जी हज़ूर, दरअसल मेरा जी कमज़ोर है।'

'ठीक है, मूर्ख जाहिलों का जी कमज़ोर ही होना चाहिये, वरना वह जुर्म करने लगते हैं।'

'जी हुज़ूर।'

पूना डर और दबदबे के मारे जी-जी कहता काँप रहा था कि थाने-दार ने फिर पूछा—

'तुम्हारे घर में औरत है ?'

'जी।'

पूना ने लम्बा-सा 'जी' कहा।

'मैं पूछता हूँ औरत है ?'

'क्या कीजिएगा हुजूर।'

थानेदार हँसा।

'तुम लोगों को औरत के लिए ग़ैर मर्द के हाथ में हमेशा लाल झंडी नज़र आती है।'

पूना मूर्खों की तरह उसके मुँह को देख रहा था। इस दौरान सिपाही मार-पीट बन्द कर चुके थे। और मुजरिम अब अपना सही बयान लिखवा रहा था। थानेदार उधर देखने लगा। परन्तु फिर पलट कर उसने पूना से पूछा—

'तुम्हारे बच्चे हैं।'

'नहीं।'

पूना ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

'देखो पूना, हमने रात इस बच्ची के साथ मुसीबत में काटी—किसी आश्रम या अनाथालय में भिजवाने का प्रबन्ध हो जायेगा। तब तक तुम इसे अपने घर लेजाकर रखना पसंद करोगे ?'

'क्यों नहीं, क्यों नहीं।'

अत्यधिक प्रसन्नता के कारण पूना हकला-सा गया। उसका जी चाहा वह थानेदार से लिपट जाये और उसके पाँवों को चूम ले। वह उसे बड़ा आदमी दिखाई दे रहा था, जैसे दयालु देवता, खुदा के समान।

हाय, तारा इस जीवित उपहार से कितनी प्रसन्न होगी। दिल में कितनी ही इच्छायें लिए वह चुँधियाई आँखों से बच्ची को इधर-उधर

खोज रहा था।

'चिन्ता न करो—पूछताछ और कार्रवाई चलती रहेगी—हेडक्वार्टर से हुक्म आने तक तुम इसे अपने पास रखो।'

फिर थानेदार ने सिपाही को आवाज़ दी। पूना ने देखा एक नौजवान बच्ची को गोद में उठाये चला आ रहा है और बच्ची बड़े मजे से केला खा रही है—उसके चेहरे पर अब कुछ लाली है। वह उसे गोद में लेने के लिये थोड़ा आगे बढ़ा।

'देखो भई, तुम हमें अपना नाम, पता, जायदाद और अपने गांव के दो बड़े आदमियों के नाम और पते लिखवा दो।'

मुहर्रिर ने थानेदार की तरफ देखते हुये पूना से कहा—'ठीक है, ठीक है, तुम्हारे बारे में पूछताछ भी आज शाम तक हो जायेगी, पूना। चिन्ता करने की कोई बात नहीं।'

थानेदार मूँछों पर ताव देता बच्ची को पुचकार रहा था। पूना आशा और निराशा के बीच झूल-सा गया। बच्ची उसका गोद में थी। आज और कल के स्पर्श में कितना अन्तर था। पूना के अन्दर कई तरह की भावनायें और अहसास गड्डमड्ड थे जिनको समझने में वह असमर्थ था। मस्तिष्क में तूफान के बगूले से उठ रहे थे कि आँखों में धुँधलका-सा फैल गया। या ठंडी हवा के झकोरे कि शरीर में कँपकँपी छिड़ गई थी।

बच्ची सिपाही के हाथ से उसकी बाहों में यूँ आराम से आ गई थी जैसे वह दूर की मुसाफिर हो और अब चलते-चलते रास्ता उसके पाँव लग गया हो।

जब वह वहाँ से चला तो वहाँ पर उपस्थित हर व्यक्ति ने प्यार और दया से बच्ची को थपथपाया जैसे यह भी उनके कर्त्तव्य में शामिल था। या दिलों के समुद्र पर चाँदनी का नूर फैल गया था कि उमड़ आया था।

पूना घर पहुँचते-पहुँचते हांफ गया। उसके सर पर छोटी-सी गठरी और बाहों में फूल-सी बच्ची थी। पर वह उन मनों भारी टाँगों का क्या करे जो प्रसन्नता के अहसास से फूल गई थीं, और धड़-धड़ करती छाती, जिसमें भावनायें ही भावनायें थीं, सोच कोई न थी। उसने घर के दरवाजे से कुछ कदम इधर ही तारा को पुकारना शुरू कर दिया।

'तारा—ए तारो—'

तारा आंचल संभालती दौड़ कर बाहर आई। पूना ने अपना प्यारा वाक्य दोहराया—

'देख मैं तेरे लिये क्या लाया हूँ।'

तारा आश्चर्य और घबराहट से केवल इतना पूछ सकी—

'यह कौन है ?'

एक सुबह का उजाला उसने पूना के चेहरे पर बिखरते देखा—एक मुस्कराहट—फिर उदासी—आँखों में एक चमक, धुंध में बसी हुई—

'कौन है ?'

तारा ने फिर पूछा। पूना के मुँह से अकस्मात निकला—

'यह सपना है।'

वह इतनी जल्दी और क्या कहता। तारा की नजरें कह रही थीं, सब कुछ बता दो। अभी उगल दो। पूना के हृदय के ज्वारभाटा को सोच के बंधन ने रोक रखा था। और तारा थी कि पूछे जाती थी। पूना अपनी धुन में बोला—'हाँ, यह सपना है—सपने आँखें बंद करके देखे जाते हैं, उन पर रोशनी नहीं डाली जा सकती।'

अगले दो दिनों में पूना ने धीरे-धीरे सारी बात बता दी—वह कौन है ? कब तक उनके पास रहेगी। अब दोनों ने उसे सपना के नाम से ही पुकारना शुरू कर दिया था।

तारा प्रकटत: पूना के इस उपहार से भी प्रसन्न थी। परन्तु इससे अच्छे तो वह झाँझन थे जो उनकी लाडली बकरी का मेमना पहने फिरता

था, और उनकी छन-छन आज भी कहती फिरती थी, हम तो प्रेम का उपहार हैं, बोलता-गुनगुनाता—यह सपना क्या है ? तारा सोचती—

'चली जायेगी, और कुछ यादें और दु:ख छोड़ जायेगी।'

तारा ने एक-दो बार पूना से कहा भी था कि फल खाने की इच्छा उसके खुशबू सूंघ लेने से और भी अधिक तेज हो जाती है। पर इसके बावजूद पूना देखता था कि घर की अलगनी पर फूल खिल गये हैं। ककरौंदे के साये में पड़ी पलंगड़ी पर फूलों का ढेर-सा पड़ा है। और उस ढेर में एक हल्की-सी हरकत है। जैसे ज़िंदगी सांस ले रही हो—यह सपना है।

अलगनी पर उसके कुरते हैं, छोटे-छोटे जांघिये, तौलिया और जाने क्या-क्या। पूना को तो उनके नाम भी ठीक से नहीं आते। औरतों को पता नहीं कैसे आ जाते हैं।

घर का हर कोना सपना की चीज़ों से भरा था। एक-एक करके कितनी चीज़ें जमा हो गई थीं—और तारा सुबह से शाम तक काम में जुटी रहने लगी थी। उसे पूना की भी पहली सी चिन्ता और परवाह नहीं रही।

दो महीने गुज़र गये। पुलिस वालों की तरफ से कोई विशेष सूचना नहीं आई। वे सब अपने हाल में मस्त थे।

झुलसा देने वाली गर्मी पड़ रही थी। पूना फसल आदि का हिसाब करके अपना हिस्सा ला चुका था। उन्हें सपना के चले जाने के सिवा कोई दु:ख, कोई चिन्ता न थी। वह जो एक गुलदस्ते के फूल थे, बिखरना न चाहते थे कि अचानक हुक्म आया—पूना बच्ची को लेकर हाज़िर हो जाये। एक दिन की मुहलत दी गई थी।

पूना के मन का पक्षी जैसे उड़ते-उड़ते चट्टान से टकरा गया। वह 'हुक्म' को हाथ में थामे निढाल-सा होकर तारा की गोद में गिर गया। तारा चुप थी। वह क्या कहे।

आज की सुबह किस तरह गर्म और चुंधिया देने वाली थी। तारा ने सपना को नहलाया और साफ-सुथरे कपड़े पहनाये। आँखों में काजल के गहरे डोरे दिये। उसने छाती पर पत्थर रख लिया था और सब काम खुशी-खुशी कर रही थी।

'यह तो होना था—यह तो होना था।'

वह दिल को समझाती। उन्हें अलविदा कहने बाहर तक आई। सपना पूना की गोद में प्रसन्न थी और हँस रही थी। जैसे सैर करने जा रही हो। तभी अचानक उसने बांहें तारा की तरफ फैला दीं। शायद उसके छोटे से मस्तिष्क ने किसी खतरे की कल्पना कर ली थी।

'माँ।'

तारा उसे लेने की बजाय ओठों को दाँतों में भींचे जल्दी से अन्दर चली गई। पूना धीरे-धीरे रास्ते की तरफ बढ़ा। उसने जी कड़ा कर लिया था। सपना जिद करने और रोने लगी। और उस घर की तरफ हाथ उठा-उठा कर पुकारती रही, जहाँ माँ रहती थी, वह रहती थी—पूना गले में फँसी हुई कोई चीज बार-बार निगलने की चेष्टा में था।

दुःख का सागर जो बेचैन होकर सपना की आँखों से छलक रहा था, पूना घूँट-घूंट करके उसे पी रहा था और तारा पिछली दो रातों से उसे अपने आंचल में छुपा रही थी।

पूना जब पुलिस-स्टेशन पहुँचा तो लम्बी और थकी-थकी सांसें कह रही थीं कि सपना सो गई है।

सब-इंस्पेक्टर मुस्कराते हुए उठ कर उससे मिला—

'आओ भाई पूना—कैसे रहे?'

फिर वह प्यार से बोला—

'मुन्नी कैसी है? अरे, यह तो बिल्कुल बदल गई।'

पूना लोहे की कुर्सी पर बैठ गया। उसके चेहरे पर दुःख और रास्ते की धूल जमी थी और ओंठ सूख गये थे—सलाम के उत्तर के सिवा

उसका दिल कोई भी बात करने को न चाहता था।

'क्यों पूना भाई, चुप क्यों हो ? रास्ते में कोई कष्ट तो नहीं हुआ—प्यास लगी होगी ?'

सब-इंस्पेक्टर ने नौकर को आवाज देकर पानी लाने को कहा। पूना अब बोला—

'आप की कृपा से कोई कष्ट नहीं हुआ।'

सपना की आंख खुल गई—

'अब्बा-मियां'

वह नींद में डूबी आवाज़ में बोली।

पूना की आँखें धरती पर गड़ी थीं। थानेदार ने पुचकारते हुये कहा—

'आओ मुन्नी, मेरे पास—'

परन्तु सपना ने अपने-आप को पीछे खींचते हुए कहा—'न—अम्मा पास जाना।'

वह फिर रोती हुई पूना से लिपट गई। नौकर पानी ले आया। पूना ने गिलास पकड़ कर मुँह से लगा लिया। थानेदार बोला—

'पूना, यदि यह लड़की तुम्हें हमेशा के लिये दे दी जाये तो।'

पानी सांस की नाली में सरक गया और पूना को धसक लग गयी। वह ज़ोर-ज़ोर से खांसने लगा। उसे विश्वास न हो रहा था। शायद खांसने से उसका चेहरा लाल और आँखें बाहर उबली पड़ती थीं। थानेदार उसके चेहरे से उसकी भावनाओं का सही पता न लगा सका। पूना प्रसन्न था, आश्चर्य में था—और पागल हो गया था। और उसका जी चाहता था वह यूँ ही खाँसता चला जाये। उसके अंदर जो दुःख और प्रसन्नता के भरे हुए झरने हैं उनके छलकने का किसी को संदेह न हो—उनकी आवाज़ किसी तक न पहुँचे, कि उबलती हुई भावनायें खतरनाक होती हैं।

फिर उसे सपना का पूरा केस पढ़ने को दिया गया। सपना एक निर्धन मज़दूर की बेटी थी। उसके माँ-बाप एक बड़े शहर की गन्दी बस्ती में रहते थे। उसका बाप कहीं दूर से मिलों और फैक्ट्रियों के शहर में काम ढूँढने की खातिर आया था—दोनों मियाँ-बीबी बड़े आराम से और प्रसन्न रहते थे। अपने काम से काम रखते। लोगों का ध्यान था कि माँ सोई-सोई काली आँखों वाली सुन्दर जवान औरत थी जो अपने हुस्न को ढाँपे-लपेटे झोंपड़ी के अन्दर ही रहती। वह ज़रूरत के सिवा कहीं भी आती-जाती न थी।

महंगाई बढ़ी और मिलों में हड़तालें शुरू हुई तो बस्ती में खलबली-सी मच गई। इन्हीं दिनों सपना का बाप घर से गया तो वापस न आया। माँ चुपचाप प्रतीक्षा करती रही। जब यह प्रतीक्षा बहुत लम्बी हो गई तो चुप्पी ने पागलपन का रूप धार लिया। अब वह दिन-रात बकती थी। जैसे सारे पर्दे उठ गये हों, हौसले के सारे बंधन टूट गये हों। कभी वह बच्ची को छाती से चिमटाये-चिमटाये फिरती और कभी बाहर मैदान में फेंक आती और आकर कोठरी की कुंडी चढ़ा लेती और चिल्लाती—

'तू मर गया, तेरी याद भी मर जाए तो अच्छा है।'

लोग रोती हुई लड़की को उठा कर उसके पास छोड़ जाते।

पगली को कोठरी में बंद हुए दो दिन गुज़र गये। पड़ोसियों को संदेह हुआ। वे दरवाज़ा तोड़ कर अंदर गए। पगली नंग-धड़ग फर्श पर लेटी, आने वालों को घूर रही थी। वहाँ बच्ची कहीं न थी। लोगों को जिज्ञासा हुई। उसे झिंझोड़ कर पूछा गया।

'मेरी बच्ची कहाँ है ? मेरी बेटी कहाँ है ?'

उसके बाद वह कई दिन तक 'मेरी बच्ची—मेरी बेटी कहाँ है।' कह-कह कर चीखती रही। कभी मैदान की तरफ दौड़ जाती, कभी बस्ती में घूमने लगती।

एक सुबह यह डरावनी और दु:ख भरी आवाज़ अपने-आप शान्त हो गई। लोगों ने देखा कि पगली की लाश मैदान में पड़ी है और कुत्ते उसके आस-पास भौंक रहे हैं।

पुलिस ने दो महीनों में यह रिपोर्ट तैयार की थी। और अब निर्णय लिया था कि लावारिस बच्ची को अनाथालय या किसी अन्य संस्था को सौंप दिया जाये—'अनाथालय से कहीं बेहतर पूना का घर हो सकता है।'

थानेदार के मस्तिष्क में यह विचार उभरा, और उसने तमाम कार्रवाई ठीक करके सपना को पूना को सौंप दिया।

□□

वह नन्ही-मुन्नी बच्ची अब कितनी चंचल और बड़ी हो गई है—घास पर लेटे-लेटे पूना की सोच कहाँ से कहाँ होती हुई पलट आई थी—अब वह छोटे-छोटे कामों में मां का हाथ बटाती है। बाप पर जान छिड़कती है। कैसे आराम से आकर उसने उनके जीवन की एक कमी को पूरी कर दिया—और अब कैसे निश्चिंतता से कदम उठाती उसकी ओर आ रही है।

पूना ने सूखे पत्तों की सरसराहट से जान लिया था। छोटे-छोटे हल्के-हल्के कदम पत्तों के साथ चर मर आवाज़ करते बढ़े आते थे—वह झूठ-मूठ आंखें बंद किए सो गया। वह बुला रही थी—

'अब्बा-मियाँ—अब्बा-मियां मैं आ गई।'

फिर वह पोटलिया एक तरफ रख कर बाप के चेहरे पर झुक गई और पपोटों को ध्यान से देखा—

'अब्बा-मियाँ, मुझे पता है आप जागते हैं।'

उसने बंद आँखों के पपोटों को चुटकियों में पकड़ कर छुड़ाना चाहा, पूना ठहाका लगा कर हँसता हुआ उठ बैठा और उसे अपनी गोद में बिठा लिया—

'अब्बा-मियां, रोटी नहीं खाओगे ?' सपना ने पूछा।

'और तू खा आई होगी न ?' पूना ने भी प्रश्न कर दिया।

'नहीं आधो-आधी खायेंगे दोनों।'

'मैं तो नहीं दूँगा—' बाप ने खाना रूमाल पर फैलाते हुए चिढ़ाने के लिए कहा—

'मैं खाऊँगी, आपके हाथ से खाऊँगी।'

पूना निवाले तोड़-तोड़ कर उसके मुँह में डालने और खुद खाने लगा। दोनों प्रसन्न थे।

सपना ने अचानक बाप से पूछा—

'अब्बा-मियां, मेरे नीलकंठ के पंख और चिड़िया के अंडे ?'

'अरे, तुझे अभी तक भूले नहीं।'

जीवन के अनगिनत कामों ने पूना की स्मरण-शक्ति को कमज़ोर कर दिया था। सपना के लिये अभी हर बात इतनी दिलचस्प और खरी थी कि दिल पर छाप-सी पड़ जाती। पूना उसकी स्मरण-शक्ति की हमेशा प्रशंसा करता। वह खाना समाप्त करते हुए तसल्ली से बोला—

'मैंने तो समझा था तू भूल गई होगी। अच्छा खैर ढूढेंगे दोनों, ठीक है न ? आज खाली हाथ वापस नहीं होंगे।'

तारा ने पठूरों को नहला-धुला कर खुला छोड़ दिया था और खुद बैठी दाल बीन रही थी। सूर्य झोंपड़ियों के पीछे चला गया था। शाम के ठंडे साये दूर-दूर तक फैले थे।

'बस बाप-बेटी वापस आते होंगे। देखूँ जाकर—'

तारा अपने-आप से ही बोलती हुई दरवाजे से बाहर झांकने लगी।

दूर से धूल उड़ती आ रही थी। तारा के चेहरे पर विश्वास और निश्चितता की मुस्कराहट फैल गई। फिर उस धूल में से सपना और कालू उभरे। वे घर की तरफ भागे आ रहे थे, जैसे उन्होंने आपस में शर्त लगा रखी हो। बकरियों के पीछे पूना लकड़ियों का गट्ठा उठाये चला आ रहा था।

सपना ने आते ही मां के सामने झोली फैला दी—

'मां, यह देखो ! मैंने और अब्बा ने मिल कर क्या कुछ खोजा है।'

सपना की आँखों में एक चमक देखकर तारा मजाक में बोली—

'ओ-हो, बड़ी कमाई कर लाये बाप-बेटी।'

सपना खुश थी। उसने दिखाने के लिये तमाम झोली चारपाई पर उलट दी—

'ये नीलकंठ के पंख हैं।'

'बिलकुल नहीं, मुझे तो ये तोते के लगते हैं।'

सपना मां के भोलेपन पर हंसी, और बाप को जोश से बताया—

'देखो अब्बा-मियां, अम्मा को नीलकंठ के पंख तोते के दिखाई देते हैं। हा-हा—'

सपना खुशी से बोले जा रही थी। उसे पता न था कि मां जानबूझ कर बन रही है। वह मां से हमदर्दी से बोली—

'अब्बा-मियां से पूछ लो। सच मां, इनको सब बातों का पता है—और यह झोंपल की दुम है—अम्मा—एक चिड़िया रास्ते में मरी पड़ी थी बेचारी—और मैना यहां होती ही नहीं—किसी दूर देश में होती है—अब्बा-मियां कहते हैं—वे कल किसी के साथ खरगोश का शिकार खेलने जायेंगे—मुझको साथ ले जायेंगे—क्या पता दूर देश वहां हो—मैं मैना पकड़ूंगी—आप खरगोश पकड़ना—हैं, अब्बा-मियां—ले जायेंगे न ?'

वह लगातार बोलती रही। तारा और पूना अपने-अपने कामों में

लगे उसकी बातें दिलचस्पी से सुन रहे थे। पूना बकरियों को बाड़े में बन्द कर रहा था। उसने वहीं से उत्तर दिया।

'कल आने तो दो बेटा। तू तो सिरफिरी हो गई है। इतनी इच्छा नहीं किया करते।'

तारा ने बात पकड़ ली—

'भला इसे क्या पता इच्छायें क्या होती हैं। मुझे कहते हो उल्टी-सीधी इसके सामने न किया कर, खुद इतनी बड़ी बातें कहते हो।'

तारा के कहने का ढंग शिकायत भरी हँसी का था।

'आज काम की बातें शब्दों की सूरत में इसके कान में पड़ेंगी तो उनके अर्थ समझने की चेष्टा करेगी। परसों उन पर चलना कठिन न होगा। तारो—अच्छे परिणाम की प्राप्ति के लिए कच्चे माल का बढ़िया होना पहली शर्त है।'

सपना रंगबिरंगे पंखों को सजाने में मग्न थी और माँ-बाप की बातों को बिल्कुल न सुन रही थी। उसे तो अपनी छोटी-छोटी चिन्ताएँ थीं। अभी मिट्ठू को चूरी खिलानी है। अभी बकरी का दूध दुहना है। शर-शर करती दूध की गर्म-गर्म धारें—झाग से बर्तन भर जाता है।

उसने संभाल-संभाल कर सारे पंख समेटे और अन्दर ताक़ पर रख आई। मिट्ठू भूख से बेचैन था। सपना को देखा तो पिंजरे में घूमने और शोर मचाने लगा।

'बीबी क्या करती हो—खाने को दो—बीबी चूरी' वह मुर्गियों को बन्द करते-करते रुक गई और एक जोर की धप्प पिंजरे पर जमाई—

'बदतमीज़ पेटू—अम्माँ, मिट्ठू बड़ा बदतमीज हो गया है। मैं उसकी गर्दन मरोड़ दूँगी—'

'अरे, तू उस पर रोब मत जमाया कर, जानवर है, तू क्या चाहती है आखिर।' सपना पिंजरे पर थप्पड़ और घूँसे बरसाये गई।

'कह आदाब अर्ज़—आदाब अर्ज़—आदाब अर्ज़—' मिट्ठू की छोटी-

दुनिया में तूफान आ गया—बेचारा सपना के साथ कहने लगा—

'आदाब अर्ज़, बीबी क्या करती हो—'

पूना दूर खड़ा तमाशा देख रहा था। बोला—

'तारो, देख ! क्या उस्तानी बनी रौब डाल रही है।'

माँ-बाप को अपनी तरफ देखता पा वह झेंप गई। और दूसरे काम के बहाने वहाँ से खिसक गई। माँ खाना तैयार कर रही थी। वह ऊपर के काम में हाथ बटाती रही। पूना बिस्तर लगा रहा था। सपना ने बाप की सहायता करते हुए एक बार फिर धीरे से पूछा—

'खरगोश पकड़ने चलोगे न ?'

'यह क्या कहती है—' तारा ने रोटी पकाते-पकाते पूछा।

'कुछ नहीं।'

सपना पूना के गले में बाहें डाले भूल रही थी। वह बीवी की बात को टाल गया।

'मैंने सुन लिया है, तुम लोग नहीं जाओगे—इसे घुमाते ही रहोगे या कुछ सीखने-सोचने भी दोगे।'

सपना का मुँह लटक गया।

'नहीं—'

'तुम वहाँ जा कर अवश्य डर जाओगी और खरगोश तुम्हारी आवाज़ सुन कर छुप जायेंगे—' पूना प्यार के साथ समझा रहा था।

'अब्बा-मियां, आप ले जाकर देखो। मैं चुप रहूँगी—बिल्कुल नहीं डरूँगी।'

'छी, यह क्या; कहा माना करते हैं। बदतमीज़ नहीं बना करते।' पूना ने उससे कहा।

वह इस बात पर सोचने लगी। पूना तारा के पास चला गया।

'बच्चों की हर बात टालना भी न चाहिये, इससे वह ज़िद्दी हो जाते हैं' तारा खौलते घी में नाचते प्याज के टुकड़ों को घूर रही थी।

घी और प्याज की खुशबू वहाँ हर तरफ फैली हुई थी ।

अम्मा और अब्बा बातें करते रहे । उसने चुपचाप खाना खत्म किया और बाहर आ कर लेट गई । आकाश पर तारों का जाल फैला था । पूना से बीसियों बार सुनी हुई कहानियाँ सुनते-सुनते उसकी आँखें मुँदने लगीं । न जाने कब वह अम्मा की बाँह पर सिर रखे-रखे सो गई ।

□□

सर्दी के मौसम के शुरू की शाम सांवली और कुछ सर्द थी । पानी में पाँव लटकाये बैठी सपना को छींटे उड़ाने में मज़ा आ रहा था । नीनू और छोटे मेमनों ने उसे भगा-भगा कर थका दिया था और वह दौड़ती हुई हँस-हँस कर हलकान हो गई थी । मेमने नदी के किनारे उगी हुई घास पर मुँह मार रहे थे । सपना ने शरारत से नीनू को पुकारा—

'नीनू ।'

नीनू भारी दुम वाला बादामी रंग का साफ-सुथरा और चौकन्ना कुत्ता था । मालकिन की आवाज पर झाड़ियों में से निकल आया । फिर बजाय सपना के पास आने के ज़मीन खोदने और सूँघने लगा । वह शर्म बरत रहा था क्योंकि सपना उसे सताने पर आती तो मज़े ले ले कर सताती ।

थोड़ी देर तक वह प्यार और शौक़ का मारा उसके कदमों पर लोटता रहा । सपना ने कोई ध्यान न दिया । उलटा दो-चार पाँव कमर पर मारे और पानी में खेलने लग गई ।

'नीनू—नीनू—'

नीनू ने फिर कान खड़े किये । वह भाग रही थी । वह पीछे दौड़ा ।

वह एक वृक्ष पर चढ़ गई। नीनू चढ़ने की असफल चेष्टा करके हार गया। सपना ऊपर बैठी उसको बुलाये जाती थी, हँसे जाती थी। पुचकारे जाती थी। वह बराबर भौंक रहा था। वह पत्ते और टहनियाँ तोड़-तोड़ कर फेंकती, वह क्रोध से उन्हें उचक लेता और झुंझला कर टुकड़े-टुकड़े कर देता। वह पत्तों को भी कभी यहाँ फेंकती, कभी वहाँ, नीनू उनके पीछे दौड़-दौड़ कर परेशान हो रहा था। सपना को उसकी मूर्खता पर हँसी आ रही थी। नीनू इस काम से उकता गया और फिर इधर-उधर घूमता, वृक्षों की जड़ों में पेशाब कर-कर के अपना क्रोध दूर कर रहा था।

सपना हँसी को ओठों में दबाये चुपके से नीचे कूद आई। और नदी की ओर चल दी। नीनू उसके पास पहुँच गया। सपना ने उसकी थूथनी के लिजलिजे पीलेपन को अपने पाँव की चमड़ी पर महसूस किया। वह प्यार चाहता था। उसकी खुलती-मुँदती सुन्दर काली आँखें जैसे प्यार छलका रही थीं। सपना ने उसे बहुत थपथपाया और प्यार किया। अब वह प्रसन्न नज़र आ रहा था।

'अच्छा आओ, अब चलें।'

पाँव धोते हुए उसने नीनू से कहा।

खेल ही खेल में कितनी गहरी शाम हो गई है। धुंध की चादर है कि हर तरफ बिछ गई है।

वह रेत से रगड़-रगड़ कर हाथ-पाँव धो रही थी—पीछे से दो हाथों ने उसकी आँखें ढाँप लीं।

'अँ—कौन ?'

उसने हाथ हटाने चाहे।

'पहचानो।'

वह हाथों से टटोलती हुई बोली :

'कौन है ?'

थी । पूना हाँफता हुआ वापस आ गया ।

'बस हार गये—'

'हाँ हार गये—'

'सपना का उत्तर इतना ही संक्षिप्त था जितना अब्बा-मियाँ का प्रश्न । वह सर झटक-झटक कर ठहाके लगाये जाता था और कह रहा था—

'भला कुत्ते बकरी से क्या मुकाबला ? तुम उनके साथ शर्त बदना जानती हो ।'

'अब्बा-मियां आप बड़े हैं, मैं छोटी हूँ—'

उसने ऐसे ही कह दिया ।

'वाह भई वाह, यह भी कोई बात हुई । मैं बूढ़ा भी तो हूँ ।'

वह उसके कंधे पर प्यार से हाथ रखे चल रहा था ।

'तुम कुन्ती के साथ नाराज हो आजकल ?'

'नहीं तो ।'

'फिर तुम उसके पास जाती क्यों नहीं ? न उसे तुम्हारे पास देखा है—'

'अब्बा मियाँ, उसके ब्याह की तैयारियाँ हो रही हैं । उसकी माँ बाहर निकलने नहीं देती—मैं क्या जाऊँ—'

'वह तुम्हारी सहेली है न ।'

'हाँ है तो—इस पौष में उसकी शादी हो जायेगी ।'

'तुम्हारी भी शादी कर दें—'पूना ने पूछा ।

सपना के सारे शरीर में एक लहर दौड़ गई । आवाज़ गले में अटकी हुई थी । उसके पास कोई उत्तर न था । वह क्या कहे—'हां' कह दे—कितनी अजीब बात है ? और 'न' कह दे ! पर कुन्ती के कितने नये और सुन्दर कपड़े बन रहे हैं । उसकी माँ चीज़ें बना-बना कर गाँव भिजवाये जाती है और बात-बात में शगुन मनाती है । और कुन्ती को देखो, फूली

नहीं समाती। किसी की चिन्ता ही नहीं। छी—मैं कौन-सी चिन्ता करती हूँ—वह सोचती चली गई।

'अब्बा मियां।'

'हूँ।'

पूना अब तक दोनों घड़े भर चुका था। उसने लड़की से प्रश्न करके उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की और अपने काम में लग गया।

बहती नदी का पानी सुर्ख था और आकाश पर लाली फैल गई, उड़ते बगुलों के पंख सुनहरी थे। पूना ने देखा कि सपना नदी में डूबते सूर्य के थाल को ध्यान से देख रही है और उसके चेहरे, बालों और आँखों में सिन्दूर बिखर गया है। उसने एक बार फिर कहा—

'हाँ, तू क्या कह रही थी।'

'मैं—मैं यह कह रही थी अब्बा मियां कि आपने कभी सूर्य को नदी में नहाते देखा है—उसके सोने के शरीर ने नदी के पानी को सोना कर दिया है—हाय अब्बा-मियां, देखो तो सही—'उसने अचानक बेचैन होते हुए कहा।

'न मैंने काहे को देखा, मेरी आँखें कहाँ हैं।' पूना ने व्यंग और निहोरे के साथ कहा।

'हैं, क्या, क्या कहते हो अब्बा-मियाँ ?'

सपना ने बाप के लहजे को भांप लिया और खिसक कर बाप के निकट आ गई। पूना तसल्ली से बोला—

'मैं यह कहता हूँ, मेरे पास आँखें तो हैं पर दृष्टि बदल गई है। मैं जब तेरी आयु का था तो यह सारी दुनिया बड़ी नई और सुन्दर लगा करती थी। उसकी हर चीज़ देखने समझने और पाने के योग्य थी। हर दिन नया और आशाओं से भरा लगता था। अब तेरा ज़माना है—तू देख और समझ। हाँ तो तेरा ख्याल है मैंने ऐसा समय कभी देखा ही नहीं ?'

'ऐसे ही मेरे मुँह से निकल गया। चलो हम कोई बात पूछेंगे ही नहीं।'वह रूठने वाले ढंग से परे सरक गई।

पूना ने उसे खुश करने के लिये ठहाका लगाया। उसे पता था कि जब वह रूठती है तो चुप हो जाती है और क्षण भारी-भारी होकर गुज़रते हैं। उसे मनाना और नाराज़ करना दोनों ही मुश्किल काम हैं।

और वह असम्बन्धित बैठी घास नोच-नोच कर नदी में बहा रही थी और पाँव पिंडलियों तक पानी में थे।

'बेटा, किसी समय बड़ी खरी बातें मुँह से निकल जाती हैं और तू तो मेरी बहुत मासूम और भोली बेटी है। इस समय को जिस नजर से तुमने देखा है, मैंने शायद कभी न देखा हो। हर व्यक्ति के दृष्टिकोण मे अन्तर होता है।'

पूना संजीदगी से चेहरे के उतार-चढ़ाव, हाथों के इशारों और आँखों की ज़ुबान के साथ समझाते हुए बोल रहा था। उसे बातें करने का दौरा शुरू हो गया था। सपना सर हिला-हिलाकर उसकी बातें सुनती रही। पक्षी घोंसलों को लौट रहे थे और रात के सैलानी चम-गादड़ों की लकीर एक क्षितिज से दूसरे क्षितिज तक सरसराहट पैदा करती खिंच गई थी।

पूना ने आकाश की तरफ देखा और अचानक बातों का रुख बदल दिया।

'आख—थू!' वह थूकते हुये बोला—'चमगादड़—बड़ा कमीना शत्रु है। रात के अँधेरे में फलों पर आक्रमण कर देता है। उसके पेशाब से चम्बल की बीमारी हो जाती है, तुम्हें पता है? अमरूद की फसल की हानि करता है—हाँ तो—तुम्हें सूर्य कैसा लगता है? पिघले हुए सोने जैसा? सोना बड़ी मूल्यवान चीज़ है। यह मूल्य ही मोह और आकर्षण है—इस समय तुम्हारा चेहरा,

तुम्हारे बाल, सब कुछ सोने जैसे हो गये हैं। तुमने जंगल में हज़ारों सुनहरे फूल देखे होंगे। उन फूलों का मूल्य कुछ नहीं—मैं उनको देखता हूँ, प्रसन्न होता हूँ तो तोड़ लेता हूँ और मुझे पता भी नहीं चलता वह कब मेरे हाथ से गिर गया। कहाँ गिरा? शायद अर्ध-चेतन अवस्था में मैं उसे नचाता-घुमाता रहा हूँ या मसलता रहा हूँ। मुझे उसकी क्या चिन्ता हो सकती है। परन्तु तुम मेरे लिये सोने से भी अधिक मूल्यवान हो। तुम मेरे बुढ़ापे का सहारा हो। मेरा भविष्य तुम से बँधा है—'

'तो अब्बा मियाँ, तुम्हें मुझ से वैसे प्यार नहीं—' सपना पूना की इतनी बातों से उकताई हुई बोली। पूना ने बेटी के लहजे को महसूस किया।

'वैसे क्या—हर तरह से है—तुम नहीं समझ सकतीं। प्यार जीवन की आवश्यकता और स्वार्थ होता है। माँ-बाप जब बच्चों के लिए कष्ट उठाते हैं, अपने आराम और शान्ति की चिन्ता नहीं करते, उस समय उनके सामने बच्चों का भला नहीं होता, बल्कि इससे उनकी भावनाओं को चैन मिलता है। इस चैन को प्राप्त करने के तरीके उचित और अनुचित हो सकते हैं। यही समय बच्चे के चरित्र और व्यक्तित्व के बढ़ने का होता है।'

'अब्बा मियाँ, तुम तो किसी समय पुस्तकों से भी अधिक कठिन बातें करने लगते हो।'

बात अच्छी-भली साधारण थी—कितना अच्छा दृश्य खो दिया—सूर्य का आधे से अधिक भाग नदी में डूब चुका है और धूप के साये लुप्त हो चुके हैं।

सपना अपने सोच में गुम थी।

'हाँ, तो मैं कह रहा था सपना बेटा, तुम्हारे भी मोह करने के दिन हैं। और अधिक, और आगे बढ़ने के दिन हैं। सोचने से अधिक कर

डालने के दिन हैं। यही यथार्थ जीवन है—तुमने मुझ से पूछा था कि मुझे कैसा लगता है। मुझे तो यह आग दिखाई देता है—आकाश और धरती पर चिंगारियाँ लपकती दिखाई देती हैं—आग की इच्छा मेरे लिए निरर्थक चीज है—आग की इच्छा कर के भस्म होना अच्छा नहीं—हाँ इससे गर्मी प्राप्त करना ऐसे ही है जैसे जीवन की इच्छा करना—बेटा तू अपने-आप को छू कर देख।'

पूना ने दोनों हाथ सपना के गालों पर रख दिये। फिर गर्दन को छूता हुआ दोनों हाथों को रगड़ने लगा, और गर्म हथेली सपना के ठंडे गाल पर रख दी।

'यह गर्मी है और यह जीवन है। शायद इसको आत्मा भी कहते हैं। आत्मा रोशनी है, आग, चाँद, सितारों, सूर्य, पानी में—और तुम सब में यह जारी है—यह रोशनी कहीं चुपचाप चमकती है, कही झर-झर बहती है और कहीं दिल और मस्तिष्क बन कर शरीर पर साम्राज्य करती है, और इन्सान अपने-आप को नहीं परख सकता क्योंकि शरीर का पर्दा बीच में आ जाता है।'

शाम का सितारा धुंध में से उभरने की चेष्टा कर रहा था। पूना को ख्याल आया कि वह लड़की से बहकी-बहकी बातें करने लगा है। वह जल्दी से उठा और पानी का घड़ा कंधे पर रखते हुए नीनू को आवाज दी—

'चलें'

सपना धीमी और खोई हुई आवाज में कुछ बोली। फिर घड़ा कूल्हे पर टिका कर वह चल दी।

वातावरण ओस पड़ने से ठंडा हो रहा था। नंगे पाँवों के तलवों में चुभती ठंडी घास आत्मा में ताजगी और शरीर में गुदगुदी पैदा करती थी। बाप-बेटी चुपचाप चल रहे थे। पूना का सिर गर्व से उठा हुआ था। आज एक लम्बे अरसे के बाद उसने ऐसी शानदार बातें की थीं

और सपना ने उसकी एक बात न काटी थी। वरना वह प्रश्न किये जाती और बहस में उलझती रहती। शाम के तिलिस्म ने उसे चुप लगा दी थी कि वह सूर्य की सुन्दरता में खो गई थी, और फिर फैलते अँधेरे ने उसे हैरान और चुप कर दिया था—और पूना एक बार फिर बोलने लगा था—

'शाम का समय कैसा अजीब होता है। अँधेरा सुख का अगुआ है। दिन भर के थके-मांदे लोग अपने-आप को ढीला छोड़ कर आराम की गोद में चले जाते हैं—मस्तिष्क सांसारिक चीजों से ध्यान हटाकर बड़े आराम से सोच सकता है। अँधेरे के परदे गिरते हैं और मस्तिष्क से परदे सरक जाते हैं। गुजरा हुआ दिन, और बीते हुए जमाने, दुख और सुख, अपनों और गैरों की कहानियाँ दुहराई जा सकती हैं—क्योंकि शाम भावनाओं के मचलने का समय है। उसके बाद रात आती है। रात कैसी हो, नींद आये या करवटें बदल कर गुजरे, उसका उपाय शाम नहीं बताती, बल्कि समाँ बाँधती है—बेटा, मैं बूढ़ा हो गया हूँ, शायद इसलिये ऐसा सोचता हूँ। बुढ़ापा भी तो जीवन की शाम है। यादें ढीली पड़ जाती हैं और तजुरबों के कारण मस्तिष्क नई सोचों को परखता है—और उन लोगों को नसीहतें करता है जो शाम के झुटपुटे से अभी दूर हैं और दिन के मुसाफ़िर हैं। दिन का चतुर उजाला आँखों को चुंधिया देता है और हर क़दम पर पाँव रपटने का खतरा रहता है। ऐसे में कोई लुढ़क जाए तो बड़ी हँसी आती है—लोग जीने नहीं देते। दिन रात की, बुढ़ापे की इच्छा करता है, मौत की इच्छा करता है। झुटपुटे में रहने वाले हम बूढ़े, उजाले के राही जवानों को, पाँव जमा कर रखने की शिक्षा देते रहते हैं—'

'सीप—'

पूना ने बोलते-बोलते रुक कर सपना को प्यार से आवाज दी।

'हूँ'

'तू बोलती क्यों नहीं ? क्या तू अभी तक नाराज है ?'

'क्या बोलूँ अब्बा मियाँ ?'

सपना खोई-खोई सी बोली ।

'कुछ नहीं—कुछ नहीं बेटा—'

पूना का गला न जाने क्यों रुँध गया था ।

'मैं कुछ भी नहीं बोल रही—'

सपना जैसे उकताहट के साथ बोली ।

'तो हम तेरी शादी कर दें—'

वह कोई उत्तर न दे सकी । पूना की बेतुकी बातों से उसका जी खुश न था ।

'अब्बा का मस्तिष्क इधर से उधर कूद-फाँद करता रहता है ।'

वह घर की दहलीज पार करते हुए सोच रही थी । अम्मा चूल्हे के सामने बैठी खाना पका रही थी । दीपक की मद्धिम रोशनी में वह कैसी बूढ़ी और वीरान दिखाई देती थी ।

□□

अषाढ बीत चुका । सावन के प्रारम्भ के दिन थे । आकाश धुला हुआ और अधिक नीला दिखाई देता । बादलों के जमघटे लगते और जल-थल एक हो जाते । आँधियाँ थम गई थीं । सपना को तेज हवा से घृणा थी । परन्तु घृणा के साथ ही एक डर भी । हाँ, बादल अच्छे थे । बरखा उसे पसंद थी । बादलों को देखकर वह हमेशा कहीं उड़ जाने का सोचती । उसे यूँ महसूस होता जैसे वह हल्की-फुल्की कच्ची उम्र की चिड़िया हो—जैसे आत्मा शरीर के बोझ को भूल चुकी हो । जल-थल पानी उसके

हृदय में हलचल पैदा कर देता। हृदय की मुँदी-मुँदी अखियाँ ठंडे पानी के छींटों से जैसे खुल जातीं और उसे यूँ लगता कि उसके जी के अन्दर कई तहखाने हैं और उनके पट आप ही आप ठंडो पवन के झकोरों से खुल जाते हैं। उनके अन्दर क्या है ? वह उनमें झाँकने से शरमाती थी। डरती थी।

अम्मा पिछले कई दिनों से बरसाती बुख़ार में पड़ी थी। दवाइयाँ खाते, परहेज़ करते-कराते भी बिस्तर पकड़ने की नौबत आ गई थी। सपना को घर के काम करने की इतनी आदत कहाँ थी। वह तो माँ के दम से सारा काम ढङ्ग से चल रहा था। ऊपर से बीमारी और परेशानी ने काम को अधिक और सपना को सुस्त बना दिया था। माँ की कुछ बातों को बार-बार सुनते-सुनते कान पक गये थे। वह बिस्तर में पड़ी हर समय उसके लिये चिन्तित रहती। जब वह काम-काज में लगी होती तो अम्माँ और अब्बा मियाँ सर जोड़े बातें करते। कभी कोई हवा के बहाव पर उड़ती बात कान में आ पड़ती तो उसका रोम-रोम दम साध लेता।

'सपना जवान हो गई है। मैं बीमार पड़ गई हूँ।'

और अब्बा-मियाँ दु:ख में डूबे कहता—'मुझे मालूम है, भला मुझे चिन्ता नहीं—'

फिर नरमी के साथ माँ के चेहरे पर बिखरे हुए बालों को हटा देता और आँखों में झाँकता।

'तू क्यों जी हलका करती है। बुख़ार ही तो है टूट जायेगा।'

वह सपना को ऊँची आवाज़ से पुकारता जैसे अपने दु:ख में किसी को सम्मिलित करना चाहता हो।

'सीप, देख, तेरी माँ कितनी कमज़ोर है—'

और सपना देखती कि उसका बाप खुद कमज़ोर हो गया है। बात-बेबात उदास हो जाता है। आँखों की चमक पहली-सी नहीं रही, और हाथ जो मजबूत थे, माँ के माथे से लटें सँवारते काँप जाते। उसके

सारे शरीर पर धुँधलका सा फैल गया है।

सपना का दिल दुःख से भर जाता। वह सोचती और उदास हो जाती।

'अरे, तू भी उदास रहती है।'

वह उसके सर पर धौल जमा कर खोखली हँसी हँसा।

'तू अपनी माँ को ठीक से दवा नहीं पिलाती—'

'पिलाती तो हूँ अब्बा मियाँ।'

वह शिकायत वाले लहजे में बोली।

'मगर यह तुम से इतनी रुष्ट क्यों है? सच-सच बता दूँ सपना बेटे, तुम्हारी माँ बीमार क्यों है, यह चाहती है कि तुम्हें—'

'क्या चाहती हूँ?—'

तारा ने पूना की बात को आधे में उचक लिया।

'मैं वही चाहती हूँ जो माएँ बेटियों के भविष्य के लिये चाहती हैं। एक घर, एक भरोसे वाला साथी—कोई औरत इससे अधिक नहीं चाहती। मर्द बाप हो या पति, भाई हो या बेटा, वह हवा का झकोरा है—यदि कमज़ोर है तो औरत मिट्टी की तरह नीचे बैठ जायेगी, मिट्टी में मिल जायेगी। जानदार है तो उसके संग-संग घूमती फिरेगी।'

'हा-हा—'

पूना ने तारा की बाँह दबाते हुए जवानों का अल्हड़ ठहाका लगाया।

'तारो, तुझे भी सोचने और चिन्ता करने की आदत पड़ गई है। अच्छा है, दिल लगा रहता है।'

शादी की बात चलती, तो अक्सर दोनों में झगड़ा हो जाता। बहस लम्बी हो जाती और कोई निर्णय न हो पाता। न मालूम क्या होने वाला था कि दोनों पहलू बचा रहे थे। दोनों यथार्थ का सामना करने से कतराते थे।

पूना तारा के लिये दवा लेने जा रहा था। तारा धीमी आवाज़ में

कितनी देर कुछ कहती रही—ताकीद करती और वादे लेती रही। यह ताकीद वादे उसे उन दिनों ही याद आये थे। पूना सुनता और उसके चेहरे पर प्रतिक्रियाएँ बदलतीं। कभी सुनी अनसुनी कर देता, कभी अत्यधिक संजीदा और चिन्तित नज़र आता। एक उड़ती सी नज़र काम-काज में व्यस्त सपना पर डालता, वह सर झुकाये बाहर निकल गया। सपना का जी चाहा भाग कर अब्बा मियाँ को रोक ले और पूछे—

'अब्बा मियाँ, अम्मा तुम्हें क्या कहती रहती हैं। तुम अजीब-अजीब से रहने लगे हो—जो वह कहती हैं वह कर क्यों नहीं देते—और क्या वह अपनी मौत की बातें सुनाती हैं—हाय अल्लाह, उनकी जगह मैं मर जाऊँ। मुझसे किसी की जुदाई न सही जायेगी। अम्मा वह बात मुझे क्यों नहीं बतातीं। मैं जो उनसे इतना प्यार करती हूँ और उनके इतना निकट हूँ जैसे आँख का तिल—वह अपनी चिन्ता को सीने में दबाये मुझे चुपचाप यही देखती रहती हैं, या कभी भींच-भींच कर प्यार करती हैं और आँसू बहाती हैं—अब्बा मियाँ, उनसे कह दो, मैं उनके सारे दुःख चुन लूँगी, अब्बा-मियाँ, मैं कोई ग़ैर हूँ—तुम्हीं में से हूँ।'

पूना जा चुका था। वह कुछ भी न पूछ सकी। मां की पायंती पर बैठी आँसू बहाती रही। तारा ने उसे खींच कर सीने पर लिटा लिया। उसकी आंखों से दुःख और प्यार गड्डमड्ड हुये बह रहे थे। सपना ने महसूस किया कि सिसकियों के झक्कड़ चलने लगे हैं और ये माँ के लिये बिल्कुल ठीक नहीं। वह न चाहते हुए भी वहाँ से उठ गई।

बाहर बरसात की पीली धूप फैली थी। अभी दिन थोड़ा चढ़ा था और डरबे में मुर्गियाँ किटकिटा रही थीं। अब्बा-मियाँ बकरियाँ खोलना भूल गये थे। वह तो कभी कोई काम न भूलते थे। उसका जी एक बार फिर भर आया। माँ हौले-हौले कह रही थी—

'तू अकेली डाँवाडौल फिरती रही है—अब मैं सोचती हूँ कि हम किस क़दर स्वार्थी थे। इस जंगल में डेरा डाले एक-दूसरे में खोये रहे।

यह न जाना कि जीते जी जीने के दु:खों से भाग नहीं सकते—आज हम चार लोगों में बैठे होते तो किसी से कुछ कहते—कुछ सीखते—'

सपना माँ को दीवार के सहारे बिठाते हुये मस्तिष्क में पूना की बात दुहरा रही थीं कि बुढ़ापे और बीमारी में इन्सान पर निराशा के दौरे पड़ने शुरू हो जाते हैं। यदि वह कम बोलने वाला है तो पहेलियाँ बुझायेगा और यदि अधिक बातें बनाने वाला है तो दूसरों को नसीहतें देगा। ये दोनों उदाहरण उसके अपने घर में मौजूद थे।

'रोटी पकाई है ?'

माँ ने पूछा।

'नहीं, क्या भूख लगी है ?'

सपना की आँखें झुकी थीं।

'नहीं, मेरा ख्याल था धुएँ से तुम्हारी आंखें बोझिल हैं।'

तारा को बुखार की अधिकता से किसी तरह चैन न पड़ता था। ऊपर से सावन के महीने की सीली घुटन। वह चारों ओर देखती हुई बोली—

'पत्ता तक नहीं हिलता। शाम तक बारिश हो जायेगी। हो जाये तो अच्छा है।'

सपना माँ के पाँव दबाते हुए सोच रही थी। उनके झोंपड़े का फूस पुराना हो चुका है—बकरियों के छप्पर को खतरा नहीं। अभी पिछले वर्ष नया डाला था। और मुर्गियों का डरबा भी सुरक्षित है—बाक़ी सब ठीक है, एक उनकी झोंपड़ी की छत के सिवा। अम्मा बीमार न पड़तीं तो यह भी बदलवा दी जाती।

सपना की आँखों की नमी हौले-हौले कम हो गई। घर के कामों और जिम्मेदारियों के विचार ने उसके आँसू सुखा दिये। तारा ने अचानक नया विषय छेड़ा—

'पार साल तुम्हारी सहेली कुन्ती की शादी हो गई। मैं चाहती हूँ

तू भी अपने घर चली जाये। हम स्वार्थी थे कि तेरे बारे में कोई निर्णय न लिया। शादी हो जाये न तेरी ?'

माँ ने ठीक वही बात कही जिसका उसे कभी-कभी संदेह हुआ करता था।

बस इतनी-सी बात !

उसका जी चाहा यह बात लहक कर माँ से कहे और हँस पड़े, परंतु न कह सकी। मां के बीमार चेहरे पर उस मुस्कराहट का संकेत था जो शरारत में गुंधी हो।

तारा के इतना कह देने से सपना की चिन्ता कम हो गई—कोई बात तो खुली। अब उसे चुपचाप की बातों से अधिक मतलब नहीं था। वह जागते में स्वप्न देखती। लोगों के बारे में सोचती।

वह दिन जब कुन्ती का मियाँ आया था। और कुंती सुन्दर रंगीन कपड़े पहने, गहने लादे उसके साथ भेज दी गई तो सब किस तरह उदास थे, कितना रोये थे। परन्तु जब वह वापस मैके आई तो क्या खुली हँसी हँसती थी। वह पराई भी लग रही थी। निथरी और निखरी हुई थी। और यूँ इतरा कर चलती थी जैसे उसके सामने सारी दुनिया कुछ न हो। उसका दूल्हा कैसा था ? बस ऐसा ही था। दूल्हे ऐसे ही होते होंगे। उसे भी कोई इसी तरह आकर ले जायेगा। अम्मा जो हर समय इसी चिन्ता में रहती है—वह भी एक घर बनायेगी—और अम्मा की तरह बीमार और बूढ़ी हो जायेगी। बस, यह खेल है सारा, परन्तु कुन्ती तो बहुत प्रसन्न है—शायद अम्मा भी किसी ज़माने में प्रसन्न रही हो। वह अवश्य प्रसन्न रही होगी। अब्बा मियाँ अच्छे सुन्दर होंगे। फिर अम्मा के पुराने कपड़े जो अब तहों से बोदे हो गये हैं, उनका रेशम कैसा मुलायम है और वह तानपूरा और सितार जिनकी लय पर गाते हुए मां उसे कितनी भली और महान् लगती थी। जैसे सब पर छा गई हो। यूँ लगता था जैसे निकट बहती हुई नदी थम गई हो और समय रुक गया

हो। माँ के गाने में जो संगीत था उसका कोई आदि अन्त नहीं। उसने लाख माँ की तरह गाने की चेष्टा की पर वह बात न पैदा हो सकी। अब्बा मियाँ न रोकते तो सितार बजाना सीख ही लेती। उनको इस बात से न मालूम क्यों चिढ़ है, फिर भी उसने कई चीज़ें सीख लीं। तानपूरे के साथ हल्के-फुल्के गाने वह गा सकती है।

अब माँ को अजीब चीज़ें पसन्द आने लगी हैं। वह रात को उससे मीराबाई के भजन सुनाने को कहती हैं। और कुन्ती का बापू धर्ममित्र कहता है कि मीराबाई हिन्दू थी, उसके भजन हिन्दुओं के लिये है, मुसलमानों को नहीं गाने चाहिए। भजन क्या होते हैं? हम क्या हैं? मुसलमान! भला मुसलमान क्या होते हैं और हिन्दू क्या होते हैं। कुन्ती बिल्कुल मेरे जैसी लड़की है। मेरी तरह खाती-पीती, सोती-जागती है। उसकी माँ के चेहरे पर भी वह सादगी है जो अम्मा के है। फिर यह अन्तर क्या हुआ? कुन्ती का बापू जिसे धर्म कहता है, अब्बा मियाँ उसे मज़हब कहते हैं।

सपना ने पूना से कई बार पूछा कि वह इसको स्पष्ट करे। वह लम्बी बातों में चला जाता। उसने कोई विशेष लकीर खींचकर नहीं बताया कि इधर मज़हब है और उधर कुछ भी नहीं—खालीपन है।

इस प्रकार के विचार सपना को यहाँ से वहाँ लिये फिरते और उसे ऐसा लगता जैसे जीवन सपाट मैदान है, उसमें रास्ता खुद बनाना पड़ता है। फिर यह रास्ता किस तरफ ले जायेगा इसका पता चलना भी उतना ही कठिन है जितना बताना मुश्किल है।

शादी की बात ने सपना की सोच में रंग और मज़ा भर दिया था। जब माँ आशा भरी बातें करती तो उसे अपने रास्ते में खुद-ब-खुद फूल खिल जाने का संदेह होता। हरा-भरा नर्म और सहल रास्ता। माँ अक्सर कहती—

'देखना, तेरा दूल्हा एक दिन चुपचाप चला आयेगा, तू सपनों में

खोई होगी और वह तुझे जगा देगा—यह यथार्थ स्वप्न से कहीं अधिक खूबसूरत होगा—तेरा बाप बड़ा समझदार आदमी है। तुझे किस तरह चाहता है, तू नहीं जानती। यह सारा भरा-पुरा घर तुम्हारा है—ये सब जानवर तुम्हारे हैं—तू अपने मियाँ के साथ मुहब्बत-प्यार से रहना—यह मियाँ-बीवी का भी अजीब रिश्ता होता है—बात चली और दिल में विचार उठ पड़ा—'

तारा सपना से वे बातें कहती थी जिनका उसे अभ्यास न था परन्तु वह उन्हें सपना के सामने दुहराने इतना आवश्यक समझती थी जैसे ब्राह्मण दूसरों के रोग के लिए मंत्र पढ़े।

वह मियाँ-बीवी के क़िस्से बढ़ा-चढ़ाकर सुनाती। सपना उन्हें ध्यान और दिलचस्पी से सुनती। तारा ने अब उसे मन-गढ़न्त कहानियाँ सुनाना बन्द कर दिया था। वह उसे यथार्थ की दुनिया में रखना चाहती थी। वह दुनिया जहाँ से तारा और पूना भागे थे। सपना को हर हालत में उधर लौटना था। दुनिया के सारे मर्द पूना नहीं हो सकते। फिर उन्होंने दुनिया से दूर होकर कौन सा दुःखों से छुटकारा पा लिया था।

तारा सपना के सम्बन्ध में उन तमाम कमियों को दूर करना चाहती थी जो उसे अपने संबंध में नजर आती थीं—वह उसमें गृहस्थी के बंधनों का आकर्षण पैदा करना चाहती थी।

पूना पहले से कहीं अधिक व्यस्त हो गया था। वह अक्सर शहर जाता। हर बार एक-दो बकरियाँ पकड़ कर ले जाता और वापसी में उसके पास कुछ नकदी और सपना के दहेज के लिये कोई न कोई चीज होती। माँ के स्वास्थ्य ने कुछ सँभाला लिया तो पूना की वही पुरानी प्रसन्न-मुद्रा लौट आई। वह माँ-बेटी को चीजें दिखा-दिखा कर डींगें मारता—

'देखो, बाजार का दिल निकाल लाया हूँ।'

सपना का विचार था कि वाकई उस जैसी दुनिया में एक ही चीज

थी जो उसका बाप उसके लिये खरीद लाया है। फिर वह चीज बड़े ट्रंक में संभाल कर रख दी जाती। तारा और पूना रात गये तक बातें करते और वह जागने और सुनने की चेष्टा करते-करते सो जाती।

□□

आज दोपहर आकाश से आग बरसती रही और शाम के समय घुटन में और वृद्धि हो गई। पक्षी-जानवर मुँह खोले हाँफ रहे थे। सूर्य ढल जाने के बाद भी गर्मी का ज़ोर न टूटा। जंगल के वातावरण में उमस थी।

पपीहा पानी-पानी करता निढाल हुआ जाता था।

जब वह बच्ची थी तो ऐसे घुटन के दिन माँ उसे कपड़े और गूदड़ की गुड़िया बना कर देती। सपना उसे चिता में जला कर अकेली ही खूब पीटती। जब कुन्ती के साथ मित्रता हुई तो पीटने का मजा और भी बढ़ गया। छाती कूटते-कूटते ऊँची आवाज में गुड़िया के वह-वह दर्दभरे रोने रोये जाते कि बड़े-बड़े सुन कर आश्चर्य करते। वे दोनों शायर न थीं पर जोश में शब्दों की बंदिश आप ही आप हो जाती थी—मात्र संयोग था कि बादल उमड़ आते और जोर की बारिश होती। उनकी माएँ कहती थीं कि यह टोटका है—बस ऐसा करने से बारिश आ ही जाती है।

पर अब तो वह छोटी-सी न थी। और कुन्ती कहीं दूर घर बसाये बैठी थी। और दिल पपीहे की तरह प्यास-प्यास पुकारता था। जाने यह कैसी प्यास थी।

पूना कस्बे से अभी तक न लौटा था। माँ-बेटी चिन्ता कर रही

थीं। तारा की तबीयत सँभल गई थी। कुछ ढीलापन वैसे था। सपना बैठी दाल चुन रही थी। काले बादलों सी लटें भारी-सी होकर पसीने से भरे चेहरे पर चिपक जाती थीं। वह हर बार हाथ से उन्हें पीछे हटा देती थी। तारा उसकी ओर ध्यान से देख रही थी। सपना की आँखें माँ की आँखों से मिलीं।

'अम्मा, कैसी बौखला देने वाली उमस है!'

माँ की आँखों में ममता की मुलायम मुस्कराहट को देख कर उसने शिकायत की।

'जवानों को गर्मी अधिक महसूस होती है और बूढ़ों को सर्दी—

माँ उसी तरह हँसती गई। जैसे आज अचानक उसे पता चला हो कि सपना की जवानी ओस में भीगे हुए फूलों की तरह स्वास्थ्यकर और ताजा है। सपना माँ की गहरी चुप्पी और अर्थपूर्ण नजर को भाँप, झेंप-सी गई और बात बदल दी—

'अब्बा-मियाँ नहीं आये, जाने क्या बात है!'

'हाँ, सूर्य ढलने से बहुत पहले आ जाया करते थे—तुम झुटपुटे में क्यों आँखें फोड़ती हो, पहले क्यों न दाल चुन ली।'

तारा को फिर पूना की चिन्ता सता रही थी!

'माँ, मैंने सोचा, अब्बा-मियाँ कोई सब्जी ले आयेंगे, प्रतीक्षा करती रही।'

पूना को शहर से वापसी में जब भी देर होती तारा को बुरे-बुरे वहम सताने लगते। खुदा न करे, यदि उसे कुछ हो गया तो। उनको कैसे पता चलेगा? माँ-बेटी बैठी ऐसे ही प्रतीक्षा करती रहेंगी। मेरा तो अवश्य दिमाग खराब हो जायेगा।

जवान लड़की के साथ कहाँ जाऊँगी?

दिन रात की ओर बढ़ा तो सपना बाप का रास्ता देखने नदी के किनारे जा खड़ी हुई। कमजोर तारा दरवाजे की चौखट थामे देख रही

थी ताकि दूर से आते को देख सके। बादल की गरज सुनाई दी। तारा का दिल काँप गया, वृक्षों पर चिड़ियों का शोर बढ़ गया मुर्गियों ने दुबक कर बैठना शुरू कर दिया—शाम की उदासी गहरी हो गई थी। और दिलों में डर और निराशा की परछाइयाँ डोल रही थीं।

'आज पता नहीं क्या होने वाला है।'

तारा बड़बड़ाई। उसके पूरे शरीर में कंपकपाहट थी, उसने भर्राई हुई आवाज में सपना को पुकारा—

'बेटा इधर आ जा, मेरा दिल डूब रहा है।'

सपना दौड़ती हुई आ गई, उसने देखा कि माँ दीवार का सहारा लिये खड़ी काँप रही है, आँखें बुझी-बुझी-सी अंदर को धँसी हुई हैं, शाम के धुँधलके उसके चेहरे पर बिखरे हैं, उसने कंधे का सहारा दे कर माँ को बाहों के घेरे में ले लिया—

'चलो माँ, अन्दर चल कर चारपाई पर लेट जाओ, आप क्यों आ गईं उठ कर, मैं जो हूँ, अब्बा मियां आते ही होंगे, मेरा दिल गवाही देता है, वह सही तरह से हैं।'

तारा ने चारपाई पर बैठते हुए कहा—

'हाँ, मुझे लिटा दो और ऊपर भारी कपड़ा दे दो, दीपक जला दो, मुर्गियों को बंद कर दो, तुम्हारे अब्बा ने कहा था एक बकरी कुछ बीमार है।'

तारा बोले जाती थी, वह बहुत कुछ कहना चाहती थी फिर अचानक चुप हो गई और अपने ओठों को भींच लिया।

कुछ आँसुओं का धुंधलका था, कुछ शाम का—सपना माँ को न देख पा रही थी और बिजली का कोड़ा पश्चिमी क्षितिज पर बेचैनी से तड़प रहा था।

उसने माँ पर कम्बल डाल दिया, जल्दी-जल्दी बर्तन समेटे और पक्षियों और जानवरों को बंद कर दिया, वह अपनी परेशानी में उन्हें

कुछ खिला भी न सकती थी, खाना तैयार करने को भी जी न चाहता था—दीपक जलाते हुए वह शिकायत के तौर पर बोली—

'ऐसे जीवन से तो कोई मर जाये—अब्बा मियाँ कहाँ रह गये ?'

हवा के तेज झक्कड़ चलने लगे थे और माँ चारपाई पर बेसुध पड़ी थी, सपना ने जाते-जाते रुक कर ऊँची आवाज में कहा—

'मैं अब्बा मियाँ को देखने जरा बाहर खड़ी हूँ।'

'न बेटा बाहर न जा, हवा तेज़ चल रही है और बारिश उतरी ही समझो।'

सपना दहलीज़ पर रुक गई। बूँदें पड़नी शुरू हुईं तो उसकी आँखें बरस पड़ीं। बादल कब से घुलमिल रहे थे।

आज की रात शायद मौत की रात है। कई वृक्ष उखड़ जायेंगे। कई पत्ते टूट गिरेंगे। न मालूम कौन-कौन कल का दिन न देख सकेगा।

उसने आँखें बन्द कर के सोचा—हवा क्रोधित भूतनी की तरह जंगल में चीखती-चिल्लाती फिर रही थी। अचानक मिट्टी की सुगंध हर तरफ फैल गई। ज़ोर की सांस लेते हुए उसने आँखें खोल दीं। जोश में एक-दूसरे के गले मिलते वृक्ष भयानक दिखाई देते थे।

'अब्बा मियाँ तुम कहाँ हो ?' उसके हृदय ने आवाज़ दी—कहीं दूर से आवाजें सुनाई दीं—मद्धम, जैसे उसके दिल की आवाज की प्रतिध्वनि हो। सपना के कान खड़े हो गये।

अब्बा-मियां आ गये। साथ जाने कौन है ?

उसने अनुमान लगाया, और लपक कर अन्दर से दीपक उठा लाई और लौ पर हाथ की छत किये सहन पार करने लगी। हवा का जोर टूट चुका था, परन्तु बारिश हो रही थी।

'हाय अब्बा-मियाँ तुम आ गये।'

उसने कुंडी उतारते हुए कहा। दो साये धीमी रोशनी में कांपे। वह ऊँची और निडर आवाज में बोली—

'अब्बा-मियाँ ।'

साये आगे बढ़े और सपना का दिल काँप गया । वह पीछे हो गई । वह भागना चाहती थी पर डर से उसका शरीर बोझिल हो गया था । वह जाने के लिये मुड़ी ।

'डरो नहीं, न हम चोर हैं, न भूत-प्रेत ।'

उस साये ने जिसका क़द कुछ छोटा था कहा । उसकी आवाज और लहजा आम देहाती बूढ़ों जैसा था । सपना ने अपने-आप को संभाला और देखा कि दोनों ने बरसातियाँ ओढ़ रखी हैं और उनके चेहरे साफ दिखाई नहीं देते । वह चुप थी ।

'पूना का घर यही है ?'

उधर से प्रश्न हुआ ।

'हाँ यही है । आप लोग क्या चाहते हैं, इस समय ?'

वह चेष्टा के बावजूद घबराहट को छिपा न सकी ।

'ओ हो बीबी, तुम तो परेशान हो गई हो । हम रात गुजारने के लिए ठिकाना चाहते थे, डाक बंगला दूर है और निकट में कोई घर भी नहीं ।'

यह बात दूसरे व्यक्ति ने कहा ।

सपना ने उस एक क्षण में महसूस किया कि उसका दिल हमदर्दी से पसीज गया है । अम्मा से पूछ कर उन्हें साथ वाली कोठरी में ठहराया जा सकता है । दीपक की रोशनी में उसने अनुमान लगाया कि वे मुसाफिर हैं । ऐसे मुसाफिर कई बार उनके यहाँ रुके थे । पर अब्बा होते तो बात थी । वे लोग खतरनाक दिखाई न देते थे, वह मर्द जो लम्बा था बातचीत से पढ़ा-लिखा लगता था । वह तुरन्त माँ से जाकर पूछ आई दूसरी कोठरी का दरवाजा खोल दिया और अन्दर प्रवेश कर गई । वे दोनों उसके पीछे-पीछे थे । उनके कपड़ों और पाँवों से टपकते पानी ने सपना का मेहनत से लिपा हुआ कच्चा फर्श खराब कर दिया । सपना

को अफसोस हो रहा था। लम्बे क़द के आदमी ने आते ही बरसाती उतार कर बूढ़े को पकड़ा दी और बालों में उँगलियाँ फेरने लगा।

'मैं दूसरा दीपक ले कर अभी आई।'

वह दहलीज पार करने वाली थी कि साफ और गम्भीर आवाज़ आई—

'ठहरो बीबी।'

सपना रुक गई। लम्बा आदमी जेबें टटोल रहा था।

'बाबा मेरा लाइटर कहाँ है ?'

'पता नहीं साहब।'

फिर वह सिगरेट ओठों में दबाये सपना को तरफ बढ़ा—

'सिगरेट सुलगा लेने दो बीबी।'

सपना चुप खड़ी थी।

सुगंधित धुआँ हौले-हौले फैला। नौजवान ने आंख उठा कर देखा, नर्म कोमल चेहरे के गिर्द खद्दर की मोटी चादर लिपटी और ठोड़ी के नीचे दीपक की लौ कांप रही है, लड़की की आँखों का आश्चर्य कह रहा था—हमने आज ही कपाट खोले हैं, पहली बार देख पाये हैं।

नौजवान को पवित्र मरियम की तस्वीर याद आई, जिसके सामने पुजारियों ने श्रद्धा-भक्ति से शमा जला कर रख दी हो, उसके चेहरे की रोशनी और शमा की लौ आपस में धुलमिल गये हों।

और सपना केवल इतना सोच रही थी—यह आदमी कितना लम्बा है और कितना झुक आया है—

'धन्यवाद ! अब जाओ, और दूसरा दीपक ले आओ।'

लम्बे आदमी के लहजे में रोब था। वह शेखी से चलता हुआ सामने बिछे हुए पलंग की तरफ बढ़ा।

सहन लांघते हुए और दूसरा दीपक तलाश करके जलाते हुए सपना का मस्तिष्क उसी मर्द के बारे में सोचे जाता था। उसने धीमे से माँ को

सूचना दी—

'माँ ! वे आए हैं।'

'कौन वह, तुम्हारे बाबा—इधर क्यों नहीं आये, साथ में कोई और है ?'

तारा आवाज़ें देती रही। बारिश के शोर में कुछ भी सुनाई न देता था।

बूढ़ा दरवाज़े में खड़ा कपड़े निचोड़ रहा था। नौजवान दोनों हाथों पर अपना सर टिकाये मैली छत को घूर रहा था।

'खाना खाओगे ?'

सपना ने अपना कर्त्तव्य समझते हुए पूछा।

'हाँ, तैयार है तो ले आओ—साहब को अवश्य भूख लगी होगी, जी साहब ?'

वह साहब की राय मालूम करना चाहता था, फिर वह सपना से बोला—

'बेटी, तुम्हारा नाम क्या है ?'

'सपना—'

'कितना अजीब नाम है—'

नौजवान ने चौंक कर उसकी तरफ देखा।

बूढ़े ने हल्का-सा ठहाका लगाया।

'वाह, लड़की, तो सोते-जागते अवश्य सपने देखती होगी, तभी तेरी माँ ने तेरा नाम सपना रख दिया, वाह भई वाह—'

'वाकई अजीब है—'

नौजवान मुस्करा रहा था, सपना ने महसूस किया जैसे यह मुस्कराहट उसके शरीर में मचलती हुई ओठों पर फैल गई है, और छाती धड़कने लगी है—

कहीं यह वह तो नहीं—यह वह तो नहीं—

वह उन्हें हँसता छोड़ कर तेजी से बाहर निकल आई—

अम्मा कहती थी, वह चुपके-चुपके एक दिन आ जायेगा। तुझे पता भी न चलेगा। कहीं यह वह तो नहीं जिसकी आँखों की चमक दीपक की लौ से चौगुनी है—और भीगे हुए भारी बाल बार-बार माथे पर आ गिरते हैं। सिगरेट पीते हुए ओठों के कोने सिमटते-सिकुड़ते हैं और आँखों की चमक जैसे कोई अच्छी-सी बात प्रकट होने के लिए मचल रही हो, बिल्कुल ऐसी जैसे अब्बा मियाँ की आँखों में होती है।

सपना के शरीर में नई चुस्ती और फुरती आ गई। तबीयत कुछ क्षण पहले की तरह ढीली न थी, बल्कि वह मशीन की-सी तेजी से खाना तैयार करने में लग गई, अब्बा मियां के न आने का विचार बार-बार उसे झिंझोड़ देता, वरना वह एक ही बात सोचे जाती थी।

यह वह तो नहीं—कहीं यह वह तो नहीं—

उसका जी चाहता था किसी को बताये। अम्मा के सिवा वहाँ कोई न था। वह कैसे कहे, क्योंकर समझाये कि वह कुन्ती के दूल्हे से कहीं अधिक सुन्दर है।

'अम्माँ।'

बिना सोचे उसने माँ को पुकारा।

'हाँ, कहाँ हैं तुम्हारे बाबा—'

'नहीं—माँ यह तो वह है—माँ—'

'वह कौन ?'

माँ ने फिर पूछा।

परन्तु वह उत्तर न दे सकी। उसका जी बताने के लिये मचल रहा था।

वही, माँ ! जिसका तुम इतना ज़िक्र किया करती हो। वैसा ही जैसा मैंने कहानियों की पुस्तकों में बार-बार पढ़ा और देखा और उन कहानियों में जो तुमने मुझे बचपन से अब तक सुनाई हैं। उनमें शहज़ादे

होते हैं न ! यह उन सब जैसा एक है । वैसा ही जैसा बरसों की सोई हुई शहज़ादी को जगाने कहीं से आप ही आप आ गया था और उसके एक स्पर्श से वह मौत की नींद से जाग उठी थी ।

सपना के मस्तिष्क में सारी कहानियाँ उभर रही थीं । गड्डमड्ड हो रही थीं—माँ की आवाज़ का उत्तर उसने बहुत देर में दिया—

'मेहमान लोग भूखे हैं माँ ।'

'खाना खिला दो—तुम्हारे बाबा कहाँ है—'

तारा को पूना की चिन्ता सता रही थी और लड़की पर क्रोध आ रहा था कि कोई बात ढंग से नहीं बताती—

'अब्बा-मियाँ तो नहीं आये माँ ।'

'अच्छा, खुदा खैर करे । मुझे पहले क्यों नहीं बताया । अजीब लड़की हो ।'

तारा को परेशानी हुई ।

'खाना तैयार हो जाये तो मुझे बताना—मैं खुद जाकर दे आऊँगी और देखूँगी कौन लोग हैं—'

तारा यह बात भूल गई थी कि सपना ने उसे मेहमानों के बारे में बताया था ।

बारिश थम चुकी थी और वह अन्दर बाहर लहर की तरह लहराती थी । आटा गूँधते हुए उसे आईना देखने का ख्याल आया । माँ की नज़र बचा कर देखा । दीपक की धीमी रोशनी में चेहरे की लाली बढ़ गई थी ।

हाय अल्ला, आँखें कैसी रोई-रोई और धुली-धुली लग रही हैं । आज तो उसने बाल भी नहीं बनाये । अब्बा-मियाँ घर पर न हों तो कुछ भी करने को जी नहीं चाहता । यूँ लगता है जैसे कुछ भी ठीक नहीं । वह अपने-आप को व्यस्त और असुरक्षित-सी समझती है—तभी उसे ख्याल आया कि कहीं दाल न उबल रही हो । वह बालों का सँवारना भूल कर रसोई में चली गई—और आईने में ग़ौर से देखना भूल गई—वह तवा

चढ़ा कर रोटियाँ पकाने में लग गई—

शप-शप—शप-शप—

बाहर कोई पानी में चल रहा था। उसके कान खड़े हो गये।

अब्बा-मियाँ उसे पुकार रहे थे।

पूना घर से कई कदम दूर होता कि आवाज़ें देना शुरू कर देता—'सीप—बेटा सपना—'

वह आँच धीमी करके आँगन में आ गई! पूना अन्दर प्रवेश करते हुए कह रहा था—

'मुझे देर हो गई! तुम लोग घबराये तो नहीं! और अभी तक कुत्तों को नहीं खोला! बड़े बेपरवाह हो—'

वह एक हाथ से पायंचे और दूसरे में जूतियाँ पकड़े ध्यान से चल रहा था! सपना दौड़कर अब्बा से लिपट गई और बच्चों की तरह चहकते हुये गठरी और जूतियाँ पकड़े पूना को माँ के पास ले गई! वह प्रसन्नता से हाँफ रही थी—

'अब्बा मियाँ, तुम देर से क्यों आये! अम्मा सख्त परेशान थीं और तुम्हारी राह देखने के लिये बाहर तक चली गई थीं। बारिश इतनी तेज़ थी और तूफान इतना जालिम था कि जंगल में कई वृक्ष गिरे होंगे!'

सपना के सीने में विश्वास और प्रसन्नता की नदी थी कि उसकी तेजी का उसे खुद पता न था!

'अब्बा मियाँ, हमारे यहाँ मेहमान आये हैं! वह तुम्हारा नाम पूछते थे! पता नहीं कौन हैं? अम्मा कहती हैं उनके लिये खाना तैयार करो! तुम्हें भी भूख लगी है? तुम्हारा तो सुबह का खाना भी उसी तरह रखा है! तुम आये ही नहीं! कहाँ रुक गये थे! हमने भी नहीं खाया—हमें भूख ही नहीं लगी—सब कुछ बचा पड़ा है! दो सब्जियाँ हो जायेंगी, अच्छा ही है—हमने बकरियों को भी चारा नहीं डाला! मुर्गियाँ भी ऐसे ही बन्द कर दीं—आज सुबह गर्मी थी—जभी बारिश हुई अब्बा मियाँ,

अब्बा मियाँ—'

पर पूना बीवी का हाल पूछ रहा था ! उसने सपना की बातें सुनीं या नहीं, परन्तु वह बोलती चली गई ! पूना ने तारा को उठते देख कर पलँग पर बिठा दिया था ! प्रसन्नता के कारण तारा का शरीर काँप रहा था और चेहरे पर विश्वसनीय मुस्कराहट थी !

'तारा—तारा, तुम तो भली चंगी हो गई हो—'

पूना यह वाक्य बार-बार दुहरा रहा था ।

मां-बाप को बातों में मग्न छोड़ कर वह रसोई में आकर रोटियाँ सेंकने लगी । उसका इरादा था कि वह बहुत ही सुन्दर सिकी हुई और गोल रोटियाँ पकायेगी—अब्बा मियाँ आ गए थे—अब कोई चिन्ता न थी । थप-थप की ताल पर उसका दिल नाच रहा था । दीवार के साथ पड़े हुए मटकों के पीछे छिपा कोई झींगुर सावन गा रहा था । मेंढकों ने शोर मचा रखा था । और अंगनाई वाले बरने के पेड़ पर बैठे पक्षी अपने भीगे हुए पंख बजा रहे थे ।

अब अब्बा मियाँ की आवाज़ दूसरे कमरे से सुनाई देती थी । शायद वे मेहमानों से मिलने चले गए थे—सपना ने सोचा—अभी खाना लेने के लिए आगे चले आयेंगे । यह उनकी पुरानी आदत है । घर में कोई आ जाये तो इतराये हुए फिरते हैं । हुक्म, हिदायत, मशविरे, सब एक साथ हाजिर ।

'देखो बेटा, खाने के बाद मीठी चीज़ अवश्य होनी चाहिए । शहर के लोग जरा तकल्लुफ बरतते हैं, और अचार रखना मत भूलना । ऐसे मौसम में अचार लाभ पहुँचाता है । चावल पक जाएँ तो मजा आ जाए । और सीप, तुम फलाँ भुजिया कैसी मजेदार बनाया करती हो—बन जाये तो अच्छा है । अपनी मां से कहो वह गर्म-गर्म चपातियों को घी से चुपड़ती जाये, दाल के साथ मज़ा देगी । चटनी इस समय तैयार नहीं हो सकती—न सही—'

सपना को इतनी सारी बातों में से कुछ याद रहतीं, कुछ भूल जातीं। पूना उसके हल्की-सी थप्प लगा कर हँसता—

'भुलक्कड़ है हमारी बेटी।'

फिर वह तारा पर मज़ाक के तौर पर क्रोध झाड़ता—

'तारो, तुम लड़की को प्यार-प्यार में बिगाड़ दोगी। भला पराये घर जा कर क्या करेगी। हाँ ठीक, तुम्हें क्या आता था, मैंने ही तुम्हें सिखाया—'

तारा कोई चुभता हुआ सा उत्तर देती तो दोनों में तू-तू मैं-मैं शुरू हो जाती और सपना के लिए यह निर्णय करना असम्भव हो जाता कि किसकी तरफ़दारी करे। उसे यह भी मालूम था कि थोड़ी देर बाद सब कुछ भूल-भाल कर वे ऐसे घुलमिल कर बातें करने लगते हैं, जैसे कभी लड़े ही नहीं।

तारा धीमे-धीमे चलती उसके पास आ बैठी। वह बड़े प्यार और शौक से सपना को काम करते देख रही थी। वह उस प्रसन्नता को बयान करना चाहती थी। जो उसे पूना के वापस आ जाने से हुई। वह उस दुःख और अविश्वास को, जो उसने पूना के देर तक न आने से महसूस किया था, दुहरा कर दिल का बोझ हल्का करना चाहती थी। इस बोझ की थकन पूना को देख लेने के बाद भी दिल में मौजूद थी।

उसने सपना को बताया कि उसके बाबा को शहर से निकलते-निकलते देर लग गई। रास्ते में आँधी और बारिश ने आ घेरा। इसलिए उसे नदी के उस पार किसी झोंपड़े में रुकना पड़ा। पुल पर से आने में तीन मील का चक्कर पड़ जाता है, फिर राह में कीचड़ और पानी—देर तो होना ही थी।

माँ बेटी ऊँची ठंडी सांसें भरती मुस्करा रही थीं कि वे कितनी बुद्धू हैं। इतनी जल्दी आस तोड़ बैठीं—पूना उधर से शोर मचाता आया—

'खाना तैयार हो गया ? बादल फट रहा है। चांद निकलने वाला है। जाने रात के कै बजे हैं।'

जब वह रसोई में आया तो खाना बड़े से थाल में सजाया जा चुका था। वह दोनों हाथों से तारा के कंधों पर बोझ डालते हुए झुक गया और बोला—

'मैं सोच भी नहीं सकता तारो, तू यहाँ बैठी है।'

तारा ने धीरे-से पूना के हाथ अलग कर दिये। वह कतई बीमार या कमज़ोर न दिखाई देती थी। दिली प्रसन्नता से उसका चेहरा चमक रहा था।

'अब्बा मियाँ, यदि तुम और देर लगा देते तो अम्मा को खत्म ही पाते और मैं भी सर पटक-पटक कर मर गई होती।'

'अरे, तो तुझे मरने के लिये सर फोड़ने की आवश्यकता पड़ती ?'

उसने ज़ोर का ठहाका लगाया और आगे कहा—

'बस इतना प्यार है हमारे साथ।'

सपना अपनी बात का मतलब समझते हुए झेप गई।

'सच ही तो कहती है। जवानी में जान से गुज़रना इतना आसान नहीं। मैं तो पहले ही अधमुई हूँ।'

तारा ने सपना की वकालत में सफाई पेश की। पूना सपना की पीठ थपथपाते हुए बोला—

'मैंने मज़ाक में कहा था। बेटी ठीक कहती है—'

वह खाना लेकर चला गया, और सपना को ढंग के गिलास तलाश करने में देर हो रही थी।

अब्बा मियाँ पानी के लिए पुकारे जाते हैं। आंगन में फिसलन हो रही है। उन्हें पता होना चाहिये कैसे संभल-संभल कर पाँव रखना पड़ता है। क्या मेरा दिल नहीं चाहता कि मैं भाग-भाग कर चीजें पेश करूँ— इक ज़रा पांव रपटने का डर है—अब्बा-मियाँ, तुम हो कि शोर मचाये

जाते हो। मेरा दिल है कि बेतहाशा धड़के जा रहा है—और यह इतना प्रसन्न है कि इस पर निराशा का हल्का साया भी नहीं—

कच्चे सहन में फिसलन हो गई थी। वह सोचती और संभल कर पाँव जमाती मरदाने में प्रवेश कर गई। तीनों मर्द खाना खा रहे थे। वह बूढ़ा जिसे पूना ने नौकर बताया था और वह मर्द जो जंगल का साहब था, जो बड़ी शान से उठता, बैठता और चलता था, वह भी जो उसका बाप था—वे सब एक ही पलंग पर बैठे थे।

बूढ़ा टाँगें पलंग से नीचे लटकाये, जांघों पर खाने की थाली रखे मजे से खा रहा था। उसने रोटी हाथ में पकड़ रखी थी। सपना को देखकर बोला—

'पूना भाई, मेरा ख्याल था तुम्हारी बेटी बैठी-बैठी सपने ही देखा करती होगी, परन्तु खाना अच्छा-खासा बना लिया।'

वह खुद ही हँस पड़ा। पूना साथ दिए बिना न रह सका। सपना ने गिलासों में पानी डाल कर रख दिया। नौजवान चुप था।

क्या यह लोग इसी तरह के होते हैं—वह सोच रही थी—यह तो कुन्ती के घर में रखी हुई भगवान् की मूर्ति की तरह चुप है। क्या इसे बोलना नहीं चाहिये ? क्या यह मेरे सीधे-सादे अब्बा से बातें नहीं करना चाहता—वाह ! वह देखने में सीधे हैं, जरा उनके साथ बोलो तो, बातों ही बातों में कहाँ-कहाँ की सैर करायेंगे, कैसा हँसायेंगे कि तबियत खुल जाये—अच्छा थके हुए हो। मैं बिस्तर लगा दूँगी, तुम खाना खाते ही सो जाना। ये बूढ़े तो शायद देर तक गप्पें लगायेंगे—बूढ़ों को नींद कम आती है न ! इनकी नजरों से ऐसे लगता है जैसे दोनों की मित्रता हो गई हो—मेरा बाप दिल का बुरा है न मुँह का—परन्तु तुम तो थके हुए हो—

जब वह काम-धंधे को निबटा कर खाली हुई तो उसे देर तक नींद न आई। बादलों के फरेरे चाँद के चेहरे पर बार-बार आ गिरते थे।

सपना का हाथ उड़ती हुई लटों को सँवारने में मग्न था—आज उसने बाल नहीं बनाये—चेहरे पर उमड़े पड़ते हैं। इस समय उनको सुलझाना और सोचना उसे अच्छा लग रहा था !

निकट की चारपाई पर माँ निश्चिंतता से सो रही थी : परे आँगन में तीन चारपाइयाँ थीं : उजला बिस्तर साहब का था : अब्बा-मियाँ और बूढ़ा तम्बाकू पीते और बातें करते-करते सो गए थे : ओस गिरने लगी थी जैसे चाँदनी की बारिश हो रही हो ! किरणों की बूंदें गिर रही हों !

बरसात की रात नहाकर निखर आई थी। लोग इस भीगी रात में कसमसाते सो रहे थे। उसके सपने जाग रहे थे, आकाश पर चाँद और तारे जाग रहे थे, सपना जाग रही थी, वह करवटें बदल रही थी। इक्का-दुक्का बादलों की तरह उसके विचार भटक रहे थे। उसके हृदय में एक शोर था। जैसे बरसात की भरी-पुरी रात में होता है। वह नींद न आने से परेशान थी।

उसे पता भी न चला और आँख लग गई। उस समय जब मुर्ग़े ने आवाज़ दी, और डरबे में मुर्गियाँ किटकिटाने लगीं—और समय की आँख में रोशनी फैलने लगी।

दिन की रोशनी उसके चेहरे पर फैली तो उसकी आँख खुल गई। पूना जानवरों की देख-भाल में लगा था। दूसरे आँगन की तीनों चारपाइयाँ खाली थीं। उसका दिल डूब गया। मरदाने कमरे से बातों की आवाज़ें आ रही थीं। मेहमान अभी गये न थे। वह उठकर बैठ गई।

'बेटा, कुंती के यहाँ से जाकर दूध ले आ। उनके यहाँ गाय है न, साहब बकरी के दूध की चाय नहीं पियेंगे।'

वह खुद दूध दुह-दुहकर बकरियों को पीछे हटा रहा था, जैसे कोई आम चूस-चूसकर गुठली फेंक दे। सपना को हँसी आ गई। वह दुपट्टा सँभालती एक छलांग में कोठरी के अन्दर बर्तन लेने चली गई।

देर तक जागते रहने और भीगे हुए मौसम से उसका शरीर बासी-

बासी सा हो रहा था। पीतल की मटकी चोते हुए उसने दो-चार छींटे मुँह पर मारे और कुल्ली कर ली। उसके जाते-जाते पूना ने फिर कहा—'उनसे कहना हमारे घर में साहब लोग उतरे हैं।'

वह बकरी दुहते-दुहते रुक गया और सपना को जाते देखता रहा।

उसकी बेटी छोटे-छोटे गड्ढों को फलांगती, चल नहीं रही थी, भाग रही थी। उसके सर के बाल हवा से उड़ते थे और लम्बी चोटी कमर पर डोल रही थी। सूर्य उसके सामने चमक रहा था—यह सपना थी या रोशनी की तरफ बढ़ती हुई परछाईं जो अपने अस्तित्व के अँधेरे को समाप्त करने के लिए युद्ध कर रही थी। परन्तु अस्तित्व के अँधेरे के दम से रोशनी का भरम बना हुआ है, क़ायम है—जीवन न केवल रोशनी में रह कर गुज़रता है न केवल अँधेरे में—पूना सपना को वृक्षों के पीछे ओझल होते देखता और सोच रहा था।

धर्ममित्र ने सपना को दरवाज़े पर ही सूचना दी कि कुन्ती आई हुई है। सपना का जी खुशी से छलक उठा। महीनों की बातें कहने और सुनने की इच्छा पैदा हुई।

कुन्ती ससुराल से कैसी बदलकर और निखर कर आई थी। पर शरीर भद्दा और बेढब सा हो गया था। वह उसके भारी कूल्हों को आश्चर्य से देख रही थी।

'ऊँह, औरत लगती है अब!'

सपना ने दिल ही दिल में कहा। कुन्ती छोटा-सा आईना सामने रखे बाल बना रही थी। सपना दबे पाँव गई और उसकी आँखों पर हाथ रख दिये।

फिर वह हँसती और बार-बार गले मिलती रहीं। कुन्ती का मियाँ अभी तक चादर लपेटे सो रहा था। साफ़-सुथरी कुन्ती की आँखों में काजल की धारियाँ ताजा थीं और कल्ले में दंदासा दबा रखा था।

'अरे, तू इतना शृङ्गार क्यों करती है?'

सपना ने कुन्ती को छेड़ा।

'सिंगार से सुहाग में बहार रहती है पगली।' कुंती ने इठलाकर कहा। 'जब तू ब्याही जायेगी तो पता चलेगा।'

'ऊँह।'

सपना के ओंठों से अधिक आँखें मुस्करा रही थीं। उसने अचानक ही बताया कि उनके यहाँ साहब लोग आये हैं। वह बकरी का दूध नहीं पीते, गाय का पीते हैं।

'अरे—'

कुन्ती बनावट से चौंकी।

'यह कौन कृष्ण गोपाल तुम्हारे यहाँ उतर आये हैं जो गाय का दूध पीते हैं। बचियो बहन उनसे, प्रेम की मधुर मुरली मत सुन लीजिओ।'

सपना की आँखों के कमल डोल गये। चेहरे पर चोर-लाली दौड़ी तो कुन्ती ने पकड़ लिया।

'हूँ! अच्छा तो ये बातें हैं।'

'नहीं तो—'

'तुम्हारी आँखें कहती हैं, तुम्हारा चेहरा कहता है। यह देखो, देखो तुम्हारी सांसें बताये दे रही हैं। तुम्हारे कुछ कहने के लिये फड़कते ओंठ—'

सपना सचमुच हाँफ और काँप रही थी। तजुरबाकार कुन्ती का तीर निशाने पर बैठा था। उसकी भावनाओं की कच्ची मिट्टी शौक के पहले छींटे से खुशबू दे उठी थी। और कुन्ती थी कि आइना देख-देख कर हँसे जाती थी और मोती जैसे सफेद दाँतों पर दंदासा रगड़े जाती थी।

'तू क्यों हँसती है?'

सपना रूठने के ढंग में बोली।

'किसी के घर में भगवान खुद चलकर आयें तो वह खुश नहीं होगा।

मैं तेरे हँसते मन की तान सुनकर हँस रही हूँ। तेरी सखी जो हूँ।'

'क्या पहेलियां बुझवा रही हो। सीधे से कहो न। मैं कुछ नहीं जानती।'

सपना ने कुन्ती से कहा। हालांकि उसके मस्तिष्क का एक भाग अपनी हालत को समझ रहा था और दूसरा कायरता के साथ यथार्थ से इनकार कर रहा था। उसका दिल चाहता था कि कोई दूसरा ऐलान करे।

'जो कुछ हुआ ठीक है। बिल्कुल यथार्थ और सच है—' वह जो कुछ सोच सकती थी, कुन्ती कह रही थी।

अचानक सपना को ख्याल आया कि उसे दूध लेकर वापस जाना चाहिये। कुन्ती को ढंग से जाने के लिए भी नहीं कहा, और मटकी उठाकर चल दी।

वह दौड़ रही थी। रास्ते में जगह-जगह गड्ढे बने थे। लाल और पीले कीड़े, लम्बे-लम्बे केंचुवे—घृणा के मारे उसे बार-बार झुरझुरी आ जाती।

'अल्ला रे।'

उसे हमेशा इससे घृणा होती और डर भी लगता और वह सँभल-सँभल कर चला करती। पर आज उसे जल्दी पहुँचना था। वह मटकी सिर पर रखे, लहंगे को एक हाथ से पकड़े उड़ी जा रही थी। उसकी आँखें धरती पर गड़ी थीं और मस्तिष्क तेज़ी से काम कर रहा था।

'कुन्ती क्या कहती है और मेरा दिल क्या कहता है?—साहब कहीं घबरा न जायें। दूध लाने में देर हो गई है—उँह—मैं दौड़कर तो आ रही हूँ। रास्ता कठिनाइयों से अटा पड़ा है—मैं उन पर से फलांगती, उनकी चिन्ता किये बिना चल रही हूँ। वरना जब ये निकलते हैं तो घर से बाहर पाँव नहीं निकालती। घिन आती है—ओह, ये मेरे पाँव के नीचे कुचले जा रहे हैं। इनकी लाशें धरती पर बिछी जाती हैं—हाँ,

मगर मुझे बातों में देर हो गई। कुन्ती कई महीनों के बाद मिली है और तुम भी एक जन्म के बाद आये हो। मैंने जागते में हमेशा तुम्हारा धुँधली-सी परछाईं आँखों और दिल के दरवाज़ों पर घूमती हुई पाई है, आज यह आकार लिए मेरे सामने आयी है—अम्मा और अब्बा जब मेरे ब्याह की बातें करते थे तो मैं तुम्हारी परछाईं को कलेजे के पट खोलकर झाँकते हुए महसूस करती थी। यह तुम ही थे, मगर धुँधले-से—मैं पहचान न सकती थी, परन्तु अब मैं तुम्हें कभी न भूल सकूँगी—जहाँ भी मिलोगे, पहचान लूँगी—और कुन्ती ने मुझे बहुत कुछ बता दिया है। क्योंकि वह दुनिया देख आई है और मैंने केवल तुम्हें देखा है। मेरी दुनिया बस इतनी है। आसपास जंगल है—यहाँ अम्मा और अब्बा हैं—बकरियाँ, कुत्ते, मुर्गियाँ और तोता है—और हाँ, जंगल में सुन्दर-सुन्दर पक्षी होते हैं पर अब्बा जब कभी शिकार पर गये, मुझे साथ नहीं ले गये—और-और—ओह—घर के सामने भी कीड़े निकल आये हैं—आंगन में भी—ज्यों-ज्यों गर्मी बढ़ेगी ये उबलते आयेंगे।'

'कहाँ मर गई थी!—वे लोग जा भी चुके।'

उसके सहन में प्रवेश करते ही पूना ने सख्त आवाज़ में कहा।

'चले गये?' वह चौंकी। उसकी आवाज़ में घबराहट थी, उसके क़दम वहीं जम गये और मटकी में से दूध की बड़ी-सी धार बह निकली—वह काँप रही थी।

'क्या हो गया तुम्हें?' पूना ने पूछा।

'कुछ भी नहीं,

'देर क्यों हो गई?'

वह कहना चाहती थी—

हाँ अब्बा मियां, देर हो गई, बहुत देर हो गई—कई युग बीत गये। मैंने क्या कुछ सोचा, क्या कुछ देखा और क्या कुछ चाहा—यही करते-करते देर हो गई—तुम सच कहते हो अब्बा मियाँ।'

ये सब बातें उसका मस्तिष्क सोच रहा था। वह बाप से लज्जित भी थी। फिर भी तेज़ी से कमरे में आई और अपने आपको चारपाई पर गिरा दिया। दूध की मटकी बाकी दूध फ़र्श पर गिराती चली गई।

तारा और पूना ने देखा, सपना मुँह में बिस्तर का कोना दिये रो रही है। तारा उसे बच्चों की तरह पुचकार कर चुप कराने की चेष्टा में थी। पूना अपने को मुजरिम समझता हुआ उस पर झुका हुआ था।

'भाड़ में जायें तुम्हारे मेहमान और उनके नखरे। तुम लड़की को डाँट नहीं सकते।' तारा क्रोध से बोली। उसे पूना पर बहुत क्रोध आ रहा था।

'मैंने क्या कहा—'

'तुमने झिड़की क्यों दी—देर हो गयी थी तो तुम खुद चले जाते।' इतना गंदा रास्ता—'

'मैंने तो उसे इसलिए भेजा था कि कुन्ती शहर से आई हुई है। उससे भी मिल लेगी।' पूना ने अपराध स्वीकार करते हुए सफाई देनी चाही।

'बस फिर देर तो होनी ही थी। लड़की को रुलाकर रख दिया। डर के मारे मटकी भी गिर गई, दूध मिट्टी में मिल गया। वाह जी वाह!'

पूना सोच रहा था कि उसने कोई ऐसी सख्त बात तो नहीं कही—सपना इतनी कमज़ोर दिल है उसे आज पता चला। वह बात बदलने को बोला—

'सीप बेटे, पिछवाड़े वाला तुम्हारा प्रिय बरने का वृक्ष रात आँधी से टूट गिरा, तुम्हें आवाज़ नहीं आई, तुम उसे देखने जाओगी।'

सपना आँचल से आँसू पोंछती उठ बैठी :

'अब्बा मियाँ, टूट गया, सारा टूट गया ?'

'हाँ सारा टूट गया।'

वह माँ के साथ लगी, चुप थी, परन्तु मस्तिष्क बोल रहा था—'यह रात को कैसा तूफान आया था माँ, मेरा इतना प्रिय वृक्ष गिर गया। माँ, वह तो बड़ा मज़बूत और पुराना था। मेरी और उसकी मित्रता बहुत पुरानी थी मैं उसमें झूला झूलती थी—अब कभी नहीं झूल सकती—और माँ मेरा इतने परिश्रम से लाया हुआ दूध भी गिर गया—तुम कहती हो दूध में खुदा का नूर होता है—और-और मेरा दिल ही टूट गया—तुम समझती हो, दिल खुदा का घर होता है—यह सब कुछ कैसे हो गया ? क्योंकर हो गया ? एक युग इतनी जल्दी बीत गया—अब्बा कहते हैं देर हो गई, जमाना बदलते बस इतनी देर लगती है।'

वह दिल ही दिल में बातें करती बाहर गई। गिरे हुए वृक्ष को देखा, जो धरती की गोद में बेसहारा लेटा था। कमजोर कोंपलों ने सर झुका लिये थे। उमसी हुई सुबह में निढाल पत्ते मौत की सिसकियाँ ले रहे थे। सपना ने हाथ बढ़ाकर उन्हें छुआ और महसूस किया। फिर वह इस ख्याल से लौट आई कि नाश्ता तैयार करना है और दिन काफी चढ़ आया है।

□□

आम की फसल पक कर तैयार हो चुकी थी और कोयले ने प्रेम-जाप करना कम कर दिया। वह तो केवल बूर की पागल कर देने वाली सुगंध की प्रेमी है। उसे इस सुगन्ध के शरीर से अधिक लगाव नहीं, या फिर शरीर की प्राप्ति के बाद दिल की कूक चुप साध लेती है।

सावन ऋतु डेरा डाले बैठी थी। घटाएँ उमड़-उमड़कर आतीं और

खूब बारिश होती ।

'हाय यह कैसी बरखा है ।'

सपना अपने गीले बालों से उलझते हुई बोली—वह नहा-धोकर बाल सुखा रही थी। अनगिनत कपड़े अलगनी पर फैले थे। क्यारी की मेंढ पर खड़ा पूना भिंडी-तोरी तोड़-तोड़कर झोली में भर रहा था, और नर्म-नर्म तोरियाँ मज़े ले-लेकर खा रहा था ।

'सीप ।'

वह वहीं से बोला ।

'हूँ—अब्बा मियां ।'

'तूने अच्छा किया कपड़े धो लिये। आज शाम से पहले-पहले बारिश आयेगी। मैं उत्तर-पश्चिम में बादलों की लाल लकीर देख रहा हूँ और पुरवा भी तो चल रही है ।'

दोनों की नजरें उत्तर-पश्चिम क्षितिज की तरफ उठीं। कुञ्जों की लम्बी पंक्ति जा रही थी। पूना ने सपना का कंधा पकड़कर बुलाया और ध्यान दिलाया—

'बेटा देख यह कितनी अच्छी लग रही हैं। शिकार का मौसम निकट आ रहा है। काश बंदूक ठीक होती। कोई साहब ही इधर आ निकले ।'

'अब्बा मियाँ, शिकार के मौसम में साहब लोग अवश्य आते हैं क्या ?'

पूना उसकी बात सुनी-अनसुनी किये, अपने विचारों में गुम, आकाश की तरफ ताके जा रहा था। कुञ्जों की कतार उड़ी जा रही थी। एक उन सबके आगे थी। एक क़ाफिले से बिछड़कर बहुत पीछे रह गई थी। पूना ने अपनी पसंद का गाना बूढ़ी आवाज़ में गुनगुनाया—

'अब्बा मियाँ, ज़रा ऊँची आवाज़ में गाओ न ।'

वह यह गीत बचपन से सुनती आ रही थी। पर तब उसे यह गीत एक कहानी लगता था। वह कहानी जो समझ में न आती थी।

'ऊँची आवाज़ में गाऊँ या नीची में, तुझे क्या समझ में आवेगा।'

फिर पूना ने खखार कर आवाज़ उठाई। सपना गीत के मतलब पर ध्यान दे रही थी—

'मैं एक नादान कुंज हूँ।'

मैंने उसके हुस्न को देखा।

और देखती रही।

फिर पलट कर देखा—

बेले में मेरे क़ाफले की गूँज थी।

और क़ाफला नज़र से ओझल।

जैसे लमहा।

अज़ल और अबद के दरम्यान का लम्हा।

तवील और तनहा।

मैं भटकती रही।

मुसाफत की थकन से ज़्यादा मुझे उसकी दीद का ग़म है।

मैं तसव्वुर में उसकी तस्वीरें बनाती हूँ।

मैं उस तस्वीर में रंग भरूँगी।

ये रंग कहाँ मिलते हैं ?

मैं नीली गहरी झीलों का तवाफ़ करती हूँ जिनमें कँवल तैरते हैं।

लम्बे क़द्दावर दरख्तों को छूकर गुजरती हूँ।

कि उनमें अजमत है।

मैं शफ़क़ की सुर्ख़ी चुरा सकती हूँ।

मगर मैं सोचती हूँ।

वह सिमट जाती है।

और अँधेरा फैलने लगता है।

मेरी तस्वीर, मेरा क़ाफिला

मेरा तखैय्युल, मेरा क़ाफिला

पूना के सामने एक बुत खड़ा था जिसके शरीर के कोण स्पष्ट थे।

पूना ने देखा, महसूस किया और दृष्टि फेर ली। वह बाप था, उसके लिए चौंक जाना काफी था। सपना चुप थी। पूना को मालूम था वह कोई अच्छा-सा उत्तर तलाश करने की चेष्टा में है। उसके एक और प्रश्न किया—

'मैं यदि सुन्दर नहीं, तो क्या झूठा हूँ।'

'नहीं अब्बा मियाँ, तुम तो बुरा मान गये।' वह रुक-रुककर बोली—'जब तुम मुस्कराते हो तो कितने सुन्दर लगते हो। उस समय भी जब तुम अत्यधिक चिन्तित होते हो और दुःख के कड़वे घूँट तुम्हारे मुँह में घुलने लगते हैं, तुम ओठों को दाँतों से काटते हुए पी जाते हो। उस समय तुम कितने प्यारे और महान् हो जाते हो। अम्मा की बीमारी के दिनों में तुम कितने परेशान रहा करते थे। तुम्हारी आँखें सच बोला करती थीं परन्तु ओंठ झूठ बोला करते थे, मगर तुम झूठे तो न थे। तुम्हारे माथे पर चिन्ता की लकीरें सच बनकर फैल जाती हैं। मैं उनको आँखों से पढ़ सकती हूँ। ओठों से बोलकर नहीं, क्योंकि मुझे महसूस करना और सहना आता है, कहना नहीं आता।'

वह बोलते-बोलते सोच में डूब गई। बारिश की बड़ी-बड़ी बूँदें पड़ने लगीं। पूना बढ़कर अलगनी से कपड़े उतार लाया और सपना को पकड़ाते हुए बोला—

'तू तो पगली है। जल्दी से घर के अन्दर चली जा। सिर पर कपड़ा डाल ले। काली चीज पर बिजली गिरने का डर होता है। तेरे बाल भी तो बहुत काले हैं, बहुत घने हैं और लम्बे हैं। चल जल्दी बाँध ले इनको।'

सपना जा भी चुकी थी, पर वह अपनी प्रशंसा के नशे में बोलता रहा—

'सपना कम बोलती है, पर जो कहती है, अच्छा कहती है, जो नहीं

कह पाती कैसा होता होगा। वह कहते-कहते चुप हो जाती है। दुनिया से दूर रहकर वह केवल सोच सकती है। प्रकृति और प्रकृति की माँगों को महसूस कर सकती है। स्पष्टीकरण का माध्यम तो शब्द हैं। उसके पास पर्याप्त शब्द नहीं—अच्छा है न हों। वह गुमसुम अच्छी लगती है। लड़कियों को जुबान लग जाये तो पराये घर में उनका गुजारा कठिन हो जाता है।'

जब वह रात को खाना पका रही थी तो बाहर मूसलाधार बारिश हो रही थी। अम्मा और अब्बा उसके पास बैठे घरेलू बातों में मग्न थे।

रात गये तक, हर आवाज़ पर, सपना की आँखें दरवाजे की तरफ़ उठती रहीं। देर तक दीवानी हवा दरवाजे पीटती रही—और—कोई न आया।

□□

कच्चे रास्ते पर बैलगाड़ी हिचकोले खाती चल रही थी। दिन का पहला पहर था। पीली धूप और छोटी परछाइयाँ।

अचानक आरसी के आईने में उसकी दृष्टि चली गई। छोटे-से आईने में चेहरे को जगह-जगह से देखा जा सकता था।

सपना ने सबसे पहले आँखों को देखा—उफ़, काजल किस बुरी तरह फैल गया है। और कोई चीज है कि झील की तरह झिलमिलाती है—यह नाक है और उसके बिल्कुल नीचे घूँघट की घुटन से मौसम का पहला पसीना चमक रहा है। ओंठ जिन पर कुन्ती ने लाखे को खूब जमा दिया था—और जाने क्या-क्या कुछ बता और समझा रही थी—लोगों के शोर और धड़कती छाती के शोर से सुन न सकने के बावजूद

सपना सुर्ख हो गई थी।

उसने बत्तीसी निकालकर दाँत देखे। दंदासा मले मसूढ़ों में उनकी सफेदी और भी बढ़ गई थी।

रूमाल को थूक में भिगोकर पलकें सँवारी और मेंहदी रचे हाथों को देखा। हल्के पसीने ने मेंहदी की खुशबू को महका दिया था। उलटे हाथ की चमड़ी पीली, साफ और चिकनी थी।

तो उसकी शादी हो गई है। पीले माथे पर झूमता छोटा-सा टीका और मोटी चादर का घूँघट—वह आज दुल्हन बनकर अपना घर बसाने जा रही है। उसकी तरफ पीठ किये बैठा उसका मियाँ है। इस अजनबी मर्द के पसीने की बू उसके घूँघट में घुस आई है। लगातार झटकों के कारण उनके शरीर कभी आपस में एक-दूसरे को छू जाते हैं। सपना के शरीर में लहर-सी दौड़ जाती है। जिसे वह कोई नाम नहीं दे सकती। वह दूर सरकने की बजाय पास खिसक आने की चेष्टा करता है।

कल शाम कुन्ती ने दरवाजे की सेंध में से उसे उसका पति दिखाया था। सपना ने देखा और अपने दिल को बताया—'पति ऐसे ही होते होंगे।'

वह मेहमानों के बीच बैठा कैसे झेंप रहा था। इस झेंप में प्रसन्नता और स्वप्न शामिल थे। वह जल्दी ही वहाँ से हट आई और कुन्ती की छेड़छाड़ का उत्तर ऊपरी दिल से देती रही। उसे प्रसन्नता थी न दुःख, बस घर और अब्बा से बिछुड़ने का दुःख था कि वह खाये जाता था—कल और आज के बीच वाली रात कभी पहाड़-सी होकर, कभी हवा के तेज थपेड़े की तरह गुजरी।

औरतें भी आई थीं और मर्द भी। ये सब लोग पूना का काज निभाने आये थे, वरना उनकी हरकतों से ऐसा लगता था जैसे इन पर अहसान कर रहे हों। इनका मजाक भी उड़ा रहे हों। इसके बावजूद औरतें उसे मेंहदी लगाते समय रोई थीं और सुहाग का जोड़ा पहनाते हुए

न मालूम उन्हें क्या याद आ रहा था। उसे तो अम्मा याद आ रही थी। वह जो मर कर बिछुड़ गई थी, और वे, जो जीवन में बिछुड़ने वाले थे। वह कहाँ जा रही थी? और कितने ही कामों में व्यस्त खोये-खोये से अब्बा मियाँ।

सपना का दिल टूट-टूट कर बहता रहा।

□□

यह वह मौसम था जब फूल खिलते हैं। आड़ू और आलूचे पर पत्तों की बजाये फूल ही फूल नजर आते हैं। नीबू और माल्टे के फूलों की सुगंध आप ही आप नथुनों में घुसती चली जाती है—इस बदलते मौसम में अचानक ही सपना की शादी तय हो गयी—तारा की मृत्यु के होते ही पूना दामाद घेर लाने के लिए लट्ठ लेकर फिरने लगा था।

माँ की मौत के बाद समय जैसे चींटी की चाल चलता था। दिन कठिनाई से गुज़रता। रात रेंगती गुजरती।

पर आज, यूँ लगता था जैसे वे चार महीने पलक झपकते में गुज़र गये थे। आज खयालों और यादों के मेले का दिन था। कैसी नई, साफ, चमकदार और पुरानी घिसी-पिटी यादें उसके मस्तिष्क में जमघट लगाये थीं—आज का दिन कितना महत्वपूर्ण था।

आज के दिन के सामने पिछले दिनों का कोई महत्त्व नहीं—आज का दिन यथार्थ है, और पिछले दिन मात्र स्वप्न। भविष्य कल्पना की पहुँच से परे, फिर स्वप्न है। बचपन से जवानी तक और जवानी से आज तक का सफर, संक्षिप्त रास्ता उसने पलक झपकते में देखा—पर आज का यह रास्ता बहुत लम्बा है। बैलगाड़ी सुस्त रफ़्तार से चल रही है।

यूँ लगता है यह सफर नहीं कटेगा—बड़ा कठिन है—बड़ी भयानक ऊँचाइयाँ-निचाइयाँ हैं इसमें—मौसम की खुशबुओं के साथ घुली-मिली किसी के शरीर की गंध लगातार आ रही है। बार-बार धचके लगने से शरीर टकरा जाते हैं। घूँघट मुसीबत-सा लग रहा है।

छम-छम रोते मैका छोड़ना दुनिया की रीत है। पर उसे उजड़ता देख कर दिल भी उजाड़ हो जाता है। एक डर का जमाव। आँखें पट-पट तकते हुए कुछ नहीं देख सकतीं।

विदा के समय वह भी रोई थी। उसका शरीर दुःख के झूले में झूलता रहा। फिर वह चादर में लिपटी अब्बा-मियाँ के सहारे चलती नाव में बैठ गई। अब्बा-मियाँ पास ही बैठे थे। उन्होंने मुँह दूसरी तरफ फेर रखा था और नई सफेद पगड़ी का पल्लू दाँतों में दबाये हुए थे जैसे जानलेवा दर्द को दांतों से पीने की चेष्टा में हों।

सूर्य की किरणों में गर्मी बढ़ गई है। पहाड़ों पर बर्फ पिघलने लगी है। अब नदी का पाट चौड़ा हो गया है। वह नाव में सवार कर दी गई। चप्पू किसके हाथ में हैं?

सपना ने सोचते-सोचते अपने-आप से प्रश्न किया और पूना की तरफ देखा जिसने आज उसके जीवन की नाव ठेल दी थी और पतवार किसी अजनबी हाथों में थमा कर सुखी मगर चिन्तित बैठा था।

नाव मझधार की तरफ बढ़ी। पानी के फटते सीने से हूकें उठीं। उनमें निरन्तरता थी। उसने सुना और ध्यान बट गया।

पानी की हूकें कानों को भली लगती है और कलेजे में उतर कर बैठ जाती है। और दिल है कि नदी की तरह भरा-पुरा और गहरा है—मगर कल्पना को किनारा मिलता है न शान्ति—नाव में बैठे लोग गप्पों में मस्त थे।

सपना के विचार भटकते रहे।

किनारे पर बैलगाड़ी तैयार मिली। उसे उसमें सवार किया गया तो

वे केवल दो थे और एक गाड़ीवान। बाकी लोग खड़े उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरते और आशीर्वाद देते थे।

'जाओ बेटी, खुदा के सुपुर्द—'

'अल्ला की अमान में दिया—'

भावुकता की एक लहर आवाजों में मचल रही थी। ये सब लोग पूना के जानने वाले थे और उसकी बेटी को विदा करने यहाँ तक आये थे। और अब आगे नहीं जा सकते। इन सब ने मिल-जुल कर निर्णय दे दिया है कि यह आदमी सपना के लिए उचित है, ठीक है, वह उसे जहाँ चाहे ले जाये। हम सब इस कुँवारी को इस मर्द की परछाईं की ओट में जीवन की कठिनाइयाँ बर्दाश्त करने की अनुमति देते हैं। यही इसका भाग्य है। हमारी अपनी भी कोई इच्छा नहीं होती। हम मिलजुल कर एक इच्छा सोच लेते हैं और उसे कर्त्तव्य की तरह महत्त्वपूर्ण समझते हैं—इसके सिवा कोई चारा नहीं।

ये लोग उसके अपने थे। उसकी भलाई का ख्याल रखने वाले। उसे उनके प्यार का पूरा-पूरा अहसास था। उस क्षण वह उन्हीं के बारे में सोच रही थी।

लोग दूल्हा से हाथ मिलाते उसे कुछ कह रहे थे। सपना के कान पूना की आवाज की टोह में थे। फिर उसने महसूस किया, बैलगाड़ी चल पड़ी है और किसी ने बैलगाड़ी को थाम रखा है—यह पूना था।

'अब्बा मियाँ। तुम सवार क्यों नहीं हो जाते।' उसने रुक-रुक कर कहा।

पूना चुपचाप चलता रहा। उस पतंग की तरह जो एक तरफ से फट गई हो और तेज़ हवा उसके दूसरे भाग को खींचे लिए जाती हो—वह खुद नहीं चल रहा था, बल्कि वह खिंच रहा था। लोग पीछे रह गये थे। सपना ने घूँघट सरका कर बाप की तरफ देखा। वह आँखों पर पपोटों के पर्दे गिराये कह रहा था—

'सीप बेटे, घबराना मत। भला तू क्यों रोती है। तेरे सामने नया जीवन है। हम सबने मिल कर आज उसका मुहूर्त कर दिया है। उसके रोज बदलते नये रंग तुझे आकर्षित रखेंगे और तू हमें बिल्कुल भूल जायेगी। ऐसा ही होता है। माँ-बाप केवल गुज़रा ज़माना होते हैं। गुज़रे ज़माने का यथार्थ बस इतना है कि उसमें नई ईमारत के लिये बुनियादें अच्छी और मज़बूत रखी जाएँ। असली चीज तो वर्तमान है, और वर्तमान वक्त का बहाव है। खुला वातावरण है—मैंने आज तुझे खुले वातावरण के हवाले कर दिया है। तुम्हें तुम्हारे हाल पर छोड़ दिया। और बेटी, औरत का भाग्य एक से अधिक जीवन हैं, एक से अधिक मरण।'

पूना की आवाज रुँधी हुई थी। वह हर वाक्य के बाद खखार कर गला साफ कर लेता था।

'अब्बा मियाँ, तुम बैठ क्यों नहीं जाते।'

सपना की आवाज सिसकी में से उभरी।

'नहीं बेटा, मैं ठीक हूँ, थोड़ी दूर और चलूँगा। बस मेरा और तुम्हारा साथ इतना हो सकता है—अभी वापस हो जाऊँगा—अरे तू फिर रोने लगी—वाह—'

पूना ने उसकी पीठ थपकी और कहा—

'रोना तो मुझे चाहिये जिसके दोनों पंख टूट गये।'

फिर उसने सपना के पति की तरफ देखा जो अजीब नजरों से बाप की बेटी के साथ बात सुन रहा था। पूना ने मुस्कराते हुए बात बदल दी—

'आज तारो होती तो तुझे यूँ जी हल्का न करने देती। मैं मर्द हूँ, मुझे कोई बात छिपाना नहीं आता, सब कुछ कहे जा रहा हूँ। औरतें गहरी होती हैं, और बात को किसी अवसर के लिए उठा रखती हैं—तुम्हें मेरी बातों से दुःख होता है, अच्छा मैं चुप हो जाता हूँ।'

अब वह दूल्हा को देख रहा था और मुस्कराने की चेष्टा कर रहा था, उसकी आँखों में विवशता और बेबसी के साये थे—सपना को गुलाबी जाड़ों की वह शाम याद आई जब माँ अचानक, निहायत चुप्पी से मर गई। उसकी मौत का ख्याल उनमें से किसी को भी न था, और यही सब से बड़ा दु:ख था कि वे उस घटना के लिये बिल्कुल तैयार न थे। अब्बा मियाँ तब से निहायत चुप रहने लगे। उनका समय पर से विश्वास उठ गया।

एक गड्ढे को पार करते हुए बैलगाड़ी उछली। झटके से सपना की सोच टूट गई। पूना दोबारा उससे कह रहा था—

'मेरा तेरे सिवा कौन है। मैं इस सामान को ठिकाने लगा कर खूब घूमा-फिरा करूँगा। थक-हार कर मुझे तुम्हारे सिवा और किसके पास जाना है—लड़का अच्छा है। मैंने खूब देखभाल लिया है। तुम्हारी ही तरह का है। अकेला—तू उसके लिए घर बनाना जैसे तारो ने मेर लिए बनाया था मियाँ-बीवी को बैलगाड़ी के दो पहिये समझो। और चलती का नाम ही गाड़ी है। एक जगह साथ चलता रहे, इसी का नाम शादी है। जंगल में रह कर अब मुझे क्या करना है—यहाँ न तारो है न तुम हो—'

पूना सपना को प्यार करता आगे बढ़ गया। अब वह दूल्हा के सर पर हाथ फेर रहा था। जाने क्या कह रहा था। सपना को कुछ सुनाई नहीं देता था। कोई चीज सीने से उठ कर शां-शां करती कानों तक गुज़र जाती थी और यूँ लगता था नब्ज़ रुक जायेगी।

अब तेज़ चलती बैलगाड़ी अब्बा मियाँ को पीछे छोड़ चुकी है। वह उसकी तरफ टकटकी बाँधे खड़े मुस्करा रहे हैं। वह कितने ऊँचे और महान दिखाई देते हैं। उनका सीना कितना चौड़ा है कि सारे दु:ख उसमें समा सकते हैं—सड़क के साथ अनारों के झुंड में अंगारे लटक रहे हैं। चिड़िया की आवाज़ गूँज रही है। बैलगाड़ी के पहिये से उड़ती धूल फैल

रही है। अब्बा-मियाँ धुँधले-धुँधले नजर आते हैं—रास्ता कैसा खराब है, ऊँचा-नीचा, हड्डियाँ टूट जाएँगी। पास बैठा मर्द जानबूझ कर अपनी बाँह का बोझ उसके कंधे पर डाले जाता है, क्या ढीठ और बेशर्म है।

'ऊँह—' सपना ने झुरझुरी-सी ली, और आँखें उठा कर देखा। गाड़ी मोड़ काट चुकी थी और अब्बा मियाँ नज़रों से ओझल।

□□

दूसरा भाग

□

ज्ञान

□ □

बैलगाड़ी से उतर कर वे बस की प्रतीक्षा में सड़क के किनारे खड़े हो गए। उसका पति दोनों कूल्हों पर हाथ रखे खड़ा, उस तरफ देख रहा था, जिधर से बस को आना था। संक्षिप्त सामान—एक नया संदूक और एक गठरी—ज़मीन पर रखा था। वह सपना से बोला—

'तुम चाहो तो संदूक के ऊपर बैठ जाओ। बड़ा गन्दा सफर है हमारा। यह छोटे-छोटे टुकड़े—कभी बैलगाड़ी पर बैठो, कभी बस पर, और अभी रेल के झूले···हा-हा—'

वह खुद ही हँसा।

'अरे हाँ, तुम्हें प्यास लगी होगी।'

सपना चुप थी।

'अच्छा तुम्हें सोडा-लेमन पिलाते हैं, कभी न पिया होगा—या शायद पिया हो—'

वह बोलता-बोलता अड्डे की दूकानों की तरफ बढ़ गया। सपना घूँघट सरका कर उसे जाते हुए देख रही थी—दरम्याना कद और चौड़ी गर्दन सफेद कमीज़ के कालर में साफ-साफ काली दिखाई देती थी। सर के बाल कुछ और तरह के थे—पूना जैसे न थे। वह लट्ठे की घेरदार

सलवार भुलाता, पाँव में नया चप्पल चरचराता, मजे और ठाठ से चल रहा था।

जल्दी ही वह लाल शर्बत का भरा हुआ कांच का धारीदार गिलास पकड़े लौटा। अब वह उसके चेहरे को भी देख सकती थी। उसकी शक्ल ऐसी अच्छी न थी कि देखते ही जी में जम जाये और न ऐसी बुरी कि खामखा घृणा महसूस हो—माथा बहुत पीछे कहीं सिर में जाकर गुम हो गया था। और बड़ी-बड़ी गोल-गोल आँखें, सफ़ेद और स्याह।

सपना ने दिल में कहा—मुझे इस व्यक्ति के साथ जीवन गुजारना है। बहरहाल जो भी है—अब्बा-मियाँ ने कहा था कि हाड़-काठ का मजबूत आदमी तुम्हारी देखभाल खूब करेगा। वह मजदूरी करके भी रोटी कमा सकता है।

अच्छा ! मैं उसके लिये घर बनाऊंगी। अब्बा के घर की सारी ही तो चीजें मेरी हैं—वह पास चले आयेंगे—मैं और यह मर्द इकट्ठे रहेंगे।

फिर कुन्ती की खुफिया किस्म की बातचीत याद करके उसे उबकाई सी आने लगी और उसने महसूस किया वह यह सब कुछ इतनी जल्दी कैसे कबूल कर सकेगी।

उसका पति प्यार से कह रहा था—

'भला यहाँ लेमन कहाँ—लो यह शर्बत पी लो—'

सपना ने कुछ हिचकिचाहट के बाद गिलास पकड़ लिया और एक दो घूँट भरकर वापस कर दिया। शर्बत अच्छा न था, और उसे प्यास भी न थी। उसका मियाँ गटागट सारा गिलास चढ़ा गया। और सपना की तरफ यूँ मुस्कराकर देखा, जैसे कह रहा हो—'देखा, हम तुमसे कितना प्यार करते हैं।'

सपना ने मुँह दूसरी तरफ फेर लिया। उसकी चादर पीछे सरकी हुई थी। दुपट्टे की ओट से वह दुनिया को देख रही थी और नज़र भी आ रही थी।

बस आई तो भरी हुई थी। मुश्किल से पिछली सीट पर थोड़ी-सी जगह निकल सकी। और कंडक्टर उनको बिठाने को तैयार हो गया। वे फँस कर बैठ गये।

'खैर गुजारा हो जायेगा।'

उसका पति ट्रंक को पाँव से सीट के नीचे धकेलते हुए बड़बड़ाया और गठरी अपनी जांघों पर जमा ली।

वह अत्यधिक संतुष्ट नजर आता था। हालांकि बस में सिगरेट और बहुत-सी सांसों के कारण दम घुट रहा था। अजीब तरह की बू थी यह। सपना ने नाक पर रूमाल रख लिया। भारी चादर ने अलग पागल कर रखा था। और चीजें बेचने वालों की हाय-हू भी परेशान किये थी।

करारे पकौड़े कटाके—

बीड़ी-सिगरेट—

ककड़ी खाइये, नर्म और ताजा—

एक शोर था—एक हंगामा—बस की दुम में बैठी वह खिड़की से बाहर का दृश्य भी न देख सकती थी—दुनिया अपने तमाम शोर के साथ सीमित होकर रह गई थी।

दिल और मस्तिष्क में कोई परछाईं है कि घनी और गहरी होती जाती है—फँस कर बैठा हुआ व्यक्ति उसका पति है। उसके लिए उसके दिल में कौन सी भावनाएँ हैं ? समझ में नहीं आतीं। वह उसके स्पर्श से शरीर चुरा लेना चाहती है। लेकिन आगे बस की दीवार है। वह किस तरफ को हट जाये। बस फर्राटे भरती चल रही है।

कंडक्टर बस में चल-फिर कर टिकटें काट रहा था। उसके पति ने जेब में से बटुवा निकाल कर टिकटें खरीदीं—सामने की सीट पर बैठी देहाती औरत भयानक आवाजें निकालती उल्टियाँ कर रही थी। पेट्रोल की बू से खुद उसको मितली होने लगी थी।

कंडक्टर ने औरत के पास जाकर डाँटा—

'मुँह बाहर करके बीबी—क्यों दूसरों का जी खराब करती हो।'

उसका अपना जी चाहा कि उल्टी कर दे। पर जगह कहाँ थी। फिर पिछले चौबीस घंटों से उसने कुछ न खाया था। कुन्ती और अब्बा मियाँ के बहुत कहने पर वह केवल पानी पी सकी थी। इस समय मुँह में अजीब झाग सी आ रही थी और उसका थूकने को जी चाहता था। वह गुमसुम बैठी रही। उसका पति उससे बातें करने की व्यर्थ चेष्टा करता रहा। यह निरन्तर हस्तक्षेप उसे कुछ सोचने भी न देता था। तंग आकर उसके पति ने घुटने में बारीक-सी चुटकी काट ली। वह बिलबिला उठी। उसका दिल घृणा और क्रोध से खौल उठा।

वे बस से उतरे तो दिन का तीसरा पहर था। आवाज़ों का ज्वार-भाटा कह रहा था यह कोई बड़ा शहर है। थकन के मारे उसे किसी चीज़ में दिलचस्पी न थी। उसके मियाँ ने गठरी और संदूक एक हाथ में पकड़ कर दूसरे हाथ से सहारा दिया—

'अब सफर का कुछ हिस्सा बाकी है—दिन डूबते तक घर पहुँच जायेंगे। तुम्हारी तबियत तो ठीक है न ? तुम क्या बताओगी—तुम्हें तो बोलना नहीं आता—हा-हा—ज़रा घूँघट सरका कर देखो। कितना शानदार शहर है—तुमने ऐसी खुली और खूबसूरत सड़कें देखी हैं कभी—चिन्ता न करो, हम कुछ दिनों बाद यहाँ घूमने आयेंगे। यहाँ देखने की इतनी चीज़ें हैं कि मैं गिनवा नहीं सकता—और हाँ, पूना चचा अब हमारे पास ही रहें तो अच्छा है, मैं उन्हे विवश करूँगा।'

वह बेतुकी बातें करता हुआ चल रहा था। और लोग दिलचस्पी से इस नवविवाहित देहाती जोड़े को देख रहे थे। लड़की जिसके पाँव की पीली चमड़ी काले स्लीपरों में चमक रही थी और मेंहदी का सुर्ख बार्डर, और जो रंग छिड़की हुई सफेद चादर में लिपटी धीरे-धीरे चल रही थी—दुल्हन थी, और सस्ते इतर की गंध उनके साथ-साथ चलती थी।

मुसाफिरखाने में ट्रंक रख कर उसके पति ने उसको बैठने के लिए कहा—

'गाड़ी चलने में अभी देर है।'

वह धूप की परछाइयों से वक्त जानते हुए बोला—

'तुम्हें भूख तो ज़ोर की लगी होगी। क्यों न तुम्हें शहर की कोई मिठाई खिलाई जाये। घर पहुँचेंगे तो ताई-माँ खाना पका चुकी होगी—वह मेरी सगी ताई तो नहीं—वैसे बड़ी अच्छी औरत है। मुझे बेटा समझती है। पूना चचा मिले हैं उससे। तुम्हें देखकर बहुत खुश होगी। वह तुम्हें उदास न होने देगी। अच्छा मैं तुम्हारे खाने के लिये कुछ लाता हूँ—तुम बर्फी अवश्य पसंद करोगी।' और सपना का जी चाहा कह दे—'तुम्हें कैसे मालूम ? मेरा जी तो किसी चीज को भी नहीं चाहता। यह किसी अनजाने भय से दबा जाता है—तुम नहीं जानते, मुझ पर आज का दिन बहुत भारी गुज़रा है। और अब रात आने वाली है। मेरा दिल किस हलचल में घिरा है तुम्हें पता नहीं—नये लोग, नयी बातें मेरा गला रुँधा जाता है। गले से नीचे कोई चीज़ न उतर सकेगी। कोई बड़ा सा निवाला अटक गया है जिसे न निगल सकती हूँ न उगल सकती हूँ—शरीर जैसे सूली पर चढ़ा है—और जान टूट कर लटक गई है, निकलती नहीं। शादी का पहला दिन इतना सख्त होता है, मुझे मालूम न था—और तुम्हें खाने की चिन्ता लगी हुई है—'

वह दुल्हन थी, कुछ कह न सकी। और मियाँ का बेतकल्लुफ होने का शौक उसे बुलवाये देता था। फिर वह उसके कान के पास झुक कर बोला—

'मैं अभी आया। तुम किसी से बात न करना। कोई कुछ पूछे तो बोलने की आवश्यकता नहीं। और हाँ, तुम्हें जरूरत से कहीं जाना हो तो बताओ।'

सपना ने सिर हिला कर इनकार कर दिया।

'घबराना मत। मेरा यहाँ एक मित्र है। नज़र आ गया तो तुम्हें मिलवाने लाऊँगा। उसे मेरी शादी का बड़ा अरमान था—चौकन्ना होकर बैठना, किसी का कोई विश्वास नहीं।'

'किसी का कोई विश्वास नहीं तो फिर तुम क्यों जा रहे हो। मुझे यूँ अकेला छोड़ते हुए तुम्हें यह यकीन कैसे हो गया कि मैं बड़ी बहादुर हूँ। मुझ पर इस बड़े शहर का रौब छा रहा है। बाहर कैसा शोर और भीड़ है। आकाश पर बादल है शायद। साफ दिखाई नहीं देता। और दिल को एक और धड़का लग गया है कि तुम जा रहे हो। जाने कब लौटोगे—'

वह यह सब कुछ सोचती रही और केवल इतना कहा—

'तुम न जाओ।'

'क्यों—?' वह ठहाका लगाते हुए बोला—'खुदा का शुक्र है कि तुम बोली हो। कान तरस रहे थे। इस खुशी में बर्फी खाई जानी चाहिये—बस अभी आया—'

वह चुटकियाँ बजाता हुआ जा रहा था। दूसरे मुसाफिर उसकी इस अल्हड़ हरकत पर मुस्कराये—सपना को क्रोध आया और उसका शरीर डर और क्रोध से काँपने लगा। उसने देखा वह भीड़ में कहीं गुम हो चुका था—वह पहचान भी नहीं सकती। आखिर उसकी पहचान क्या है? अपने पति को वह अच्छी तरह देख ही न सकी थी। शर्म अधिक थी, शौक कम था।

सपना ने दिल को तसल्ली दी—वैसे सारे मर्द एक से नजर आ रहे हैं। कहीं इसी भीड़ में होगा। अभी लौट आयेगा।

□□

मुसाफिरखाने के जंगले से बाहर बड़ के वृक्ष का छज्जा फैला था। कई मुसाफिर उसके नीचे सुस्ता रहे थे। तीसरे दर्जे के मुसाफिरखाने में हड़बोंग मची थी।

सपना से थोड़ा परे एक देहाती खानदान डेरा डाले हुए था। छोटी-बड़ी आयु की तीन-चार औरतें, पाँच-सात बच्चे, दो आदमी—एक बूढ़ा था और दूसरा जवान।

'यह सब इस बूढ़े के बच्चे-पोते हैं, और वह बड़ी उम्र की औरत उसकी बीवी'—सपना ने सोचा। अपने आस-पास इतने शोर को सुनकर उसका जी बहल गया। वह इस खानदान को दिलचस्पी से देखती रही।

'जवान औरत बच्चों को खाना निकाल कर दे रही है—यह इस बुढ़िया की बेटी होगी—उंहूँ—बेटी नहीं, बहू ही होगी—बेटी तो वह तीसरी औरत मालूम होती है जो बिस्तर के साथ बैठी सुस्ती से जम्हाइयाँ ले रही है।—बच्चे मोटी-मोटी रोटियों पर आलुओं का भुरता रखे मज़े मज़े से खा रहे हैं—कितना लाल भुरता है, निश्चय ही मिर्चें अधिक होंगी।'

ख्याल ही ख्याल में उसने मिर्चों की तेज़ी को ज़ुबान पर महसूस किया और मुँह में पानी भर आया—अंतड़ियाँ खिंच-सी गईं।

'अरे मुझे तो सख्त भूख लगी है—वह है कि अभी तक नहीं लौटा, कोई ढंग की चीज़ लाए तो खा ही लूँ—शर्माऊँगी नहीं—हाँ भला खाने-पीने में शर्म कैसी ?'

औरतें उसकी तरफ देख-देखकर बातें कर रही थीं। थोड़ी देर बाद

आलती-पालती मार कर बैठी हुई बड़ी उम्र की औरत उसकी तरफ आ रही थी। सपना यह देखते ही संभल कर बैठ गई। औरत ने आते ही देहाती लहजे में कहा—

'कहाँ जाती हो ?'

सपना चुप रही। चादर को और पीछे सरका कर उत्तर देना चाहा मगर यह सोच कर चुप थी कि जाती बार मियाँ मना कर गया था। देहाती औरत फिर बोली—

'अरे कहाँ जाती हो ?'

सपना चुप साधे थी ? देहाती औरत चिढ़ कर बोली—

'ऐ हे, कैसी लुगाई है—अरी बीबी, गूंगी हो।'

बात करने के ढंग से वह ज़िम्मेदार औरत मालूम देती थी और फिर निकट सरकते हुए उसने खुद ही कहा—

'अच्छा, मैं जानूँ, पहले फेरे जा रही हो—ऐं—'

'हाँ।'

सपना ने सर हिलाया और वह औरत उसके छोटे-से घूँघट में झाँकने लगी। जैसे सपना उसकी अपनी बहू हो।

'ओहो, अच्छी मोहिनी सूरत है।'

यह कह कर उसने चादर का पल्लू कुछ और खींच दिया और दूसरी औरतों को आवाज़ें दीं। वे सब दौड़ी आईं, जैसे नई दुल्हन के दर्शन किसी देवी के दर्शन हों कि न किये तो पाप लगेगा।

'ज़ेवर तो खूब चढ़ा होगा, ऐं–'

नौजवान लड़की उसके जेवरों को नज़रों से तौलते हुए पूछ रही थी।

'तुम्हारे साथ कोई नहीं।'

'नहीं।'

'अकेले मियाँ संग भेज दिया। आय-हाय कैसा ज़माना आ गया है,

कोई नाइन न मिली।' बूढ़ी औरत नाक पर उंगली रख कर बोली।

सपना की आँखें थोड़ी-थोड़ी देर के बाद सड़क की तरफ देख लेती थीं और दिल चाहता था वह जल्दी लौट आये तो यहाँ से उठ जायें।

'अम्मा-बाबा हैं तुम्हारे ?'

'बाबा हैं, अम्मा मर गईं।'

उसने उत्तर दिया।

'जभी—औरतों की बातों का मर्दों को क्या पता—मैं भी सोचूँ कि लड़की को यूँ निश्चिंत भेज दिया।'

बूढ़ी औरत अपनी बहू से बातों में मग्न थी। उसने एक और प्रश्न किया—

'कौन गाँव जाओगी।'

'पालामकोट—पालामकोट मिल में ये जमादार हैं।'

सपना ने अपनी तरफ से पूरी बात बता दी ताकि और प्रश्न न किये जा सकें। बूढ़ी औरत की बहू, बच्चे को छाती से लगाये दूध पिला रही थी और थपक-थपक कर सुलाने की कोशिश में थी। वह सास और ननद की बातों से असम्बन्धित अपने बच्चों में मग्न सपना को बहुत भली लगी। उसने कोई भी प्रश्न न किया था। बुढ़िया ने सपना से फिर पूछा—

'सास-ससुर हैं—'

'नहीं—'

'देवर-जेठ—'

'हैं—मगर वह लोग कहीं दूर रहते हैं। दो ननदें अपने चचा के घर ब्याही हुई हैं। उनके मियाँ बाहर रोजी कमाने गये हैं। वह भी उनके साथ हैं। देवर जेठ अपने-अपने कामों पर—मुझे अधिक मालूम नहीं।'

सपना बड़े विश्वास के साथ सूचनायें दे रही थी, जैसे ससुराल के घर का हर व्यक्ति उसका देखा-भाला हो, और वह बिलकुल सच बोल

रही हो।

'तो तुझे घर में उतारेगा कौन ?'

बुढ़िया ने जाते-जाते फिर पूछ लिया—

'तइया-सास।'

सपना ऐसे प्रश्नों से तंग आ गई थी और उसका जी चाहता था कि ये औरतें उसके पास से उठकर चली जायें—वह बातूनी नहीं, उसे खुद अहसास था।

'मियाँ काफी गपोड़ी लगता है—' सपना ने अपने जी में कहा। औरतें उठकर चली गईं और उसने अपने अगले जीवन के बारे में सोचना शुरू कर दिया।

□ □

मुसाफिरखाने में एकदम हलचल मच गई। लोग सामान उठा-उठाकर जाने लगे। शायद किसी छोटी लाईन पर जाने वाली गाड़ी प्लेटफार्म पर आ लगी थी। बहुत से मुसाफ़िर जा भी चुके मगर रौनक कम न हुई। तीसरे दर्जे के मुसाफिरखाने में ग़रीबों की बस्ती की तरह का हाल था। सपना आने-जाने वालों को ग़ौर से देख रही थी और उसे दुनिया की चहल-पहल का अंदाजा हो रहा था। यह हँसते-बोलते लोगों की दुनिया। पल भर को उसे मियाँ की वापसी की चिन्ता ने आज़ाद छोड़ दिया।

दुनिया कितनी प्यारी है, कितनी अच्छी है।

दोने में कचोरियाँ रखे एक अधेड़ उम्र की देहाती औरत उसके पास आई और दोना सपना की तरफ़ बढ़ाते हुए अपनाइयत से बोली—

'ले बच्ची, तू भी खा ले, तेरा मियाँ तो कहीं जाकर बैठ गया। हाँ

तेरे पास खाने के लिये कुछ न कुछ जरूर होगा।'

सपना ने उसे बताया कि वे जल्दी में साथ लाना भूल गये। वह इस विचार से परेशान थी कि अब्बा मियाँ ने जब हमारा खाना घर में पड़ा देखा होगा तो उन्हें दुःख हुआ होगा। और यह भी हो सकता है कि कोई और उठाकर चलता बना हो। एक अकेला अब्बा मियाँ कहाँ-कहाँ ध्यान देता—क्या-क्या करता।

कचोरी की नमकीन खुशबू उसकी भूख को बढ़ा रही थी।

औरत प्यार से सपना के सर पर हाथ फेर कर बोली—

'जा खुदा को सौंपा—खुदा कुल आलम की बेटियों को खुश रखे।'

फिर वह घाघरा झुलाती हुई पलट गई। सपना ने उसका शुक्रिया अदा किया न ही उसे खुदा-हाफ़िज़ कहा। वह हैरान थी और उस प्यार के स्पर्श को महसूस कर रही थी। उसमें कितनी ममता छलकती थी।

ममता कितनी अमूल्य है और कितनी निजी। उसकी ठंडी चमक फुहार की तरह बरसती और हृदय के कोने-कोने को रोशन कर देती है।

सपना खाने की तरफ ध्यान न दे सकी। देहाती औरत सर पर बड़ा-सा गट्ठा रखे चल रही थी। उसके सामने, साथ चलते हुए खानदान के शेष सदस्य भेड़ों की तरह साधारण नज़र आते थे।

वह खानदान जा भी चुका, परंतु सपना कचोरियों का दोना हाथ में पकड़े मियाँ के पलट आने की प्रतीक्षा करती रही—उन लोगों के उठ जाने से अकेलेपन का अहसास बढ़ गया था। उसने अपना थका हुआ सर जंगले की रेलिंग पर टिका दिया और आँखें बंद कर लीं—जब आँख खुले तो शायद वह सामने खड़ा हो।

वह सोच रही थी, यदि अब्बा-मियाँ साथ आ जाते तो क्या अच्छा होता! क्या सभी लोग बेटियों को किसी के हवाले करके निश्चिंत और छुट्टी पा जाते हैं। अल्ला, यह तो बड़ी मुसीबत है। परन्तु वह भी

क्या-क्या करें, अकेले हैं। इनसान को इनसान की कितनी आवश्यकता होती है।

उसने दिल को तसल्ली दी।

अब्बा मियाँ घर का प्रबन्ध ठीक करके मेरे पास चले आयेंगे तो मैं जी उठूँगी—और हाँ, वह इस समय क्या कर रहे होंगे। हमारे आँगन में धूप की परछाइयाँ शाम के पाँच बजा चुकी होंगी यहाँ सूर्य बड़ी बिल्डिंग के पीछे जा रहा है—धीरे-धीरे—सामने चाय वाले की दूकान पर लोग गंदी मैली मेजों के चारों ओर शान से बैठे हैं—और कैसे चौंक-चौंक कर परेशानी से बातें कर रहे हैं—कितने उठ कर चले गये—कहीं कोई दंगा हुआ है।

यहाँ तक सोचते-सोचते सपना का कलेजा मुँह को आ गया। वह आँखें फाड़-फाड़ कर देख रही थी और छाती की धड़-धड़ कुछ सुनने और गौर करने न देती थी।

'नौजवान कोई मुसाफिर दिखाई देता था—'

कहीं से आवाज़ आई—सपना के कान खड़े हो गये।

अभी-अभी आकर खड़ी हुई मर्दों की टुकड़ी में बात चल रही थी।

'जीवन का क्या भरोसा मेरे भाई। एक कदम उठा, दूसरा शायद इस दुनिया में पड़े, क्या पता—'

'उसके हाथों में शगुन की मेहदी और कंगन था—च्च्-च्च् बर्फी का दोना—हाय खाना भी भाग्य में न बदा था—सिर बिल्कुल कुचला गया—'

सपना को उस क्षण यूँ लगा जैसे चारों ओर अँधेरा है। उस अंधेरे में लोगों के भूत एक ताबूत उठाये जाते हैं और वह अंधी होकर ठोकरें खाती फिरती है—उसकी आँखों में आँसू नहीं, चीख में आवाज़ नहीं—और लोग हाय-हाय करते चल रहे हैं। यह ताबूत किसका है? वह अपने-आप से पूछती रही।

भावनाओं और अहसासों के कितने रास्ते, कितनी मंज़िलें तय करती, आज वह व्यावहारिक जीवन के इस चौराहे में खड़ी कर दी गई थी जहाँ कई रास्ते थे। पुकारते, ललकारते, फुंकारते हुए रास्ते—और वह तेज़ हवा में तिनके की तरह अकेली।

'अब्बा-मियाँ, देखो तो—' वह पागलों की तरह उठी—'मैं कहती थी—न जाओ—न जाओ—वह माना ही नहीं।'

पाँव उठाते ही वह लड़खड़ा कर ट्रंक पर गिरी। किसी ने उसकी तरफ ध्यान न दिया। जवान पर्दे वाली औरत से कोई आकर क्या पूछे—किसी की हिम्मत न थी—अफ़सोस अवश्य था।

□□

सपना बेसुध पड़ी रही और शाम के साये ढलते-ढलते रात में बदल गये। यह सुस्ती थी, या नींद—या कोई नया घर इस तरह अचानक गिरा था कि उसके मलबे की नीचे दबी वह करवट न ले सकती थी। उसकी सारी शक्ति समाप्त हो चुकी थी।

'बाबा का महल समझ कर सोई है—हम तुम्हारा पहरा दें—कांस्टेबल ने उसकी पसली में छड़ी चुभोते हुए कहा। और सहमी हुआ सपना को बांह से पकड़ कर खड़ा कर दिया। हाथों के कंगन बज उठे। सपना हाथ छुड़ा कर परे खड़ी हो गई। वह काँप रही थी।

और कांस्टेबल ने महसूस किया कि वह बांह जो उसके हाथ से अभी-अभी छूटी है, वह नर्म है—चादर में लिपटा हुआ शरीर जवान है—उबटन, मेंहदी और इतर की खुशबुओं में बसी हुई पसीने की गंध युवा शरीर की गवाही देती है।

'ऊँ—तू तो बड़े चाव से यार के साथ निकली थी। छोड़ गया न आखिर', कोई पीछे से बोला।

धीरे-धीरे उसके आस-पास कई आवाजें जमा हो गईं। ये लोग उसके कुछ भी न लगते थे परंतु उनकी सारी बकवास उसके लिये थी। उसका जी चाहा एकदम भाग खड़ी हो, जिस तरफ मुँह उठे। कम-से-कम इन आवाजों से तो छुटकारा मिले—परन्तु उसके पाँव एक इंच भी न हिल सके।

'मैं इसको शाम के तीन बजे से यहाँ बैठे देख रहा हूँ!'

यह एक खोंचे वाले की आवाज थी। सपना उसको पहचानती थी क्योंकि वह अपनी पतली आवाज में कब से खड़ा हांकें लगा-लगा कर सौदा बेच रहा था। उसकी बात में घृणा का संकेत था न किसी राय का—बस वह केवल एक सूचना दे रहा था।

'अजी मर्द का मुँह देखती दूर निकल आती हैं। और जब वह पीठ दिखा जाता है तो खड़ी जिस-तिस का मुँह ताकती हैं—है कोई अल्ला वाला जो गिरती को थाम ले।'

इस पर जोर का ठहाका पड़ा। जाने यह तीर किस के तरकश से निकला था। उसका यदि यहाँ कोई मित्र न था तो शत्रु भी तो कोई न था।—पर यह तीर सपना के सीने को छेद गया।

'कहाँ हैं? कहां हैं मेरे अपने?' वह कराही।

कांस्टेबल ने एक घूँसा उसकी कमर में दिया—

'चल लुच्ची—रोती है—'

फिर उसकी चीखें लोगों की भिनभिनाहट में खो गईं।

□□

मुर्गे की बाँग से पहले जब उसे होश आया तो किसी दीवार के रोशनदान में से रोशनी की धारियाँ सी अंदर आ रही थीं। शायद पिछले पहर की चाँदनी थी। उसने लेटे-लेटे दृष्टि चारों ओर घुमाई।

अँधेरे में सांसों की सरसराहट एक से अधिक लोगों का पता देती थी।

'मैं कहाँ हूँ ?'

सपना ने अपने-आप से पूछा। खाली मस्तिष्क प्रश्न कर सकता था, परन्तु उत्तर अँधेरे में गुम थे।—कहीं चारपाई चरमराई—

'चलो मैं तुम्हें छोड़ आऊँ !'

'नहीं, मैं नहीं आऊँगी !'

'दिन निकलने वाला है पागल !'

'निकलने दो—'

'बड़ी कमीनी हो तुम—'

'सब कुछ तुम हो—'

'कंजरी—ढीठ—'

अँधेरे में घूँसे की आवाज़ उभरी—

'कंजर—'

फिर वही आवाज आती चली गई—

'तू तो भी लच्छनों पर आ गया है। अगला घर न दिखाऊँ तो मेरा नाम बिल्लो नहीं। लोग भेड़ बकरी चराते होंगे मैं लोगों को चराती हूँ—समझे—'

अब हाथ-पांव का युद्ध शुरू हो चुका था। घूँसे, तमाचे, चीखें, और भरी-भरी सांसें—कमरे में एक हड़बोंग मची थी। मर्द और औरत एक-दूसरे को गंदी गालियाँ देते धींगामुश्ती कर रहे थे।

वह दम साधे लेटी सुनती रही।

'इस राँड को लाये थे तो मुझे क्यों बुलवाया था—हरामी—'

वही आवाज फूली हुई साँस में से उभरी।

'लाया कब हूँ, यह तो अपने आप चली आयी है।—चुड़ैल, कुत्ते की औलाद, तू इतना जले भुनेगी, मुझे क्या पता था—'

औरत बिलख-बिलख कर रोने लगी। मर्द ने उठ कर बत्ती जला दी और झुक कर सपना के चेहरे को देखा। वह दम साधे चुपचाप लेटी रही।

'अभी तक बेहोश है—'

वह रोती हुई औरत के पास जाकर बैठ गया और पुचकारते हुए बोला—

'तू मुझे इतना चाहती है—मुझे आज पता चला। भला मैं तुझे छोड़ सकता हूँ। ईर्ष्या से ही प्रेम का पता चलता है। तू इस छोकरी से जलती है। इसका आज ही प्रबंध होगा। आज ही ठिकाने लगी समझो।'

'कहाँ लगाओगे ?'

औरत की आवाज में बिजली की सी तड़प थी जो जल भरे बादलों के टकराने से पैदा होती है—जिससे कलेजे दहल जाते हैं और पिघल भी जाते हैं।

'जहाँ तुम कहोगी—'

सपना ने बंद आँखों से देखा जैसे कोई किसी को बार-बार चूमता विश्वास दिला रहा है। और कोई आहों की भाप में घुलता जा रहा है।

सपना अपने शरीर की कंपकंपी को रोके सोच रही थी, यह मर्द वही रात वाला कांस्टेबल है, और औरत ?—

औरत जाने कौन है।

वह कैसे रहस्यात्मक ढंग से कह रही थी—

'तुम इसे हवेली वाली सुभद्रा के हवाले क्यों नहीं करते। अच्छे पैसे मिल जायेंगे। इसकी शक्ल अच्छी और शरीर ताज़ा है—सुभद्रा को यह अवश्य पसंद आयेगी। वहाँ गंदा धंधा भी इतना नहीं होता। बेचारी जाने किस गरीब की इज्ज़त है। वहाँ यह अच्छी रहेगी—वहाँ बड़े-बड़े लोग आते हैं—मुझे तो यह अच्छी लगने लगी है—मगर तुम्हारे साथ नहीं—बेचारी—मुझे हमदर्दी है—'

औरत तरस खाये जाती थी।

'वहाँ बात कौन करेगा।'

'मैं करूँगी।—जो कहीं यह लड़की हमारे डेरे पहुँच गई तो हम सब की मार्केट ठप्प कर देगी। बस इक ज़रा मस्के की देर है। हमारे ग्राहक सुभद्रा की हवेली को बड़ी आशा से देखते हैं। अपना-अपना स्तर है भई—दिनों का हेर-फेर है। उनके ग्राहक कभी-कभी हमारी तरफ भी आ निकलते हैं। बस ऐसे ही, जैसे अच्छा गोश्त खाते-खाते दाल-भात को जी चाहने लगे—अच्छा अब चलना चाहिये—'

फिर यूँ लगा जैसे वह औरत तैयारी करने में व्यस्त हो गयी हो। सपना बातों से महसूस कर रही थी कि कौन कहाँ है, क्या कर रहा है।

'तुम जाते ही बात कर लोगी न ?' मर्द ने पूछा।

'हाँ-हाँ, परन्तु तुम अपने अल्ला-दिये को क्या उत्तर दोगे ?'

'उससे मैं खुद निपट लूँगा। मैं चाहता हूँ यह जल्दी अपनी 'मंज़िल' पर पहुँच जाये। तुम जानती हो, यह कैसे लोगों का डेरा है। आज की रात यहाँ रहने की मेरी बारी थी। तुम जानो, थानेदार है, हवलदार सिपाही, मुंशी और जाने कौन-कौन इससे अपना हिसाब वसूल करेंगे। यह लड़की यहां रह गयी तो मुसीबत आ जायेगी। किस-किस को इनकार

करूँगा, मुफ्त की शराब—ही-ही—यूँ इसकी मंजिल मुझे मालूम है—मैं कायर नहीं।'

'खैर संयोग की बात है—'

'नहीं बाबा, तुम बहुत बहादुर हो—'

औरत ने मर्द के गाल थपथपाये और दोनों बाहर निकल गये। मर्द किवाड़ लगाते हुए कह रहा था—

'तुम उन से तय करना, इतने में मैं इसे तांगे पर ले कर वहाँ पहुँचता हूँ। सौदा हो गया तो अच्छा वरना देखा जायेगा—चलो, तुम्हें मोड़ तक छोड़ आऊँ—'

'हाँ-हाँ—ठीक है!'

औरत की इतनी बात ही सुनायी दी। अब वे सांकल चढ़ा कर ताला लगा चुके थे और उनकी आवाज़ें धीरे-धीरे मद्धिम होती सुनायी देती थीं।

सपना उठ कर बैठ गयी। शरीर थकन और आलस्य के मारे टूट रहा था। मस्तिष्क घायल पक्षी की तरह परेशान। दीपक की कमज़ोर रोशनी में उसने अपना जायजा लिया। उसकी हालत दयनीय थी। वह चारपायी पर औंधी पड़ी तड़पती सिर मारती रही। और दीपक की लौं उसकी परछाईं को दीवार पर नाचते देखते-देखते अंधी हो गयी।

'सूर्य की किरणें दरवाजे के सेंधों में से छन-छन कर अंदर आ रही हैं। कोठरी का रुख उत्तर-दक्षिण को है—और दिन काफी चढ़ आया है।'

उसकी जी अचानक चिल्लाने को चाहा।

'कोई तूफान आ जाये—और छत उड़ जाये, और वह भाग जाये—परन्तु कहाँ? आखिर कहाँ? अब्बा-मियां के पास—तब वह क्यों न भागी जब उसने अपने विधवा होने की सूचना सुनी थी। कैसा अच्छा अवसर था।'

सपना को अपनी विवशता पर रोने की बजाय क्रोध आ रहा था

और उसकी दृष्टि दरवाजे पर लगी थी।

मिट्टी के अनगिनत कण रोशनी की धारा में आंख-मिचौनी खेल रहे थे। चमकते, फीके पड़ते, झूमते और अँधेरे में गुम होते—वह उन्हें मग्न होकर ताकती कहीं से कहीं निकल गई।

'अल्ला, जीवन की धारा सचमुच रोशनी की धारा है। और हम अनगिनत इनसानी कण, हम इस धारा के तट पर नाचते-नाचते भीड़ में गुम हो जाते हैं, और अन्धेरे में जाकर कहीं खो जाते हैं, और वे लोग जिनसे अभी हम बहुत निकट थे, बहुत परिचित थे, बिछुड़ जाते हैं। उनके मिलने की आशा कितनी अस्पष्ट होती है, क्योंकि रोशनी से अँधेरे में लुढ़क जाने पर कुछ सुझाई नहीं देता। वहाँ चेष्टाएँ निरुत्तर हो जाती हैं, और निरुत्तर होना सबसे बड़ी भाग्यहीनता है, कि आगे मस्तिष्क काम नहीं करता, अन्धेरा राज्य करता है। रोशनी, रोशनी—शायद भाग्य का चक्कर चल जाये और हमारे मुँह रोशनी की तरफ फिर जायें और हम दूर खड़े उन अपनों को देख सकें जो अभी रोशनी की मौजों के साथ बह गये हैं—अन्धेरे में गुम होकर रोशनी की इच्छा करना ही क्या कम है।'

अब्बा मियाँ की गहरी-गहरी बातें, किताबों में पढ़ी हुई कठिन बातें आप ही आप अचेतन से चेतन में आती चली गईं। जीवन यथार्थ और दुर्घटना की चोट खाकर झन्ना गया था।

वह कई तरह से निराशा और दुःख पर काबू पाने की चेष्टा करती रही—अम्मा और अब्बा-मियाँ पर बहुत क्रोध आया, जिन्होंने उसे वन के फूल की तरह पाला-पोसा था। पति की याद छिछलती-सी आई, और अपने विधवा होने पर दुःख हुआ। इस विधवा होने पर उसे रोने का ढंग न आता था। इस हालत में उसकी विवशता तो थी, मगर गैर-संजीदा। उसकी अजीब हालत थी, कि पति के चेहरे को वह अच्छी प्रकार से देख भी न सकी थी—काई याद, कोई सम्पर्क—उँहूँ—कुछ

भी तो न था—जीवन से घृणा का अहसास था जो दिल और मस्तिष्क पर छा गया था।

मृत माँ और दूर बैठे बाप के बारे में सोचते-सोचते वह खयालों में खो गयी—

'नहीं अब्बा-मियाँ, तुम जैसा तो दुनिया में कोई नहीं। और माँ? तुम जैसी प्यारी माँ किस को मिली होगी—मगर तुम कहाँ हो? तुम लोग इतने निश्चिन्त कैसे हो गये? मैं गुम हो गई हूँ पर तुम्हें भूली नहीं। अभी-अभी आपे में आई हूँ—कल या आज अभी थोड़ी देर बाद फिर खो जाऊँगी—मुझे कोई आँख प्यार से न देखेगी, और मेरी प्रतीक्षा किसी को न होगी—मैंने अपने पति को भीड़ में गुम होते देखा और उसकी मृत्यु की खबर सुनी—मेरी मौत की खबर कौन सुनेगा—अब्बा, तुम सोचते होंगे, मैंने रात निहायत खुशी से बिताई होगी—तुम्हें क्या पता खुशी कितनी महँगी है। खुश तो मैं उस रात भी न होती शायद, जो तूने मेरे लिये अच्छी समझी थी—तुमने एक काम करने को कहा, मैंने चुपके से हाँ कह दी। इससे अधिक और क्या कर सकती थी—परन्तु अब्बा मियाँ, यह किस किये का दण्ड है, यह किस जन्म का बदला है। तुमने मेरे गले पर जंग लगी छुरी रखी थी। समय ने उस पर और भी जंग चढ़ा दिया। तुम मिलो तो तुम्हें बताऊँ, तुम्हारी इच्छा का खून किस तरह रिस-रिस कर बहता है—जान आर होती है न पार—मरना कितना कठिन है अब्बा-मियाँ। अम्मा कैसी भाग्यशाली थी। चुपचाप इस दुनिया से उस दुनिया में चली गई। जब उसने अन्तिम साँस ली थी तो तुमने कहा था—'अब हम हिसाब के रोज़ मिलेंगे, इंशा-अल्ला, और तुम हमारे ख्यालों पर छाई रहोगी, हमारे सपनों में आया करोगी, जब तक कि हम तुमसे आ न मिलें—।' अब्बा-मियाँ, मैं हिसाब के रोज़ से भी कहीं अधिक कठिन मंज़िलों से गुज़र रही हूँ। तुम मुझे मिलने आओ न, कब मिलोगे? कहाँ मिलोगे? कैसे मिलोगे? मेरा जनाज़ा रवाना कर दिया, और

कहा—'एक मौत हो गई।' मैं अब और क्या मरूँगी अब्बा-मियाँ, हिसाब का रोज आने में थोड़ी देर बाकी है।'

यहाँ तक सोचते-सोचते उसका धैर्य खत्म हो गया।

'अम्मा, तुम ही आ जाओ। तुम मर चुकी हो, और मैं भी। फिर तुम कहाँ हो? नजर क्यों नहीं आती हो? क्या मैं तुम्हें पहचान न सकूँगी—मुझे आवाज दो। मैं यहाँ हूँ, इधर हूँ, इस कोठरी में, और बाहर ताला पड़ा हुआ है—धूप फैल चुकी है—इक ज़रा आवाज तो दो माँ—बाहर रोशनी है—कण एक-दूसरे की तलाश में गुम हो-हो जाते हैं।'

बहुत अधिक बकते-बकते उसका गला सूख गया। प्यास से ज़ुबान अकड़ गई, और सिर में दर्द होने लगा—यह दर्द धीरे-धीरे उसके सारे शरीर में फैल गया, और उसे ऐसा लगने लगा जैसे वह बुखार में तप रही है।

□□

उसने बेटी ही बेढब जनी थी, यदि वह बेढंगी न होती तो मुंदरा इस हालत में क्यों होती। सम्बल, मुँदरा की बेटी, उसके जीवन में आई और चली गई। पर मुन्दरा की मिट्टी पता नहीं कैसी सख्त थी कि जमाने का सुख-दुःख सहती मिटने का नाम न लेती थी।

सम्बल के जन्म से अब तक मुन्दरा कितनी आशाओं से बँधी रही थी। सम्बल ने उसे जितने दुःख दिये उनसे कहीं अधिक सुख भी तो दिये थे—वह जो उसकी आँख का तारा थी और जीने का सहारा थी, दुनिया से जाने के बाद उसका दिल ही तोड़ गई। और अब मुन्दरा नये कामों

में पड़ गई थी।

मुंदरा अधिक सोचती तो चिड़चिड़ी हो जाती और पछतावे उसकी जान को घेर लेते—इतना कुछ खोकर क्या पाया था। एक अकेलापन—अकेलेपन के भूत को टालने के लिये उसने सम्बल की एक-एक चीज़ को सम्भाल-सम्भाल कर रखा था। परन्तु जब कदम अधेड़ उम्र से बुढ़ापे की तरफ़ तेज़ी से बढ़ने लगे तो सम्बल की निशानियाँ कम होना शुरू हो गईं। जैसे रात होने से पहले रोशनी सिमटने लगती है, एक-एक करके चीज़ें बिकती गईं। सब से बड़ा शत्रु—पेट—भावनाओं की एक न सुनता था। भूख की आग सुन्दर यादों को जलाकर राख कर गई और आखिर में राख फाँक लेने से भी यह आग न बुझ सकी। बेटी के प्यार की जितनी यादें, जितनी चीज़ें थीं, सब भूख की आग में जल गईं। मुन्दरा सचमुच कोख जली थी। उसे कोई दिन और देखना था। वह जीवन का साथ बड़ी होशियारी से निभा रही थी।

वह खाट पर लेटी करवटें बदल रही थी। उसे नींद न आती थी और यादों ने आक्रमण कर रखा था। अरसे से चौबारे की दीवारों का पलस्तर उखड़ रहा था। उसे घर की बुरी हालत का हर समय ख्याल रहता। कैसे-कैसे ज़माने इस घर में देखे हैं। अब जिन पर भी वह तकिया करती वही पत्ते हवा देने लगते। एक के बाद एक दो नोचियाँ भाग गईं। उन्होंने कहीं अपना धंधा चला लिया। असल में मुंदरा निम्न स्तर का धंधा सम्भाल न सकती थी। सस्ते मूल्य पर फटा-पुराना माल उसे मिलता और फिर उसे धोखा दे जाता। वह क्या करे? यूँ जीवन बिताने के सैकड़ों बहाने थे। पर अब वह बूढ़ी हो चुकी थी और बुढ़ापा बिना सहारे के नहीं गुज़रता—आज की रात मुंदरा कुछ अधिक ही बेचैन थी।

सम्बल हठी न होती तो इस घर की यह हालत कभी न होती। सम्बल की मृत्यु के बाद दस साल बहुत कठिनाई में गुज़रे। मुन्दरा को सम्बल से एक ही शिकायत थी। इस शिकायत को सम्बल ने रद्द किया

था। काश वह शोकल से प्रेम न करती। मना करने पर भी वह न मानती थी। बड़ी बात मानने वाली बेटी होने पर भी इस मामले में वह इतनी ढीठ थी कि हमेशा यही कह कर टाल देती—

'मां कोई तो हो जिसके प्यार की गन्ध मन में सुलगे और शरीर महक उठे।'

'यह शरीर महकना क्या होता है री ?' मुन्दरा पूछती।

'मुझे पता नहीं, बस महसूस होता है।' सम्बल यही उत्तर देती।

जो प्रेम शोकल के लिये उसके दिल में था उसका विश्लेषण शायद वह खुद भी न कर सकती थी—वरना वह माँ की हर बात मान लेती। उसने किसी गाहक को अपनी इच्छा से वापस नहीं लौटाया। केवल खाली समय में शोकल को अवसर देती—शोकल से उसको क्या लेना था। बीमारी और मृत्यु। यही दुःख भरी शिकायत मुन्दरा को आज भी अपनी बेटी से थी।

पलस्तर उखड़ी दीवारों को देखते-देखते मुन्दरा की नजर अपने हाथों पर पड़ी। यह हाथ जिनमें झुर्रियों और नाड़ियों के जाल फैले थे, कभी-कभी कैसी निष्ठुरता से सम्बल को पीट देते। हाथों को देखकर मुन्दरा की आँखों में ममता आँसू बनकर उमड़ आई और वह जी को समझाने लगी—'मैंने भी तो आखिर उसके साथ समझौता कर लिया था। यह सोचकर कि सम्बल इतनी बातें मेरी खुशी के लिये करती थी तो मुझमें माँ होते हुए एक बात मान लेने का हौसला नहीं था ? माथे पर बिखरे सूखे बालों वाला लड़का, मुझे क्या पता था टी० बी० का रोगी है। जब वह पहली बार हमारे कोठे पर आया तो मैं भी उसकी संजीदगी से प्रभावित हुये बिना न रह सकी थी। और जहरा—जहरा तो है ही दिल-फैंक। कैसे-कैसे गुण खोज कर सम्बल को रिझाती रही—

'अरी, बहुत ही अच्छा है—मुझे इतना चाहे तो मैं ब्याह कर लूँ उससे।'

सम्बल यदि वेश्या की बेटी न होती तो उस पर कभी न रीझती। वैश्याओं अभागिनों को प्रेम करना कभी नहीं आता। जमाने भर को उँगलियों पर ताता-थैया नचाती फिरेंगी और खुद किसी गये-गुजरे पर मर मिटेंगी। जिसने दया और हमदर्दी की भावना को उकसाया, उसी को प्यार समझ कर रोग की तरह जान के साथ चिमटा लिया। लो भला, शोकल में क्या खूबी थी। कुत्ते की तरह ढीठ था। मेरी बेटी की जान लेकर जाने कहाँ भाग गया। लड़कियाँ कहती थीं वह किसी अच्छे घराने का बेटा है। छिछोरा निस्संदेह न था—परन्तु मुझे तो दिल का वह चमार जान पड़ता था।'

मुन्दरा के मस्तिष्क में शोकल के कंजूस होने का जो प्रभाव था उसका बड़ा कारण यही था कि वह मुन्दरा की खुशी प्राप्त करने के लिये कभी भाग-भगा कर उपहार न लाया—वैसे सम्बल, माँ का हर ख्याल रखती। दोनों हाथों से कमाती थी। सम्बल के हुस्न और जवानी के साथ घर की जवानी कायम थी—एक रौनक थी, एक रंग था।

मुन्दरा परेशान-सी उठी और कारनिश से बेटी की तस्वीर उठा लाई—'सम्बल के जाने के बाद घर का नक्शा ही बदल गया, जैसे कालिख पुत गई। लोग और रिश्तेदार तो चलती गाड़ी के सवार हैं। मैंने सम्बल की प्रिय चीजें बेचकर अबकी बार महँगा माल खरीदा है। देखो, खोटा निकले या खरा, मैं तो जीवन के साथ संघर्ष कर रही हूँ। सुना है जो व्यक्ति अपनी मृत्यु के समय तक जीवन के लिये संघर्ष करता है उसके पाप कम हो जाते हैं—मैंने जीने के लिये घर भर में झाड़ू देकर एक चीज खरीदी है। समझ लो, लाटरी डाली है। सम्बल कहीं गई नहीं, हर जगह है। उसके भीगे-भीगे नर्म ओठों का स्पर्श मेरी छाती में उसी तरह सुरक्षित है। वह पोपला मुँह, और विश्वास स भरी काली आँखें—फिर वह सम्बल जिसकी सुन्दरता और सजधज हर मुजरे में बीसियों को घायल करके आती थी—लोग फ़रमायशें करते पीछे चले आते—'

इतना कुछ सोच चुकने के बाद भी मुन्दरा को नींद न आती थी। मज़े और धन्धे की खातिर रतजगे की आदत अब पक्की और कष्टकर हो गई थी। फिर बुढ़ापे का उजाड़-वीरान वातावरण, एक निरन्तर अन्धेरी रात—

उधर कटरे में लोगों ने दिन चढ़ा रखा था—

मुन्दरा पानी पीने के लिये बालकनी में जा खड़ी हुई। रात का पहला पहर दुल्हन की तरह सजा हुआ था। मोतिये और गुलाब के फूलों की कुँवारी खुशबू जलते हुये माँस की चिरांध में घुलमिल गई थी। बाबी कबाबिये की दूकान पर फिल्मी रिकार्ड बज रहे थे और ग्राहकों की भीड़ थी।

'लोग इस मुहल्ले में हर तरह की भूख लेकर आते हैं।' मुन्दरा ने सोचा।

बाबी को दूकान में व्यस्त देखकर मुन्दरा का ध्यान उसी की तरफ मुड़ गया—

'बाबी है तो हराम की औलाद, परन्तु बड़ा उसूल वाला आदमी है। अवश्य किसी अच्छे का बीज होगा—उसने इस मुहल्ले को हमेशा माओं-बहनों का मुहल्ला समझा। आँखों देखते आधी उम्र को पहुँच गया, पर किसी रंडी से प्रेम न किया। माँ-बहन ने जो उसके पल्ले बाँध दी उसे स्वीकार लिया—मेरे मौला ने भी तो उसे खुश कर दिया। चार सुन्दर सी बेटियाँ दी हैं। धंधे को ऐसा चमकायेंगी कि लोग सुभद्रा की हवेली को भूल जायेंगे—'

सुभद्रा के ख्याल पर मुन्दरा ने चिक उठाकर बाहर गली में थूका। बाबी की नजर पड़ गई और उसने वहीं बैठे-बैठे आदत के अनुसार पूछ लिया—

'मुन्दरा मौसी क्या चाहिये ?'

'यार—'खी-खी में दबी हुई आवाज़। मुन्दरा का मूड पहले ही तेज

था, ताव खा गया। तड़क कर बोली—

'तू ही आ जा माँ के यार—तुझे तो आदत होगी।' मुन्दरा ने बिना सोचे-समझे निचले दर्जे की नोचियों की तरह मुँह खोल कर कह दिया।

'माशूक़ बनाओगी ?'

उधर से आवाज आई।

'तेरी माँ—'

मुन्दरा को कोई अच्छा-सा उत्तर अभी न सूझा था कि दहाड़ता हुआ बाबी अपनी दूकान से कूदकर बाजार में आ गया। दोनों तरफ से गाली-गलौज होने लगी।

बाबी लौंडे को माँ-बहन से भी अगले रिश्तों की गालियाँ सुना रहा था। लोग चटखारे लेते हुये उसे और उत्साहित कर रहे थे। बाबी के नौकर छोकरे ने लड़के को कालर से पकड़ लिया। कुछ सेकंडों में वहाँ खूब झगड़ा शुरू हो गया।

पंजाबी माझे ने, जो चौंक में फ़लूदे-कुल्फ़ी की दूकान चलाता था जल्दी से बड़े सारे भोंपू वाले ग्रामोफोन पर नया रिकार्ड चढ़ाकर सूई रख दी। उस भयंकर शोर में गीत के बोल गूँजे—

'यूसफ़ पुच्छे दस जुलेखा, कित्थे गई जवानी—'

लोग दो भागों में बँट गये। अब बात मुन्दरा और लोंडे की न रही थी। कटरे वालियों और कटरे वाले लौंडों का झगड़ा था। वह जो डंके की चोट धन्धा करतीं और वे जो पर्दे के पीछे जाने क्या व्यापार करते थे—ठाठ से बेकार घूमते, अच्छा खाते, अच्छा पहनते और बातों में मर्दों की तरह डींगें मारते—आपस में लड़ रहे थे।

देखते-देखते तमाम बालकनियों पर रंगीन पोशाकें लहराने लगीं। खिड़कियों में दुल्हनें निकल आईं। पालिश चढ़े जेवर और झूठे काम के कपड़े, रोशनी में लश-लश कर रहे थे, और कटरे में गीत और गालियाँ

मुंदरा को कई वहमों ने घेर रखा था। वह 'अल्ला तेरा फ़जल'—'मौला तेरा फ़जल' कहती उठी और बत्ती बुझा दी। अंधेरे में आवाज़ें अधिक निखर गईं। उसे यूँ महसूस हुआ जैसे कोठरी में कोई चल-फिर रहा है और बार-बार दरवाजा बजाता है—जब वह बरामदा पार कर रही थी तो उसकी टाँगों को नींद झुला रहा थी और पपोटे भारी थे। इसी नींद की हालत में उसने अपनी नाक खिड़की के शीशे पर टिका दी और अन्दर झांका। कमरे में एक परछाईं बेचैनी से घूम रही थी—अब वह परछाईं खिड़की की तरफ बढ़ने लगी—मुंदरा उल्टे पाँव भाग आई। दरवाजा लगातार बजता रहा—

फिर मुंदरा तकिया सिर की बजाय बाहों में जकड़े सो गई।

सुबह उठकर मुंदरा ने रोज की तरह चाय बनाई और एक की बजाये दो बन खरीदे। दूध वाले की प्रतीक्षा करते हुए उसे ख्याल आया, जरा बरामदे के पार जाकर कोठरी में झाँक ले—वह डर रही थी, और उसे वादे का भी ख्याल था। वह उठ-उठ कर बालकनी में से बाजार में झाँक भी लेती थी पर दिल तसल्ली न पाता था। चिड़िया की उड़ान तक उसे बिदकाये दे रही थी, और दिल प्रसन्नता और दुःख के बीच भटक रहा था। कल का दिन ठीकठाक गुजर गया था—रात दंगा करने वाले उसके घर आते आते रुक गये नहीं तो रहस्य प्रकट हो ही जाता। शुक्र खुदा का उसके मुँह से कोई दूसरी बात नहीं निकल गई जिससे संदेह पैदा हो जाता—अब उसे डर था तो दूध वाले बोंधू का—

हर रोज वह देर तक करवटें बदलती चारपाई पर पड़ी रहती। कई बार तो ऐसा हुआ कि बोंधू ने आ कर जगाया। खुदा का नाम लेने का भूत उस पर कभी-कभी सवार होता, वरना वह अपने-आप को महत्त्वहीन-सा ख्याल करती सुस्ती में पड़ी रहती। आज उसे बोंधू की बहुत प्रतीक्षा थी।

'वह होकर चला जाये तो अच्छा है—वह तो मौसी मौसी करता

सब कुछ सूँघ लेता है—पहली दो नोचियों को, हो न हो इसी हरामी ने भगाया।'

मुंदरा अपनी भाग्यहीनता का सारा दोष दूध वाले पर धरे सोच रही थी—

'कम्बख्त की आँखें कैसी तेज हैं। किसी कुत्ते या बिल्ली की नसल मालूम होता है। हर चीज को सूंघ लेना तो बस इसी का काम है।'

छत पर जाने वाली सीढ़ियों की दीवार पर धूप फैल चुकी थी। मुंदरा ने धूप से समय का हिसाब लगाया—'सात बजने को हैं। कम्बख्त अभी तक नहीं आया। अब खीसें निकाल कर टाल देगा। यह अहीर न होता, दलाल होता तो क्या बात थी। मौला ने बड़ी ज्यादती की इसके साथ। हड्डी दलालों की सी ढीठ थी।'

मुंदरा का पुराना नौकर, सालक, बोंधू को अक्सर छेड़ा करता था—

'यार बोंधू, तू तो रंडियों के काम की चीज था। फँस गया भैंसों की टाँगों में—'

इस पर बोंधू खी-खी हँसता, कहता—'दोनों देवा हैं मेरे यार—रंडी हो या भैंस—क्यों?'

'आहा—क्यों भूलते हो, रंडी तो औरत भी होती है। भैंस तो केवल भैंस होती है। औरत के चरित्तर तो तुम जानते हो?'

'मैं कैसे जानता हूँ? यह भी तुम्ही को पता होगा।'

बोंधू सचमुच बुद्धू बनकर कहता—और सालक उसके कान के निकट मुँह ले जाकर कोई निहायत चटपटी बात कहता और बोंधू जांघें बजाता हुआ ठहाका लगाता और चीखता—

'वाह-वाह, जी खुश कर दिया, क्या बात कही है, कैसी गरमा-गरम—ले तू दूध पी और ऐश कर—'

वह आँख मारते हुए पाव भर दूध मुफ्त में सालक के लिए डाल देता।

उन दोनों की आपस में बेहद बेतकल्लुफी थी। मुंदरा के घर की बहुत-सी बातें तो बोंधू को सालक के द्वारा पता चल जातीं। सर्दियों में जब रात की महफ़िल गर्म होती तो वह चिलम भरने के बहाने सालक के पास घंटों रसोई में घुसा बैठा रहता। अवसर पाते ही मुंदरा की आँख बचाकर बैठक में भी झाँक आता। सम्बल से झिड़कियाँ बेचारा सालक खाता—बोंधू दो-चार डगों में सीढ़ियाँ उतर जाता और उसके हिस्से की गालियाँ दीवारें सुनतीं और चुप रहतीं। मगर बोंधू को चुप न लगती—

गली मुहल्ले की औरतें मुंदरा को बतातीं—'बुआ, तेरी सम्बल तो पारस है पारस—'

सम्बल को चाहने वाले भी उसे 'पारस परी' कहा करते थे। यह नाम बोंधू का ही रखा हुआ था। बोंधू पर्दे के पीछे सम्बल का प्रेमी था और दूर व निकट उसको प्रसिद्ध करने में उसका हाथ भी उतना ही था जितना किसी पेशेवर दलाल का हो सकता है।

सम्बल की नाराजगी के डर से, अधिक से अधिक, चार दिन के लिए इधर-उधर खिसक जाता। दूध किसी के हाथ भिजवा देता और खुद नीचे कहीं दीवार की ओट में खड़ा रहता। पर पाँचवें दिन वह नये और सच्चे किस्से-कहानियाँ लिये मुस्काई हुई शक्ल बनाये मुंदरा के हुजूर में आ जाता—

'मौसी, फलाँ के यहाँ लड़की पैदा हुई है। ओ-हो, बड़ी अच्छी शक्ल की है। बस जी, जिसको मौला दे। बड़ी खुशियाँ मनायी हैं उन लोगों ने। क्या बताऊँ, हिजड़े तक खुश कर दिये—बनारसी कपड़े उनको मिले—वाह जी, कभी कहीं लड़कियों के जनम पर भी इतनी प्रसन्नता होती है!'

वह काम में व्यस्त सालक को ऊँची आवाज से बताता और दूसरी बात बताना शुरू कर देता—

'फिरोजा के आजकल वारे-न्यारे हैं, मौसी। पुलिस के साथ गठजोड़ के बहुत लाभ हैं—वह गाहक भी लाते हैं और माल भी—और हाँ, फलाँ के हाथ ऐसी छोकरी लगी है—क्या बताऊँ, कन्धारी, अनार की दाना—'जरूर 'खानदानी' होगी—'

वह अगली से अगली सूचना अपने-आप देता जाता।

मुंदरा को बोंघू का ख्याल आया तो आता ही चला गया। वह उठी। सीढ़ियों की सांकल को देखा। चढ़ी हुई थी। यह सोच कर कि बोंघू कहीं और निकल गया होगा, सात बजे तक आ ही जायेगा, उसने बरामदा पार किया और कमरे की खिड़कियों से कान लगा कर कुछ सुनना चाहा। दीवारों और चौबारों को ध्यान से देखती हुई ताला खोल कर वह कमरे में प्रवेश कर गई—कटरे के बाजार में रात का सा सन्नाटा था।

सौदा करते समय उसने वादा किया था कि वह एक सप्ताह तक रहस्य को जूँ-तूँ छुपाये रखेगी। ऐसा सौदा उसने जीवन में पहली बार किया था। वहमों ने उसके अफीम के आदी मस्तिष्क पर बोझ डाल रखा था। फिर भी होश सँभालते हुए वह पलंग की तरफ बढ़ी—एक लड़की का अधमरा शरीर बिना हरकत के पड़ा था। आँखें बन्द थीं। केवल पलकें काँप रही थीं और चेहरे पर बेचैनी के चिह्न थे। मुंदरा अपने मस्तिष्क पर जोर डाल रात की बात याद करने लगी।

हाँ, रात यह जाग रही थी और होश में थी। कमरे में घूम रही थी। दरवाजा पीट रही थी—

अफीम के चढ़ते हुए नशे के समय मुंदरा ने जो कुछ सुना और देखा उसका मद्धम-मद्धम नक्शा उसके मस्तिष्क में था।

पीले, कमजोर और मासूम चेहरे को देखकर मुंदरा का दिल दया से भर गया। उसने अपना हाथ प्रेम और नर्मी के साथ उसके माथे पर रख दिया। लड़की ने धीरे-धीरे आँखें खोलीं और झपक-झपक कर

देखने की चेष्टा की। फिर यह वीरान आँखें मुंदरा के चेहरे पर टिक गईं। मुंदरा घबराई, फिर सम्भल गई।

वह फटी-फटी आँखें उसे घूरे जाती थीं।

दो काँपते हुए हाथ उठे और गिर गये।

'माँ—'

पतली कमज़ोर आवाज उभरी।

'हाँ—बच्ची—'

मुंदरा अपने-आप को न रोक सकी। और उसका हाथ अपने हाथ में ले कर सहलाने लगी। लड़की ने दोबारा आँखें बन्द कर लीं। एक शब्द 'माँ' ने मुंदरा के दिल से सारे वहम निकाल दिये थे।

अरे यह लड़की तो सम्बल थी। बिल्कुल सम्बल की तरह भोली थी। जीवन के अन्तिम दिनों में वह भी तो ऐसी हीं कमजोर हो गई थी। लड़की का हाथ सहलाते हुये मुंदरा की आँखों में ममता उमड़ आई। उसके कानों ने अपने ही हृदय से उठती हुई आवाज़ सुनी—

'मेरी बच्ची—'

लड़की उसकी तरफ ध्यान से देख रही थी। अब उसकी आँखों में पहले सा डर और वीरानी न थी। मुंदरा उसे देख-देख कर मुस्करा रही थी।

'पानी'

मुंदरा दौड़ी-दौड़ी गई और पानी ले आई। बांह का सहारा दे कर लड़की को उठाया और कहा—

'खाली पेट है मेरी बच्ची ! अधिक न पीना—'

उसने रुक-रुक कर कुछ घूँट पिये और जिह्वा से ओठों को तर करते हुए बोली—

'मेरा वहम है—तुम मेरी माँ कैसे हो सकती हो ? मेरी माँ को तो मरे हुए कई महीने हो गये।'

'हाँ-हाँ, मैं तेरी माँ ही तो हूँ—'

मुंदरा ने उसे बहलाने के लिये विश्वास दिलाया। उसका ख्याल था इस कमजोरी में दुखों की याद और चुभेगी।

'देख तो, माएँ ऐसी ही होती है, मैं तेरी माँ हूँ।'

'नहीं-नहीं—तुम झूठी हो।'

लड़की के लिये मुंदरा भावनाओं की जितनी सीढ़ियाँ चढ़ी थी, निराश होकर एक क्षण में उतर आई।

'तुम कौन हो—'

लड़की ने चिढ़ कर पूछा।

'मैं औरत हूँ और शायद माँ भी—मगर नहीं, तुम भी न मानोगी—हाँ तुम अपना नाम तो बताओ।'

'सपना—'

सपना नाम बता कर चुप हो गई, और कितनी देर इधर उधर की चीजों को देखती रही। मुंदरा ने उसका हाथ छोड़ दिया था और खाली मस्तिष्क से सपना को देख रही थी। वह नाम सुन कर चौंकी भी नहीं और न ही उसे दोहरा लेना उचित समझा—जैसे उसे बिल्कुल ही होश न रहा हो।

सपना ने चुप्पी को तोड़ा और मुंदरा के माथे पर सफेद बालों की लट को छूते हुए बोली—

'तुम्हारे बाल मेरी माँ की तरह सफेद हैं और आँखों में, अभी-अभी थोड़ी देर पहले नर्मी और चमक भी वैसी थी। कुन्ती की माँ भी तुम जैसी ही थी। सब औरतें एक-सी होती हैं। बस अन्तर केवल इतना है कि तुम ज़रा धोखेबाज़ हो। उँह क्या आराम से कह दिया, मैं तुम्हारी माँ हूँ—भला मैं बच्ची हूँ।'

मुंदरा की तेज़ी से चलती हुई सांस उसके मूड का पता देती थी। वह चुप थी। पर जकड़े हुए पक्षी की पहली तड़प और झल्लाहट से वह

खूब परिचित थी। सपना ने आगे कहा—

तुम्हारे चेहरे पर झुर्रियाँ हैं, मेरी अम्मा के भी थीं—वह कहा करती थी, यह लकीरें नहीं हैं, दिन, महीने और साल हैं, जो मेरे चेहरे पर लिखे हैं—मैं इस आलेख को पढ़ सकती हूँ।'

सपना ने ध्यान से मुंदरा की तरफ देखा—

'इनका मतलब बुढ़ापा होता है—ऐसी सब औरतें माएँ होती हैं और मर्द, बाप—तुम हूबहू माँ हो—मेरी नहीं, किसी की तो होगी—'

कहते-कहते सपना का गला रुँध गया। शायद आँसू फँस गये थे—वह चुप हो गई। फिर अचानक कोई और बात याद आ गई और उसने घृणा से त्योरी चढ़ा कर पूछा—

'तुम सुभद्रा हो ?'

'नहीं।'

'फिर झूठ बोल रही हो।'

'नहीं।'

'अच्छा तो फिर तुम मेरा क्या करोगी ?'

'मैं तुम्हें बहुत प्यार से रखूँगी।'

'क्यों ?'

इस 'क्यों' ने मुंदरा के मस्तिष्क को गर्म कर दिया। वह अब तक भावुक होकर लड़की को ढील देती आई थी। अब वह यथार्थ और सच्चाई पर उतर आई और कारोबारी सख्त आवाज में बोली—

'मैंने तुम्हें भारी रकम दे कर खरीदा है।'

मुंदरा का जी चाहता था लड़की को झंझोड़ कर रख दे।

'लड़की, मैं अपनी चीज़ों को सुरक्षा से रखती हूँ क्योंकि वे खूब पसीने की कमाई से खरीदी जाती हैं। देखती हो—वह किसी नर्तकी का बुत, और पीतल का गुलदस्ता—यह सब कभी मैंने खरीदे थे। किसी ने उपहार में नहीं दिये। मुझे किसी के दिये हुए उपहार की कोई कद्र

नहीं—जवान वेश्या पर उपहार राल की तरह टपकते हैं। मुझ जैसी औरत को अपनी खरीदी हुई चीजें बहुत प्रिय होती हैं, क्योंकि वह खुद सस्ते दामों बिकती है, और उसके बटुए में छेद कितने होते हैं।'

सपना आश्चर्य से आँखें खोले सुनती रही, फिर कोई बीच की बात पकड़ ली और पूछा—

'वेश्या क्या होती है ?'

'तुम्हें पता चल जायेगा।'

'तुम मुझे बेटी समझती हो ?

'हाँ—'

'बेटियाँ खरीदी जा सकती हैं ?'

'नहीं—'

मुंदरा इस बहस को अधिक लम्बा न करना चाहती थी। उसने संक्षिप्त उत्तर देकर कहा—

'चलो हाथ-मुँह धोओ। उठ सकोगी ? उसने सपना को उठा कर बिठाते हुए कहा।

सपना ने औरत के लहजे की नर्मी को महसूस करते हुए पूछा—

'पहले एक बात बताओ—मुझे मेरे अब्बा-मियाँ तक पहुँचा दोगी ?'

'नाश्ते से छुट्टी पा कर बात करेंगे। अभी तुम थकी हुई और निढाल नज़र आती हो।'

मुंदरा साबुन, पानी, तौलिया कमरे ही में ले आई। सपना का मुँह इस प्यार से धुलाया, जैसे सपना उसकी बीमार सम्बल थी जो कई वर्षों के बाद रूप बदल कर कहीं से वापस आ गई हो।

मुंदरा सपना को रंडी की दृष्टि से देख कर हिसाब लगा रही थी—

लड़की गेहूँ की पकी हुई बाली की तरह सुनहरी, भरपूर और चमकदार है।

सपना ने तौलिये से मुँह पोंछते हुए खामोश मुंदरा की तरफ देखा

और बेटियों की तरह कहा—

'यदि तुम मुझे एक बार घर पहुँचा दो तो मैं तुम्हें—'

अभी बात पूरी न हुई थी कि मुंदरा बोली—

'तुम मुझे क्या दोगी ?'

मुंदरा के चेहरे पर मक्कार मुस्कराहट फैली थी—सपना पहचाने बिना कहती गई—

'मेरे पास तुम्हें देने के लिए कुछ भी नहीं है ।'

और फिर उसने अपने शरीर को ध्यान से देखना शुरू किया ।—उस दिन वह किस तरह गहनों, कपड़ों से सजी हुई थी । आज हाथ में कांच की चूड़ियाँ भी न थीं । हाँ उनकी चुभन बाहों पर मौजूद थी और उसका जगह-जगह से मुड़ा हुआ लाल जोड़ा—वह बिसूरते हुए बोली—

'आज मुझे यहाँ आए हुए कितने दिन हो चुके हैं ?'

'मेरे पास दूसरा दिन है ।'

'मैं घर से कब चली हूँ—मुझे याद नहीं पड़ता—कौन सा दिन था ? कोई-सा भी हो—'

सपना ने अपने आप से कहा—

अब्बा-मियाँ मुझे लेने आये होंगे । मुझे न पाकर उन्होंने लोगों से पूछा होगा—भला कोई क्या बतायेगा !'

पिछली यादें और भविष्य का ख्याल उसके मस्तिष्क में गड़बड़ किये हुए थे । वह बावलों की तरह बोलती दरवाज़े की तरफ चल दी—

'मैं खुद जाऊँगी । रास्तों का क्या है, मिल ही जायेंगे—पूछ लूंगी—जाऊँगी—अभी जाऊंगी—मुझे जाना चाहिये ।'

'मगर मैं नहीं जाने दूँगी ।'

मुंदरा ने सख्त आवाज़ में कहा—सपना के रेंगते हुए पाँव एकदम रुक गये । उसने बच्चों की सी लापरवाही से पूछा—

'क्यों ? वाह—'

'मेरी इच्छा—'

मुन्दरा ने इतना कहा और उसकी बाँह पकड़ कर पलंग पर बिठा दिया।

'आखिर तुमने समझा क्या है लड़की—तूने सचमुच खाला का घर समझ लिया। उँह धीरे-धीरे जान जाओगी—'

सपना ने उसके चेहरे की सख्ती और आँखों के क्रोध को देखा तो उसे अनुमान हुआ कि वह आज जीवन के समक्ष खड़ी हुई है। चालाक जीवन सपना की आँखों में आँखें डालकर देख रहा था। और वह, जैसे जादू के प्रभाव में, हाथ जोड़े पांवों में गिर गई—

'मैं बिनती करती हूँ, एक बार जा लेने दो, मैं तुम्हारे पास वापस आ जाऊँगी।'

सपना लगातार रोती-रोती काँप रही थी, और मुन्दरा सोच रही थी—ठोकर मार दे या दया का करिश्मा दिखाये कि यह तन और मन से मान जाये और हमेशा के लिए बस में हो जाये। गोश्त-पोस्त और चमड़ी का मूल्य लगा चुकने के बाद अब वह देख रही थी कि लड़की की जवानी अदाओं से खाली नहीं है—उसमें लचक भी है और रोती हुई बड़ी अच्छी लगती है—इसकी मार्केट किसी से भी, किसी भी तरह कम नहीं हो सकती।

मुंदरा एक विशेष ढंग से मुस्कराई और सपना को उठा कर छाती से लगा लिया। अपने पल्लू से आँसू पोंछे और धीमे मीठे लहजे में बोली—

'ज़रा आईने में अपनी शक्ल तो देख। इतनी कमज़ोर हो रही है, अकेली कैसे जायेगी ? तुम ज़रा ठीक होने की चेष्टा करो। हम दोनों इकट्ठे जायेंगे तुम्हारे घर—भला, मैं अपनी मुँह बोली बेटी का घर न देखूँ—वाह—'

'कब—?' सपना की आत्मा बेचैन थी।

'जब तुम बिल्कुल ठीक हो जाओगी—हँ—'

सपना चुप रही। फिर जैसे कोई अपने-आप को तसल्ली दिलाने के लिये कहता हो—'हाँ ठीक है—इतने में अब्बा-मियाँ हमें तलाश करने के बाद घर पहुँच चुके होंगे—है न!'

'बिल्कुल-बिल्कुल, यही बात मैं तुमसे कहना चाहती थी।'

इस बीच में सीढ़ियों की सांकल खड़की। मुंदरा के कान खड़े हो गये और जल्दी से बाहर जाने के लिये मुड़ी।

'तुम बैठो, बाहर मत आना, सम्भव है पुलिस वाले हों, बड़े वह होते हैं, तुम जानती हो—'

सपना सर से पांव तक काँप गई और यूँ चुप कर रही जैसे मर गई हो। मुंदरा दरवाज़ा बन्द करती हुई चली गई।

□□

डाकिया मुंदरा के नाम का पत्र पहुँचाने आया था। मुंदरा ने आश्चर्य से उसके चेहरे को देखा। वह माथे तक हाथ ले जाकर सलाम करते हुए बोला—

'मौसी, एक मुद्दत के बाद तेरा पत्र आया है।'

मुंदरा पत्र पकड़ते हुए विश्वास और अविश्वास का शिकार थी। भला उसे कौन लिखेगा। जिससे भाग्य मुँह मोड़ ले उसको कौन मुँह लगाता है। मुंदरा ने अफसोस के साथ क्षण भर को सोचा। फिर पता पढ़ा—लिखाई जानी-पहचानी थी। कुछ ढारस-सी बँधी और बोली—

'तुम अच्छी खबर लाए हो तो तुम्हारा मुँह मीठा कराऊँगी।'

'अभी खिलाओ कुछ—' डाकिया पुरानी बेतकल्लुफी से बोला।

'बड़े बेसब्र हो—मैंने पत्र अभी पढ़ा ही कब है—जाने इसमें क्या लिखा हो। और तुम कब अच्छी खबर लाने वाले हो, मनहूस—याद है पिछली बार का—'

मुंदरा लिफाफा फाड़ते हुए कह रही थी।

'मौसी, जल्दी से अभी-अभी पढ़ लो। आज चाय न पिलाओगी। अल्ला कसम, तुम्हारे घर पर नाश्ता करने का सोच कर चला था—मेरा ख्याल था मुंदरा मौसी अवश्य कहेगी जैसी कि उसकी आदत है। तुम मुहल्ले में सबसे जल्दी सो कर उठ जाती हो।—पत्र तो कल का आया पड़ा है। मैंने सोचा डाक लेने जाते-जाते मौसी को पकड़ाता जाऊँगा—'

'अभी दूध नहीं आया भाई, मैं कब इनकारी हूँ।'

मुंदरा पत्र पढ़ने में मग्न हो गई थी।

'इतने में दूध आये—मैं ज़रा डाकखाने तक हो आऊँ।' वह अपनी ही धुन में कहता सीढ़ियाँ उतर गया।

पत्र पढ़ते-पढ़ते मुंदरा के चेहरे पर कई रंग आये और गये—उसकी बूढ़ी आँखों के झुर्रीदार पपोटे और ढीले ओंठ बार-बार फड़फड़ाते थे। वह अचानक खुशी से हाँफने लगी। सीढ़ियों की सांकल चढ़ा कर पल भर को दीवार का सहारा लिए खड़ी रही। प्रसन्नता सँभले न सँभलती थी। उसने पत्र को तह करके अंगिया में उड़स लिया और खिड़की से बाहर झाँक कर समय का अनुमान लगाना चाहा। उसे बोंघू की प्रतीक्षा भी थी।

धूप काफ़ी फैल चुकी थी। बाज़ार में इक्का-दुक्का लोग आ जा रहे थे। कौवे बेधड़क रात की गिरी चीजें खा रहे थे और यूँ ऐंठते फिरते थे जैसे उन्हीं का राज हो। दूध दही वाले की दूकान के तख्ते के नीचे एक कुतिया पाँच-छः पिल्लों को अपने आसपास फैलाये ठस्से से बैठी थी और पिल्ले नालियों, कूड़े के ढेरों को सूँघते चाटते फिरते थे। सामने बड़ी हवेली के पत्थर पर बैठी कमज़ोर बुढ़िया मक्खियाँ उड़ा रही

थी, और बुढ़िया की पालतू बिल्ली उसके पाँव पर से जाने क्या चाट रही थी।

'बोंघू हरामी अभी तक नहीं आया।' उसने क्रोधित-स्वर में कहा।

मुंदरा को आज अपने अच्छे दिनों वाला शानदार क्रोध आ रहा था।

'शैफ़े, आज बोंघू नहीं आया।' उसने पड़ोसी के नौकर को ऊँची आवाज़ से बुलाते हुए पूछा। शैफ़ा गली की नाली में पेशाब करके उठा था और अब नाड़ा बाँध रहा था।

'शायद हवेली की तरफ गया है मौसी, आता ही होगा।' शैफ़े ने अनुमान से कहा। मुंदरा उसकी बासी और सोई-सोई शक्ल देखकर बोली—

'अरे तू अब सोकर उठा है। कितना दिन चढ़ आया। बेशर्म, मालकिनों के साथ तू भी सोता रहा है।'

शैफ़ा ठहाका लगाकर हंसा—'मौसी क्या कहती हो—सोचो तो—सोचो तो मौसी—'

वह हँसे जा रहा था।

मुन्दरा को अपनी बात के अर्थ का पता जल्दी लग गया। उसने हँसी रोककर शैफ़े को डाँटा—

'चल हरामी, उल्टे-सीधे मतलब निकालता है, झगड़ा करवाना चाहता है।'

'नहीं मौसी, तुमने तो बात ऐसी की है—जानती हो, रात गये तक पान लगाता रहा, बड़े मेहमान आये थे—छोटी बीबी की नथ खुलने की रस्म होगी न कुछ दिनों में।'

वह सधे लहजे में मुन्दरा को सूचनाएँ दे रहा था कि मुन्दरा ने बालकनी की चिक छोड़ दी—'अच्छा-अच्छा—'

बोंघू गली के मोड़ पर दिखाई दे गया था।

मुन्दरा पहले ही से दरवाजा खोले खड़ी थी—

'सलाम मौसी—कैसी हो ?'

बोंधू सीढ़ियों पर कदम रखते ही सलाम ठोंक देता और हालचाल पूछता ऊपर पहुँच जाता। और मौसी जो उसके लिए क्रोध में भरी बैठी होती और सुनाने को कई कोसने तैयार किये होती, बोंधू की दूध जैसी सादा परन्तु अर्थपूर्ण मीठी-चिकनी बातों में सब कुछ भूल जाती। बोंधू अपने गाहकों के मूड से खूब परिचित था। मुन्दरा मौसी कुछ समय से चिड़चिड़ी और सख्त हो गई थी। बोंधू को आज उसके चेहरे पर दिली प्रसन्नता की झलक नज़र आई। पर वह अपने ढंग से चमकी—

'अरे बोंधू, कहाँ मर गया था।'

बोंधू तुनक कर बोला—'लो अंधेर है कि नहीं। रोज़ इसी समय तो आता हूँ। मौसी, दिन लम्बे होने लगे हैं। सुबह जल्दी हो जाती है, तुम समझती हो देर हो गई।'

मुन्दरा ने उसकी बात की तरफ ध्यान न दिया। वह कुछ और सोच रही थी। उसे केवल इतना याद था कि बोंधू को डांटना है। 'तू ही है कमीना। भला तू पहले उधर क्यों न मुँह उठाये जिधर नज़रें भी गर्म होती हैं और जेब भी—'

मुन्दरा उसे सुभद्रा के घर का ताना दे रही थी।

'वाह, मौसी, वाह। यदि मैं कहूँ कि तुमसे परायापन करूँ तो काफ़िर होकर मरूँ तो तू कहेगी मेरे सर की क़सम खा।'

बोंधू ने हिम्मत करके मुन्दरा को चिढ़ाने के लिए ज़रा बात को गोल कर दिया और दिल ही दिल में चटखारा लिया।

'मेरी जूती क़सम खिलवाये। तू है ही कौन ? अहीर, नीच, मुँह लगाया और सिर को आया।'

मुन्दरा क्रोध से अपना बर्तन उठाते हुए बोली। वह मुस्करा भी रही थी।

'जा, मैं नहीं लेती दूध, आखिर तूने समझा ही क्या है।'

बोंधू को अहसास हुआ आज मौसी का मूड कुछ और ही है, अवश्य कुछ गड़बड़ है। नहीं तो बेटी की मौत और नोचियों के भाग जाने के बाद तो वह चिड़चिड़ी और उदास-सी होकर रह गई थी। उसके क्रोध में निराशा और अविश्वास होता। पर आज का क्रोध किसी भीतरी पीड़ा से उत्पन्न हुआ न लगता था। ऐसे ही था जैसे मौसी बनने की चेष्टा कर रही हो। मुन्दरा पेशे के लिहाज़ से अधिक चालाक नहीं, उसे पता था। वह टाँगें फैला कर बैठ गया।

'मौसी, रूठती हो, नाराज़ होती हो।'

'अरे तू है क्या चीज़—नाराज़गी अपने बराबर के लोगों से होती है।' मुन्दरा गर्व से बोली।

'मौसी, क्या बात है आज। कितने समय के बाद आज इतना पालिश किया हुआ क्रोध देखा है। तुम कितनी अच्छी हो।'

वह ढीठ बनकर हँसा और ऐसे ही कहता रहा।

'अब जा भी।' मौसी सांकल की तरफ लपकते हुए बोली।

'लो हम नहीं जाते—अपनी मौसी के 'पालिश किये हुए' क्रोध की चमक हम न देखें तो कौन देखे। दूध चाहे न ले, मौसी। हम बैठे हैं। उठाना चाहो तो उठा दो।'

बोंधू दीवार के साथ पीठ लगा कर निश्चिन्तता से बैठ गया। मुन्दरा की बेचैनी की हालत ने बोंधू को उसके और निकट कर दिया था। एक बोंधू ही क्या। छोटे तबके के सभी लोग उसे चाव से मौसी कहते—और ऐसा प्यार करते थे जो बेतकल्लुफ़ी की सीमाओं में पलता रहता है। और उसका अहसास नहीं होता।

बेकार मौसी, उन्हें पास बिठाकर अच्छे वक्तों की बातें सुनाती। उसके मस्तिष्क में कितने ही चित्र थे। वह उन पर रुक-रुक कर टिप्पणी करती। उसकी आँखें जो आधी शताब्दी देख चुकी थीं, कभी सुस्ती से

मुँदती-खुलतीं, और कभी तेज़ी से—जैसे पिछले दिनों की यादें कभी मस्त कर देती हों, कभी आश्चर्य में डाल देती हों।

कभी-कभी वे उसकी बराबरी करने लगते। बातों को काटते और मज़े लेते—'बूढ़ी रंडी, बच्चों का खिलौना।' परन्तु वे कोई बड़ा मज़ाक न करते। बात कहकर दब-से जाते। उनकी अर्ध-चेतना में मुंदरा के पिछले शानदार दिन थे जब वह नवाबों जैसी न सही, जागीरदारों के बराबर की औरत थी। भरा-पुरा घर, नौकर-चाकर, वह आन-बान थी कि लोग उसके घर को देखने की इच्छा किया करते। उसने ऐसों-वैसों को कब मुँह लगाया था। अपने स्तर से नीचे के लोगों से बात करके उसके गर्व को ठेस पहुँचती थी। अपने पेशे के साथ वह पूरी तरह से बँधी थी। उसने उस वातावरण से निकलने की कभी चेष्टा न की थी। कभी इस ढंग से सोचा भी न था। उसे कभी उलझन न होती थी—सम्बल की मृत्यु के बाद उसे अपने उसूलों में परिवर्तन करने पड़े। अविश्वसनीयता ने उसे कुछ लालची भी बना दिया और सतही भी। उसका विचार था वह बेटी की मौत के बाद अधिक देर जियेगी। पर कहाँ? जमा रुपया खत्म होता गया; जीवन के दिन पूरे न हुए। और उसे वह काम भी करने पड़े जिन्हें वह घटिया मानती थी।

मुन्दरा को आयु पूरी करने के लिये ऊँचे स्थान से छलांग लगाना पड़ी।

अब हर तरह के लोग उसके आसपास थे। वह उनसे बातचीत करने में अब कतई न झिझकती थी।

वह बोंधू को क्रोध दिखाती हुई बालकनी में चली गई। उसे ऐसा लग रहा था, गुज़रा हुआ ज़माना लौट आया है। न वह दिन रहे थे, न ये रहेंगे। उसने बहुत बड़ा मूल्य अदा किया है। बची हुई पुँजी से उसने एक और ज़माना खरीदा है। इस ज़माने का ख्याल जवान आशाओं से भरा है। जीवन के शेष दिन फिर किसी ढंग से गुज़रेंगे।

'मौसी, क्रोध थूक दो न।'

बोंधू ने उसी तरह बैठे-बैठे हाथ जोड़े और कान पकड़ लिये।

मुन्दरा को हँसी आ गई। उसे यह भी ख्याल था बोंधू का यहाँ अधिक बैठना अच्छा नहीं।

'चल बेशर्म, कुत्ते की हड्डी।'

वह त्यौरी चढ़ाये हुए बोली और धीरे-धीरे कदम उठाती गई और बर्तन ले आई।

'कितना डालूँ?' बोंधू ने मौसी से बात करने की खातिर पूछा।

'सेर भर।' मुंदरा के स्वर में नर्मी थी।

'क्या करोगी सेर भर मौसी? खीर पकेगी? मैं भी आऊँ?'

'क्यों? तुम क्यों आओ?'

'तुम अकेली न खा सकोगी मौसी, मैं भला जानता नहीं—'

'चल, चटोरी के पूत, खीर कौन पका रहा है—'

मुन्दरा के मुँह से अचानक ही सच निकल गया। और कोई दूसरा बहाना सूझ भी न रहा था।

'मौसी—'

बोंधू ने मुंदरा की तरफ ध्यान से देखा। वह दूध से भीगे हुए हाथों को बालों में रगड़ रहा था।

'तुम अवश्य कुछ छिपाती हो मौसी। बता दो न, कौन आया है।'

मुंदरा को इस बीच बात बनाने की हिम्मत हो गई। उसने कह दिया—

'ज़हरा—'

'अच्छा तो ज़हरा बीबी आ रही हैं?'

बोंधू की आँखों ने पूरे घर का चक्कर लगा लिया। सम्बल के कमरे में ताला नहीं पड़ा था। खिड़कियाँ खुली थीं।

'जभी आज घर में रौनक है। अभी वे लोग आये नहीं?'

'हाँ, बस आते ही होंगे।'

मुंदरा ने संक्षिप्त उत्तर दिया। वह चाहती थी कि बोंधू चला जाये और वह आराम का साँस ले।

'मगर मौसी, जहरा बीबी का तुम्हें अब क्या लाभ हो सकता है। टाँगें उसके हैं नहीं। वह लाचार है। उसे अच्छे वक्तों में तो फूफी याद आई नहीं। अब इस घर का रास्ता कैसे सूझ गया—वाह।'

बोंधू मुंदरा से हमदर्दी जता रहा था।

'दूर हो यहाँ से, तुझे क्या। हमारा फूफी-भतीजी का मामला है। जहरा—खुदा जिंदगी दे उसे, वह अब भी किसी से कम नहीं रहेगी—'

और बोंधू, मुंदरा की बातों से बहुत परे जहरा की जवानी के बारे में सोच रहा था। सारे कटरे में उसकी धाक बैठी हुई थी। उससे अच्छा कोई न गा सकती थी। उसे देखने वाला देखता रह जाता, और जो उसे सुनता उसके कान कई दिनों तक बोला करते। शरीर में इतना कस-बल था कि वह रात-रात भर नाचती। धन-दौलत बरसता रहता। देखने वालों के दिलों में प्यार उमड़ा करता। यह बोंधू के उठती जवानी के दिन थे। जहरा को नजर भर कर देखा न जा सकता था।—फिर सम्बल भी जवान हो गई। सम्बल सुन्दर तो थी, पर जहरा—जहरा एक चिनगारी थी।

बोंधू को पिछले दिन याद आते चले गये।

जब दोनों कमाने लगीं तो पता न चल सकता था कि कौन अधिक रुपया खींच कर लाती है। जहरा सम्बल से जलती न थी, परन्तु यह भी न चाहती थी कि जान-जोखों की कमाई केवल सम्बल के नाम चढ़े। मुंदरा सम्बल की माँ थी। कभी-कभी वह बेटी का पक्ष ले लिया करती। जहरा को तब परायेपन का अहसास होता। फूफी फूफी ही थी, माँ न थी। प्यार से पाला-पोसा, परन्तु सम्बल की बराबरी न दी। जहरा के दिल में दुःख-सा रहता।

उसने एक दिन निर्णय सुना दिया कि वह जा रही है। बस किसी दूसरे बड़े शहर में जाकर नये सिरे से साख स्थापित करेगी। उसे अपनी कला और अपने पर भरोसा था। सबसे बड़ा सहारा उसे सेठ इब्राहिम का था जो उस पर जान देता था।

सेठ इब्राहिम का किसी बन्दरगाह पर भारी कारोबार था। वह लाखों करोड़ों का आदमी था। ज़हरा की तरफ़ से ज़रा-सी इच्छा देखी, साथ ले गया। समुद्र-तट पर व्यापार की क्या कमी। जाते ही धन्धा जम गया। फिर सेठ साहब का सिर पर हाथ। ज़हरा का ख्याल था कि अब तक तो वह बस भक मारती रही। वहाँ खुले स्वतन्त्र वातावरण में रहते हुए उसे किसी की चिन्ता न रही। फूफी को अपना घर दिखाने के लिए उसने कई पत्र लिखे, पैग़ाम भेजे, सैर-सपाटे के लिए बुलाया, परन्तु मुन्दरा को उस पर क्रोध था कि वह उसका कहा टाल कर चली गई। अब उसकी कमाई में से कोई चीज़ उसके लिए हराम है। उसके लिए सम्बल ही काफी थी।

बेटी के समझाने पर भी वह ज़हरा के पास जाने के लिए न मानी। सम्बल एक-दो बार वहाँ गई। वह हर बार वहाँ से इतने उपहार लाद लाती जो ज़हरा के बहुत अच्छे दिनों की गवाही देते। मुन्दरा उन्हें देख कर अधिक प्रसन्नता प्रकट न करती। उसे यूँ लगता कि ज़हरा ने उसके विश्वास को ठुकरा कर उसका अपमान किया है। अब न वह समय वापस आ सकता है, न भावनाएँ जो मुन्दरा ज़हरा के लिए रखती थी।

सम्बल मरी तो मुन्दरा ने ज़हरा को सूचना न दी। ज़हरा को लोगों से पता चला तो वह तड़पती, रोती-पीटती फूफी के पास आई, और अपने साथ चलने को कहा। मगर मुन्दरा को न जाना था, न गई। केवल इतना कहा—

'जाकर तेरे टुकड़ों पर पलूँ। ठीक है, तू जहाँ रह खुश रह—बस—'

मुन्दरा का जी उमड़ आया। वह यह सोच-सोचकर पिघली जाती थी जहरा मुँह न मोड़ती तो सम्बल मरती ही क्यों। वह इससे आयु में बड़ी थी। क्या था यदि बड़ी बहनों की तरह उसे जीवन की ऊँच-नीच में सहारा दिये रखती। बहनें तो मित्र भी होती हैं। अच्छा मित्र वही जो अच्छी राह बताये। बेचारी सम्बल ऐसे ही हराम मौत मर गई। यह कोई मरने के दिन थे उसके—'

मुन्दरा के दिल में अपनी भतीजी के लिए सख्त घृणा तो न थी, परन्तु कुछ शिकायत थी जो हठ में परिवर्तित हो गई थीं। फिर उसने हठ को उसूल बना लिया।

अब ये उसूल समय के झटके खाते कच्चे और कमजोर पड़ गये थे।—उनका तनाव उसी दिन कम हो गया था जब उसे जहरा की दुर्घटना का तार मिला। मक्खन के से नर्म शरीर वाली जहरा। कला की सी सम्पूर्ण जहरा—लाचार हो गई। हाय !

फूफी फूट-फूटकर रोई। क्रोध और घृणा आँसुओं के साथ बह गई। शाम की गाड़ी से वह जहरा के पास पहुँच गई थी।

एक बार फिर जीवन से प्यार ने उसके सामने बहुत-सी योजनाएँ रख दी थीं। एक बार फिर वह अच्छे भविष्य की आस लिए दिल ही दिल में मुस्करा रही थी।

स्वस्थ हो जाने के बाद आज जहरा का पहला पत्र मिला था। और उसमें फूफी के पास जल्दी पहुँचने की सूचना थी। मुन्दरा की प्रसन्नता दुगुनी हो गई।—आखिर तो जहरा भी मेरा खून है मैंने उसे अपने हाथों पाला-पोसा है। अब उसने मेरी आवश्यकता महसूस की है। मुझे खुद उसकी आवश्यकता है।

मुन्दरा ने धीरे-धीरे बोंघू को बताया—सेठ इब्राहीम बहुत अच्छा आदमी था। आखिर तक निभाई, किसी की चिन्ता नहीं की। तभी तो जहरा फूफी की चिन्ता नहीं करती थी। वह और अधिक जीवित रहता

तो शायद वज़ीफ़ा तय कर देता । बोंधू को यह सब बताते हुए ज़िन्दादिल सेठ की शक्ल उसके मस्तिष्क में घूम रही थी । वह बेचारा दुर्घटना में बच न सका था । ज़हरा की टाँगों पर बहुत अधिक चोट आई, परन्तु वह होश में रही । सेठ झटके से उसकी गोद में आ गिरा और मर गया । ज़हरा ने कितने दु:ख के साथ उसे बताया था कि सेठ की छाती से कोई चीज़ें ऐसे ज़ोर से टकराई कि पसली टूट कर दिल में चुभ गई । और खून नाक, कान और मुँह से बह निकला ।

जब वह हस्पताल से स्वस्थ होकर लौटी तो उसके एक टाँग न थी । शेष सब कुछ था । उसके सामान को किसी ने छुआ तक न था । बैंक में रुपया भी था और गहने और शानदार कपड़े भी । परन्तु ज़हरा का वहाँ दिल न लगा । उसे रखने वाला न रहा तो अब उसके लिए उस घर में क्या रखा था । वैसे अब भी कुछ लोग साथ निभाने की कसमें खाते थे । पर ज़हरा ने शहर छोड़ देने का निर्णय ले लिया । उसे इस अवस्था में किसी अपने की आवश्यकता थी । फूफी मुन्दरा से अधिक कौन अपना था ।

मुन्दरा ने दिल के सारे पट ज़हरा के लिए खोल दिये थे । कोई शिकायत अब उसे न थी । अपनापन जाग रहा था उसमें ।

बोंधू ने जो कुछ मुन्दरा की हमदर्दी में कहा उसे अच्छा न लगा । भला किसी को क्या कि यूँ मुँह भर-भर कर कहता फिरे कि ज़हरा लाचार है, लंगड़ी है ।

बोंधू के जाते ही वह सांकल चढ़ा कर रसोई में आ गई, और दूध गर्म करने के लिए चूल्हे पर रख दिया । सपना को बुलाने गई । तब सपना ने पूछा—

'यह कौन था ?'

'दूधवाला ।'

'कौन आ रहा है ?'

'मेरी भतीजी।'

'क्यों आ रही है ?'

'अब तुम्हें क्या बताऊँ।'

'कब आ रही है ?'

'शीघ्र ही—'

'हम कब जा रहे हैं अब्बा-मियाँ के पास ?'

'दो-चार दिन में—ज़हरा आ जाये तो—'

'नहीं—अभी चलो—मैं यहाँ नहीं रहूँगी, यहाँ बड़ी घुटन है—मेरे अब्बा पुलिस वालों से खुद बातचीत कर लेंगे। वह बहुत अच्छे आदमी हैं। वह बहुत कुछ जानते हैं। उनसे कोई बात करके तो देखे। वह इतना कुछ जानते हैं—'

मुंदरा ने महसूस किया कि सपना बोलते-बोलते चुप हो जाती है। उसमें बच्चों की-सी मासूमी है। बाप उसके लिए महत्त्वपूर्ण चीज है—उससे बड़ा कोई नहीं—उसकी सारी आशाएँ बाप से ही सम्बंधित हैं—

और सपना अब्बा की प्रशंसा करते-करते दूर निकल गई। एक और व्यक्ति भी था जो उसे बहुत अच्छा लगा था, जिसके सम्बन्ध में वह कुछ न जानती थी, जिसको वह यह बता देना चाहती थी कि उसका बाप भी किसी से कम नहीं। पर उस व्यक्ति का ख्याल कुछ इस तरह उसके मस्तिष्क में बैठ गया था जैसे कहता हो—

'अब न जाऊँगा, मैंने तुझे जीवन के महत्वपूर्ण क्षण दिये हैं, मुझसे बड़ा कोई नहीं— '

उस क्षण के पश्चात जब भी सपना ने अब्बा के व्यक्तित्व का रोब किसी पर डालना चाहा, उसे बारिश से धुला हुआ, खुले माथे वाला चेहरा याद आया, जिसके चेहरे पर दीपक की लौ काँपती थी। जिसकी आँखों की चमक उसके हृदय में फैलती पूरे शरीर को कँपा गई थी और वह दीपक की झिलमिलाती लौ के साथ-साथ झिलमिल डोलती आधी

रात तक कामों में लगी रही थी और खुश थी ।

'यह शहर है ?'

ख्यालों की दुनिया से पलट कर उसने मुंदरा से पूछा ।

'हाँ यह शहर है, बहुत बड़ा शहर, बहुत ही बड़ा शहर, तुम यहाँ रहोगी तो मैं तुम्हें सब दिखाऊँगी ।'

मुंदरा आगे-आगे चलती रसोई में चली गई । सपना उसके पीछे थी ।

'इस शहर में कैसे लोग रहते हैं ?'

'अच्छे भी और बुरे भी, तुम इनको परखना सीख जाओगी ।'

मुंदरा न चूल्हे में फूँक मारी ताकि आग तेज हो जाये ।

'बेटी, बैठ जाओ, घूँट-घूँट करके पीती जाओ ।' मुंदरा दूध का भरा हुआ प्याला तिपाई पर रखते हुए बोली । सपना अभी तक दीवार का सहारा लिये खड़ी थी, बीमार और कमजोर दिखाई देती थी वह । मुंदरा के कहने पर वह चुपचाप तिपाई पर बैठ गई और चम्मच से दूध पीने लगी । मुन्दरा ने प्लेट उसकी तरफ बढ़ाते हुए कहा—

'यह भी खाओ, तुम्हें भूख लगी है ।' सपना एक टुकड़ा काटते हुए बोली ।

'यह डबल-रोटी है ?'

'नहीं, उसका भाई-बन्द समझो ।'

'भाई-बंद ?'

'नहीं, केवल बन्द ।'

'डबल-रोटी तो मैंने खाई है—इसमें तो किशमिश भी पड़ी है ।'

बुढ़िया ने दिल ही दिल में प्रसन्न होते हुए कहा—

'यह शहर है, यहाँ की हर चीज बढ़िया है ।'

सपना ने कोई उत्तर न दिया और चुपचाप टुकड़ों को दूध में भिगो-भिगो कर खाती रही । उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे उसके शरीर में शक्ति

भर रही है, और आँखों की रोशनी बढ़ रही है। पल भर के लिये दुनिया के सारे दुःख और संदेह परे हट गये। दूध का स्वाद कितना मीठा और चिकना था। उसका दिल चाहता था, खाये और पेट भर कर खाये। वह कितने दिनों से भूखी है, उसे याद न था। उसे देहाती औरत के दिये हुए समोसे भूले न थे। उनका नमकीन करारापन अब भी याद था। फिर एक दिन किसी ने ज़बर्दस्ती उसके मुँह में कुछ डाला था। जाने क्या था? वह चीज़ खाने के बाद हर चीज़ धुँधली-धुँधली सी हो गई थी।

मुन्दरा ने देखा कि लड़की भूखी है, तो दूसरा प्याला भर कर दे दिया।

'पेट भर के खा बच्ची, तेरा अपना घर है। ज़ालिमों ने क्या हालत बना दी लड़की की।'

मुन्दरा ने सपना को बाँहों के घेरे में ले लिया। उसके दिल में मक्कारी और दया एक साथ गड्डमड्ड हो गई थी। सपना की खोई-खोई आँखों में याचना थी।

आँखें आत्मा और शरीर के दुःख का प्रतिनिधित्व करती हैं, परंतु उनकी खामोश भाषा को सब नहीं समझ सकते। सपना ने दूध खत्म किया और मुन्दरा से पूछा—

'अब मैं क्या करूँ?'

'लेट जाओ। शरीर में शक्ति आने पर बताऊँगी, तुझे क्या कुछ करना है।'

'क्या कुछ? मुझे तो घर जाना है।'

'अवश्य, अवश्य—मुझे अपने बाबा का नाम पता बता दो। मैं पहले आदमी को भेज कर मालूम करूँगी। तुम सी जवान-जहान लड़की को लेकर मारी-मारी फिरूँ, यह कहाँ की बुद्धिमता है। तुम खुद समझदार हो। हम जायें, मुझ बुढ़िया को कोई गला-घोंट कर कहीं डाल दे

और बच्ची को कहीं से कहीं खराब करते फिरे, तोबा।'

सपना अन्दर से काँप गई। पिछले दिनों अकेले में उसने मुसीबतें उठाई थीं, और अब उठाने की सामर्थ्य नहीं थी। उसने सोचा, पति के साथ चलने में समय धोखा दे जाता है तो किसी और का क्या भरोसा। हालांकि अब्बा-मियाँ ने कहा था, यह मर्द तुम्हारे जीवन का साथी है, तुम दुःख-सुख में एक-दूसरे के काम आओगे—हम क्या काम आ सके। वह इस तरह आ कर चला गया, जैसे हवा का तेज रेला किसी वृक्ष को जड़ तक हिला कर निकल जाये। मैंने कभी ऐसा हो जाने के लिए नहीं सोचा था। मैं हाथों-हाथ कहाँ से कहाँ आ गई। अब और आगे अकेले नहीं जाना चाहिये—मेरा पति जो भी था मैंने उसके साथ निबाह का इरादा कर लिया था। उसकी शक्ल ऐसी सुन्दर न थी—मैंने दिमाग़ को इस बात पर तैयार कर लिया था कि मेरी कल्पना में जितने रंग हैं उन सबको अपनी आँखों में भर कर उसको देखूँगी और इस तरह जीवन के श्रृङ्गारालय में उस कमी को पूरा कर लूँगी जिसके धुँधले आकार को पहले मेरी कल्पना ने जन्म दिया और फिर एक व्यक्ति का ख्याल बन कर मेरे हृदय में छिप कर बैठ गया।

मुन्दरा की सलाह सपना को पसंद आई और उसने धीरे से कहा—

'हाँ, ठीक है।'

'मैंने दुनिया देखी है बच्ची, तुम मुझ पर विश्वास करो, मैं भी एक माँ हूँ। मेरे भी एक तुम्हारे जैसी बच्ची थी। प्रकृति ने उसे मुझसे छीन लिया। अब तुम आ गई हो—'यह कहते-कहते मुंदरा की आँखें भीग गईं और वह चाय का प्याला फ़र्श पर रख कर पल्लू से बार-बार नाक पोंछने लगी—सपना को अब्बा-मियाँ की बात याद आकर हंसी आई। पर उसने रोक ली। वह सच ही कहते थे कि बुढ़ापे में आँसू कम आते हैं, नाक अधिक बहती है और बूढ़ा आदमी रोता हुआ ज़रा

भी सुन्दर नहीं लगता—मुन्दरा को देखकर उसका जी चाहा कि वह भी रोये और सबको याद करे। उसके पास बेहिसाब आँसू हैं और याद आने वाले भी कम नहीं। इस क्षण उसे मुन्दरा बहुत मासूम और प्यारी लगी। उसने अपने दिल में फैसला कर लिया कि वह कोई दूसरा रास्ता निकलने तक उसके पास रहेगी। यह बेसहारा होने से बेहतर है। बेचारी बुढ़िया बेटी की मौत के बाद कितनी अकेली और उदास है। अब्बा-मियाँ यदि मुझे आकर ले जायें तो मैं इसे कहूँगी कि मेरे साथ चले। यहाँ रह कर क्या करेगी। मैं इसे अम्मा कहा करूँगी। सपना के दिल में प्यार ने सिर उठाया तो वह बोली—

'यदि अब्बा-मियाँ मुझे ले जायें तो तुम मेरे साथ चलोगी न ?'

'क्यों ?'

'यहाँ पर क्या रखा है ? तुम कहती हो मैं तुम्हारी बेटी की तरह हूँ। हम मिल कर रहेंगे। तुम यहाँ अकेली हो न ?'

'और यदि तुम्हारे अब्बा-मियाँ न मिले तो तुम यहाँ रहोगी न ? मेरे पास।'

'हाँ।'

'पक्का वादा।'

'पक्का।' सपना ने सोच में डूबे-डूबे कहा।

'तो आज से मैं तुम्हें सम्बल कहूँगी। मेरी बेटी का नाम सम्बल था।'

'परन्तु मुझे अपने नाम से बहुत प्यार है।'

'सम्बल भी तो प्यारा नाम है। फिर आसानी भी इसी में है। तुम्हें क्या फर्क पड़ेगा !'

'फर्क ? फर्क तो पड़ जाता है।' सपना ने कहा।

उस समय मुन्दरा ने सोचा लड़की केवल नाम बदलने में आना-क़ानी कर रही है। परन्तु चरित्र बदलना कितना कठिन रहेगा। वह

क्यों कर बदलेगी—वह सीप में मोती की तरह पवित्र है। अपनी चमक-दमक से बेखबर—हम उसे उसकी क़दर-कीमत का हिसाब लगा कर बतायें तो उसकी दुनिया ही बदल जायेगी। हम उसे वह आईना दिखायेंगे जिससे उसकी सुन्दरता खुद उसे हैरान कर दे। जहरा बड़ी होशियार है, वह सारे काम ढंग से कर लेगी। बन्द कली ने अभी आँख नहीं खोली। आँख खुलते ही उसे अहसास हो जायेगा कि उसकी खुशबू ने वातावरण को कितनी दूर तक और किस हद तक सुगन्धित कर दिया है, और वह एक ऐसा बिन्दु है जिसके चारों ओर दुनिया घूमती है।

मुंदरा के कहने पर सपना रसोईघर से उठकर चली गई। पिछली रात वाले कमरे में पलंग पर लेट कर उसने आसपास ध्यान से देखना चाहा। दीवारों पर कई तस्वीरें लगी थीं। कमरे के बीच में छोटा-सा फ़ानूस लटक रहा था। चीज़ों में धूल की हल्की तह से पता चलता था कि इस कमरे को कम इस्तेमाल किया जाता है। कारनिश पर पीतल और काँच की सुन्दर चीज़ें पड़ी थीं। अभी थोड़ी देर पहले मुंदरा ने उनकी तरफ संकेत किया था। कमरे की चीज़ों में से उसने एक चीज़ को पहचान लिया—यह तानपूरा था।

हूँ—यह अम्मा के तानपूरे जैसा है। निश्चित रूप में यहाँ कोई संगीत का रसिया रहता होगा—सपना का दिल खुशी से धड़का और नज़रें एक तस्वीर पर टिक गईं। यह जवान औरत सम्बल होगी, अच्छी शक्ल है। दूसरी तस्वीर में वह दो-तीन औरतों के बीच बैठी है। इनमें से एक मुंदरा है, शेष कौन हैं? कौन होंगी। और यहाँ सम्बल, किस मर्द के साथ खड़ी है। उसका जी चाहा अभी जाकर मुंदरा से पूछे, यह कौन है?

यह कौन है?—सम्बल का पति? इसकी शक्ल मेरे दिल में बसी हुई तस्वीर के साथ बहुत मिलती-जुलती है। वैसी ही आँखें, और माथा, और कपड़े—और—यह सम्बल है—और यह वह है—आज से मैं भी

तो सम्बल हूँ—यह मैं हूँ, यह वह है—हम दोनों साथ-साथ खड़े हैं। वह मुस्कराते हुए मेरे कंधे को पकड़े कहीं दूर देख रहा है। क्या देख रहा है। कहाँ देख रहा है? अरे, ये तस्वीरें किस तरह बनाई जाती हैं? तेज़ दौड़ती हुई ज़िन्दगी में से एक क्षण चुराकर काग़ज में क़ैद कर दिया जाता है और यह क्षण अमिट हो जाता है। समय इसको न बूढ़ा कर सकता है, न बदल सकता है।

वह सोचती चली गई। मुन्दरा ने कमरे में प्रवेश किया—

'ओह बच्ची, तुम तस्वीरें देख रही हो? यह मेरी सम्बल है—" उसने फ्रेम के ऊपर उँगली रख दी।

'और यह शोकल है कम्बख्त—'

सपना का दिल दुख गया। भला मुन्दरा ने गाली क्यों दी।

'यह शोकल कौन है?'

'था कोई नामुराद—सम्बल ने उसे ऐसे ही मुँह लगा लिया —मेरी बेटी को ले मरा!

'हैं! मर गया।'

'मर-खप ही गया होगा, क्योंकि सम्बल की मौत के बाद उसे यहाँ कहीं नहीं देखा।'

सपना जी ही जी में दुआ कर रही थी, ऐसा नहीं होना चाहिए, उसे मरना नहीं चाहिये। तस्वीर को ध्यान से देखा तो उसे ख्याल हुआ कि शोकल का चेहरा कुछ लम्बूतरा है और नीचे का जबड़ा चौड़ा होने के कारण मुस्कराहट में काफी अन्तर पड़ गया है। सर का झुकाव वैसा नहीं। कलमें बढ़ी हुई और गर्दन तक बाल—संयुक्त प्रभाव वही है, या मेरी नज़रें धोखा खाने की आदी हो गई हैं। दुनिया में चेहरे मिल जाते हैं, इन्सान नहीं मिलते। यह शहर है, इसमें हज़ारों लोग बसते हैं। वह भी यहीं कहीं होगा, शायद मिल जाये—शायद मिल जाये। वह गुमसुम बैठी रही। मुंदरा बोली—

'लड़की, तू इतना सोचती क्यों है ?'

'पता नहीं—अकेलेपन ने सोचने की आदत डाल दी है।'

फिर सपना ने उसे अपने संबन्ध में, अपने घर और माँ-बाप के बारे में सब कुछ विस्तार से बताया, और यह भी कि उसकी शादी हो गई थी। पहले फेरे पति के साथ जा रही थी कि मुसाफिरखाने में वह एक-दूसरे से बिछुड़ गये, वह उसकी वापसी की प्रतीक्षा करती रही, परन्तु उसके कानों ने सुना कि वह विधवा हो गई है। उसके बाद जो कुछ हुआ और जितना उसे याद था उसने सुनाया। अपने संदेह भी प्रकट किये। मुन्दरा खुश थी कि लड़की ने खुलकर बात तो की। उसके लिए लाभदायक और प्यारी चीज़ पर्दे के बाहर आ रही थी। वह उसके सिर पर हाथ फेरते हुए नर्मी से बोली—

'मैं कल ही किसी को तुम्हारे घर भेजूँगी।'

'हम उसके साथ क्यों न चलें ?'

'किसी का क्या भरोसा।'

'ठीक है।'

सपना आश्वस्त होकर लेट गई।

□□

जहरा के आने में एक दिन शेष था। मुंदरा ने सपना को तसल्लियाँ देते और बीती बातें सुनाते तीन दिन गुज़ार दिये। पूना की तलाश में जिस व्यक्ति को भेजा वह ख़बर लेकर क्या आता, खुद ही वापस न आया। मुन्दरा कहती थी—

'बच्ची कौन किसी के काम आता है।'

इस वातावरण में तीन दिन गुज़ारने के बाद सपना को अहसास हुआ कि लोग मुन्दरा को मौसी कहकर पुकारते हैं और उसके साथ हमदर्दी रखते हैं। उसने भी उसे मौसी कह कर पुकारना शुरू कर दिया। जाने उसे अम्मा कह कर पुकारने की हिम्मत वह क्यों न कर सकी। मुन्दरा को भी कोई ऐतराज न था। उसे केवल लड़की में दिलचस्पी थी जो हर दिन बढ़ती जा रही थी। वह सपना को हर समय बातों में लगाये रखती। बालकनी की तरफ जाकर बाहर झाँकने की उसे आज्ञा न थी। खुले वातावरण में पली हुई लड़की को क़ैद का बेहद अहसास था और आज़ादी की आस की डोरी किसी प्रकार टूटती न थी। फिर भी नये और अजीब वातावरण ने उसका ध्यान बटा लिया था। वह घर के काम काज में मुंदरा का हाथ बटाती। यहाँ की हर चीज उसके लिए नई और अनोखी थी। उसका सारा दिन आश्चर्य करते गुज़र जाता। एक मुन्दरा का नाम ही क्या कम अजीब था। शाम को सोने से पहले सपना ने पूछने की हिम्मत की—

'मौसी, तुम्हारा नाम मुन्दरा क्यों है।'

'मन्दिर से मुन्दरा बन गया।'

'मन्दिर क्या होता है? ओह हाँ, मुझे पता है मन्दिर में कुन्ती का भगवान रहता था, कुन्ती हिन्दू थी, वह मेरी सहेली थी। मैंने तुम्हें बताया था। मौसी, तुम हिन्दू हो?'

'नहीं।'

'फिर तुम्हारा नाम मुन्दरा क्यों है?'

'लो बताओ भला, नामों से क्या होता है? मैं तो इतना जानती हूँ कि सबको पैदा करने वाला पालनहार एक ही है, उसी को सब मानते हैं।'

सपना ने बात आगे बढ़ाई—

'हाँ मौसी, अब्बा-मियाँ कहा करते थे, सबको उसी की तलाश और

आस है। उस आस और तलाश के ढंग विभिन्न हैं। यही ढंग मज़हब हैं। जिस ढंग से तलाश को शान्ति मिली, वहीं से एक नये मज़हब ने जन्म लिया। असली चीज़ तो शान्ति है और शान्ति ही शायद खुदा है। यह मैंने एक पुस्तक में पढ़ा था मौसी। तुम सच कहती हो, नाम से क्या अन्तर पड़ता है।'

मुंदरा ने सपना को अपने में दिलचस्पी लेते देखा तो अपनी कहानी कहने लगी—

'बच्ची, मैं बड़ी आस-मुराद की औलाद हूँ। तुम जानो बच्चा न हो तो नस्ल कैसे बढ़े। नस्ल बढ़ाने की इच्छा सब में है। मेरी माँ बड़ी पर्दे वाली और सीधी-साधी औरत थी। और बाप, तुम जानो, मर्द, मर्द ही होता है। मेरी माँ को मुँह न लगाता था। ज़िद्द हो गई थी कि उसके औलाद नहीं होती। वह गरीब इतनी सुघड़, सुन्दर और कहना मानने वाली थी कि ननदें उसपर जान देती थीं।'

मुन्दरा ने आह भरी—

'काश वह मेरी जवानी तक जीवित रहती। मैं उसकी जी भरकर सेवा करती। हाँ तो, मेरा बाप उसे हर समय निकाल बाहर फेंकने की धमकियाँ देता रहता। बहनों का डर न होता तो शायद ऐसा कर गुज़रता। मेरी फूफियाँ जानती थीं कि कटरे वालों के लिए बहू ब्याह कर लाना कोई आसान बात नहीं। किसी नोची आवारा को बहू बनाकर घर में डाल दें तो वह रहेगी ? तोबा करो। इसीलिए शरीफ़ खून देखना पड़ता है। बेशक भूखों मरते बाप की बेटी हो परन्तु स्वभाव की ठंडी और गाय-सी सहनशील हो। मेरी माँ सचमुच गाय थी। ऐसी कहना मानने वाली कि क्या मजाल किसी दूसरे ने उसका पल्लू भी देखा हो। वह ननदों की बड़ी प्यारी थी। उन्होंने उसके बहुत से इलाज करवाये। संन्यासी, हकीम, डाक्टर, पीर, फ़कीर—किस-किस की दी हुई खाक न फाँकी पर मौला के दिल में दया न उभरी। मौलवियों के तावीज़-गंडों

का भी कोई प्रभाव न हुआ। मेरे मौला की जैसा इच्छा होती है वह वैसा करता है—मेरी बड़ी फूफी का जानने वाला कोई हिन्दू था बस वही काम आया।'—मुन्दरा को अपनी कहानी सुनाने में मजा मिल रहा था, वह उठी, कल्ले में पान का बीड़ा दबाया, और चूना चाटकर चुप बैठ गई। सपना चाह रही थी कि आगे सुने, फिर क्या हुआ। कहानी जैसी-कैसी भी थी, परन्तु मुंदरा को सुनाने का ढंग आता था।

'फिर क्या हुआ ?' सपना ने पूछा।

'क्या होना था ? फूफी को उस हिन्दू ने बताया कि शहर के सबसे बड़े मन्दिर का पुरोहित एक मंत्र फूँकता है, उसे देखना चाहिए, परन्तु इसके लिए उसके पास जाना पड़ेगा, मन्त्र का प्रभाव बाहर नहीं होता।'

'तो फिर गई अम्मा ?' सपना ने कहा।

'यही तो सख्त वक्त था हिन्दू भला हमें घुसने देते मन्दिर में। फूफी बेचारी परेशान थी। कोई रास्ता नजर नहीं आता था। आखिर किसी न किसी तरह अम्मा को पहुँचा दिया गया।'

'कैसे ?'

'लड़की, खुदा के घर को कई चोर रास्ते भी जाते हैं।'

'अच्छा !'

सपना हैरान थी और उसका मस्तिष्क चोर रास्तों के संबंध में सोच रहा था। मुंदरा कहती गई—

'हाँ तो अम्मा बड़े विश्वास के साथ सप्ताह में दो बार मन्दिर में जाने लगीं। फूफी-अम्मा का कहना है कि दिनों के अन्दर-अन्दर अम्मा का कुम्हलाया हुआ रूप निखरने लगा और फूल की तरह खुश रहने लगी। आशा बँधते ही घर में भी रौनक रहने लगी। जब मैं पैदा हुई तो धन-दौलत लुटाई गई। लोग पुरोहित को मान गये। फूफियों ने मेरा नाम मुन्दरा रखा कि मैं उसी के कारण पैदा हुई—'उसकी देन को राहें

अनोखी हैं बच्ची।'

सपना का मस्तिष्क 'मन्दिर' शब्द से होता हुआ कुन्ती की तरफ़ फिर गया। उसके माँ-बाप का ध्यान आया। वह मुन्दरा को देखते हुए सोच रही थी कि उसकी शक्ल में कुन्ती के खानदान की परछाईं सी नज़र आती है। न मालूम मैं ऐसा क्यों महसूस करती हूँ।

मुन्दरा की राम-कहानी जारी रही। सपना का मस्तिष्क उड़ान भरते-भरते थक गया। मुन्दरा देखी हुई बातें कह रही थी। सपना को मस्तिष्क के पर्दे पर उनकी शक्लें बनाना, उभारना और फिर देखना—ज़हरा कैसी होगी? यहाँ आकर वह रुक गई। मुन्दरा ने जब उसे आवाज दी तो वह सो चुकी थी। बाहर तमाम बाजार जाग रहा था। मुन्दरा बत्ती बुझा कर देर तक बालकनी में खड़ी इधर-उधर झाँक रही थी। उसे नींद न आ रही थी।

□□

जहरा के दिल में जो कुछ भी हो, परन्तु वह पूरे घर के लिए एक नया पैग़ाम, एक नयी जिन्दगी ले आई। वह खुद चल-फिर न सकती थी, परन्तु उसके आने से वातावरण में एक हलचल और धड़कन पैदा हो गई। घर का कारखाना चल निकला। हर कोना भरा-पुरा नजर आने लगा। लोगों के सलाम और प्याम पहले की तरह जारी हो गये। मुन्दरा संतुष्ट थी, सपना की तरफ से भी उसे कोई चिन्ता न थी—यह लड़की सारा दिन जहरा के घुटने से लगी यूँ बैठी रहती है, दीन-धर्म, माई-बाप, सब आपा जहरा ही है। जहरा ने दुनिया देखी थी, और बक़ौल मुन्दरा वह बड़ों-बड़ों को मुँह न लगाती, परन्तु सपना को गोद में ले-लेकर प्यार

करती है । लाचार होने से जहरा को 'प्रेम' सौंप दिया था, जैसे कोई सुन्दर पक्षी पिंजरे में क़ैद मीठी-मीठी बोलियों से दिल लुभाता जाये ।

संगीत की देवी, आपा जहरा के गले में आसन जमाये बैठी थी ।

सपना का दिल जहरा के लिए हर समय पसीजता रहता और वह दबे स्वर में कहती—

'अल्ला-मियाँ, तू कितना अजीब है ।'

जहरा को भी उसका कम ख्याल न था । शौक़ और प्रेम से सपना को रखती थी । वैसे जवानी को नचाना-गवाना कोई कठिन काम नहीं । वह तो खुद नाचती-गाती, मचलती, मटकती आती है । लाख बन्धनों के बावजूद पाँव दिल की ताल का साथ देने के लिए बेचैन रहते हैं, और जी चाहता है गा-गाकर पिघल जाये । सपना खुद बड़े शौक़ से सीख रही थी । सब कुछ क्या खूब था । इतना कुछ न उसने कभी सोचा था न चाहा था । कैसे चाह सकती थी जबकि कभी देखा ही न था । कहीं अब्बा भी यहाँ आ जायें तो कितना मजा रहे—वह दिल ही दिल में सोचती । कई बार उसने जहरा से जिक्र किया । परन्तु वह हमेशा चालाकी से टाल गई ।

सपना ज़हरा का दर्द महसूस करते हुए पूछती—

'अच्छी आपा, तुम्हें दुःख तो होता होगा ।'

जहरा कड़वी हँसी के साथ कहती—

'दुःख से जीवन में मजा पैदा होता है, और जीवन नाच और गाना है । गाओ, नाचो—नाचो, गाओ—यहाँ तक कि जीवन खत्म हो जाये परन्तु मजा बाकी रह जाये ।'

ऐसी बातें सुनकर सपना का दिल भर आता । उसके राग के सुर प्रसन्नता से अपनी सही दिशा की तरफ बढ़ने लगते । तब ज़हरा कहती—

'हाँ अब ठीक है ।'

काम में व्यस्त मुन्दरा दूर से पुकारती—

'ए बच्ची, बेसुरी जा रही हो।'

'फूफी, ठीक है, चलने दो। लोग रस के रसिया हैं, न कि राग के। तुम पुराने उसूलों में उलझी हो। ज़माना आगे जा रहा है।'

ज़हरा हमेशा सपना को नये-पुराने की ऊँच-नीच बताती और उसका हौसला बढ़ाती। सपना लगन से गाती और नाचती। उसे अपना कलेजा हल्का-हल्का और शरीर उड़ता हुआ मालूम होता। गा चुकने के बाद कुछ ऐसी हालत होती जैसे उसने कोई भयानक रहस्य उगल डाला हो जो उसे तंग किये रखता था, या राग की गर्मी ने वह कुहरा उढ़ा दिया हो जो उसके मन में छाया उसे ठंडे अंधेरे में मारे दे रहा था। उसके शरीर में एक नई गर्मी दौड़ने लगती। यह गर्मी जवानी की गर्मी में प्रवेश करती तो नये वातावरण की नई जवान उमंगों में झूलने लगती। ज़हरा का व्यवहार उसके साथ बड़ी बहनों का सा था, वैसे वह अनुचित लाड़-प्यार न करती थी, परन्तु सपना जब सोना चाहती सो जाती। जब तक वह खुद न जागे कोई उसे जगाता न था। उसने जो चाहा उसे दिया गया। जो गँवा दिया किसी ने पूछा नहीं। सब लोग उसे इतना चाहते थे कि कभी-कभी वह इसी इतने अधिक चाहे जाने से थक जाती। सपना का रूप दिन पर दिन निखर रहा था। इस से वह खुद भी परिचित थी।

दोपहर का समय था। कमरे में पड़े हुए सिंगार-मेज़ के बड़े आइने में उसने अपने-आप को ध्यान से देखा, और उसका दिल चाहा कि वह अपने ऊपर कुर्बान हो जाये। अपने-आप को देखने में कितना मज़ा था—

'हाय, में कितनी अच्छी लग रही हूँ।'

उसके मुँह से अचानक निकला और वह भागती कई चीज़ों से टकराती जहरा के पास पहुँची—वह इस समय कोई पुस्तक देख रही थी।

'हाय आपा, देखो न, यह पहनावा मेरे कोई जँचता है? ऊँहूँ,

ऐसे ही मुझे दे दिया।'

उसने जहरा की राय लेने के लिये दूसरे ढंग से कहा।

'अरे।'

जहरा ने आँखें मलते हुए बात सुनी अनसुनी कर दी। सपना रूठने के ढंग में बोली—

'देखो न।'

'ओह, तुम्हारी सजधज तो चुँधियाये दे रही है।'

जहरा पुस्तक एक तरफ रखती उठ कर बैठ गई। प्रसन्नता से सपना का सारा शरीर काँप रहा था। वह यही सुनने तो आई थी। वह बेतहाशा हँसते-हँसते जहरा की गोद में लगभग गिर गई।

'हाँ गले तो मिल ले इस खुशी में।' जहरा ने उसे लिपटाते हुए कहा।

'इस लिपटने में वह गर्मी कहाँ मेरी जान, तेरे शरीर की बेचैनी ने तुझे अत्यधिक सुन्दर बना दिया है।'

'आपा, सच बताओ, यह कपड़े अच्छे नहीं लगे तो मैं कभी न पहनूँगी।'

अपनी प्रशंसा का नशा बड़ा अनोखा था। सपना उससे अधिक से अधिक प्रसन्न होना चाहती थी।

'सच नहीं तो क्या मैं झूठ बोलती हूँ? तुम अच्छी लग रही हो और बहुत अच्छी लग रही हो। जाओ आईने से पूछ लो।'

'आईना झूठ कहता है।'

सपना शर्मा रही थी।

'आपा, आईने में अपने-आप को देख कर क्या हो जाता है? वह झूठ बोलता है न।'

जहरा ने मुस्करा कर कहा—

'यह झूठ जवानी का दूसरा नाम है।'

फिर उसने ज़ोर का ठहाका लगाया और सपना को प्यार करते हुए कहा—

'समझी, तू क्या चाहती है ? तुम चाहती हो तुम्हें कोई और देखे—कोई दूसरा ।'

ज़हरा ने उसके दिल के किसी कोने में पड़ी हुई बात कुरेद निकाली थी । सपना अब वहाँ रुक न सकती थी । वह गुलाबी चेहरा लिये अपने कमरे में चली गई । दरवाजा बन्द कर लिया—मैं चाहती हूँ मुझे कोई और देखे—ओह, हाँ मैं चाहती हूँ, अवश्य चाहती हूँ—कोई देखे प्यार से देखे । वह बिस्तर पर औंधे मुँह पड़ी सोचती और बोलती रही—आपा मुझे देखती है, मौसी देखती है, बोंधू देखता है, गोरा, नत्थू, माली, आईना—सभी देखते हैं । ये सब आईने हैं । सब झूठे हैं । कोई ठीक नहीं । यह आईनाघर मुझे पागल किये दे रहा है ।

वह अपनी प्रशंसा सुनने के शौक में गई थी । अब अपने हाथों बेबस और निढाल होती जाती थी । उसने दांतों से अपने ओठों को कई बार काटा और बिसूरती रही—काश कोई मुझे देखे, महसूस करे और चाहे—वह करवटें बदलती रही नगर नींद नहीं आई—ज़हरा अपने कमरे में कुछ गुनगुनाने लगी थी । सपना उठी और ज़हरा के पास चली गई । ज़हरा छत की तरफ देखती न जाने क्या सोच रही थी । उसने सपना के आने पर ध्यान न दिया । सपना से रहा न गया और उसने पूछा—

'आपा, तुम्हें कुछ याद आ रहा है, समझी—सेठजी याद आते होंगे ।' बेतकल्लुफ़ होने की हिम्मत करते हुए उसे ख्याल आया—कहीं ज़हरा बुरा न मान जाये । फिर बात बदल कर कहा—

'आपा, आप अभी क्या गुनगुना रही थीं । चुप क्यों हो गईं ?'

'तुमने पहले क्या पूछा था कि मुझे कुछ याद आ रहा है ।'

ज़हरा के स्वर में कुछ तलख़ी थी—

'लड़की, देख, हमारे पास कोई याद नहीं होती ।'

पर बिजली बन कर गिरो और याद की तरह सीनों के साथ चिपकी रहो।'

गाव-तकिये के सहारे अधलेटी जहरा सपना को पते की बातें बताती कभी उसका कंधा सहलाती, कभी उसकी पतली नाज़ुक उँगलियों के साथ खेलने लगती। उसके चेहरे पर तजुरबे संजीदगी का रूप धरे बैठे थे। वह आँखों को इस ढंग से खोलती, बन्द करती जैसे हवा खिड़कियों के पर्दों को उठाये, कोई अन्दर झाँकने न पाये और पर्दे गिर जायें—जाने अंदर क्या कुछ था। वहाँ के निवासी कौन और कैसे थे?

'सच है आपा, आप बिल्कुल ठीक कहती हैं।'

सपना ने वातावरण की पुरतकल्लुफ़ भाषा सीख ली थी। रहने-सहने के ढंग निराले और दिलचस्प थे। सलीक़ा, रख-रखाव, अदब, रौब और क्रोध उसे सब मालूम थे। जहरा उसकी इन बातों से बहुत प्रसन्न थी। वह उसे प्यार से मोम की गुड़िया कह कर बुलाती। सपना को नये नाम के अर्थ से मतलब नहीं था। जब भी उसे कोई नाम से पुकारता उसका दिल प्रसन्नता के जोश से भर जाता। उसे अपने पर गर्व था कि वह इस घर की इकलौती, चहेती और प्यारी बेटी है।

'आपा, तुम भूल जाने के लिये कहती हो—धीरे-धीरे भूल जाऊँगी। कितना तो भूल भी चुकी—'

जहरा ने हँसते हुए कहा—'परन्तु कई क्षण बहुत ढीठ होते हैं। पिछले दिनों की कब्र से कभी-कभी झाँकने लगते हैं। क़ब्र में दफन बाकी सारी यादों को कुतर-कुतर कर खा जाते हैं। प्रमाणों की मिट्टी से उनके छेद सौ बार बन्द करो, यह फिर रास्ता खोल लेते हैं और झाँक-झाँक कर हमें परेशान करते रहते हैं—हाँ पूछो, तुम सेठ जी का पूछ, रही थीं।'

'हाँ आपा—'

सपना कितनी पहले से चाह रही थी कि आपा अपनी दुःख भरी

कथा कहें। वह अब तक उसके लिए एक पहेली थी। उसकी आँखों में ज़हरा कभी बहुत महान् हो जाती और कभी बहुत छोटी। वह खुल कर बात ही न करती थी। वह सपना को कहानी की तरह रहस्यमय और दिलचस्प नज़र आती थी। उसने अपने पर एक उलझाव के पर्दे को डाले रखा। आज पता नहीं क्यों वह खुद ही सुनाने और कहने के लिए तैयार लगती थी—

'सेठ साहब। हाँ, सेठ साहब बहुत अच्छे आदमी थे। उनमें कई खूबियाँ थीं जिन को एक औरत पसंद करती है। विशेषकर मुझ जैसी औरत। मैं शुरू से ही मुश्किल बनी रही हूँ, अपनी हठधर्मी के हाथों कई बार हानि उठाई है।'

कहते-कहते ज़हरा की आँखों में यादें बिखरने लगीं।

सपना ने उसकी आँखों में लाली दौड़ती देखी तो कहा—

'अच्छी आपा, तुम सेठ साहब से—मेरा मतलब है आप उनको चाहती थीं न ?'

'पता नहीं—परन्तु मैंने कई बार सोचा, यदि उसके बीवियाँ और बच्चे न होते तो मैं अवश्य उनके घर बैठ जाती, और मैं विश्वास से कहती हूँ, इतना अच्छा आदमी मेरे जीवन में कभी नहीं आया—और अब—'

ज़हरा चुप थी। वह एकदम उदास हो गई थी। ज़हरा के व्यक्तित्व पर पड़े हुए भारी पर्दे उठने लगे। इन पर्दों के पीछे से कभी औरत की शक्ल नज़र आती कभी वेश्या की। कुछ देर बाद वह फिर बोली—

'सपना, हम शादियाँ करके बैठ जायें तो गृहस्थिन का स्थान बहुत गिर जाये, उसका मान कम हो जाये। आखिर किसके मुकाबले में वह गृहस्थिन और पवित्र कहलाती है ? हमारे मुकाबले में। हर उन्नति के लिए मुक़ाबले की आवश्यकता होती है। हम उनके साथ शर्त बाँध कर जीवन की दौड़ दौड़ते हैं। वह नाम कमाती हैं और हम पैसा। कुछ भी

हो इनसान उसी चीज़ के लिए तरसता है जो उसके पास न हो—खैर छोड़ो इन बातों को, धीरे-धीरे समझ जाओगी—तुम्हारी छवि कितनी अच्छी है। और मैं तुम्हें बहुत सी फ़ायदे की और काम की बातें सिखाना चाहती हूँ, आशा है तुम उन से सहमत होगी—'

सपना सहमत कैसे न होती। वह उस वातावरण में आ गई थी जहाँ हुस्न और इश्क था, खुशियाँ और ठहाके थे, पायल की मस्त कर देने वाली झंकार और जादू कर देने वाले गीत—यहाँ शाम के धुँधलकों के साथ सुगंधियाँ फैलती चली जाती थीं। आँखों के मेले, बालकनियाँ और खिड़कियों से झाँकती मुस्कराती जवानियाँ—यह सब कुछ जंगल में तो न था। वहाँ चुप्पी का डेरा था। चुप्पी सोचने पर विवश करती रहती थी। जीवन एक स्वप्न का नाम था, यहाँ वह व्यवहार में आ गई। अब वह नित जामे बदलती थी। नये जामे के सुन्दर रंगों ने सपना को लुभाया, परन्तु यह कमख़ाब का पहनावा कितना भारी और बोझिल होता है उसे पता न था। उसकी तलवार की धार जैसी तेज़ सिलवटें अंदर ही अंदर काटती रहती हैं। देखने वाले को पता नहीं चलता। पहनने वाला जानता है कि ज़ख्म रहने लगे हैं और जीवन उनके रास्ते बहा जाता है। जगल के पर्दे में रहने वाली अल्हड़ लड़की यहाँ की चमक-दमक में चुँधियाई फिरती थी। दिल पर आशा या निराशा की परछाई ज़रा भी पड़ती तो मुन्दरा और ज़हरा तुरन्त रोशनी दिखातीं। सपना उनकी मीठी मीठी बातों में बहल गई। उसे विश्वास था कि और कोई नहीं, ये लोग तो उसके अपने हैं। वह यहीं रहेगी। वह कहाँ जाये। अब्बा मियाँ का आज तक पता न चला। ज़हरा आपा और मौसी से उसे कोई शिकायत नहीं। फिर कभी-कभी दिल क्यों उड़ने लगता है? बस बैठे-बैठे जी चाहता है यहाँ से भाग जाये।

ज़हरा की कुछ बातें उसने ध्यान से सुनीं, बीच-बीच में उसका ध्यान इधर-उधर भटकता रहा। उसे परसों का सबक़ खूब याद था। दिल ही

दिल में दोहराने के बाद ज़हरा से कहा—

'आपा, मुझे उस्तादजी जो भी बताते हैं तुरन्त याद हो जाता है।'

ज़हरा ने सपना का चेहरा हाथों में ले कर प्यार से झुलाया और छोड़ दिया।

'यह अच्छी बात है। चार बजने को हैं। उस्तादजी आते ही होंगे—अधिक सीखने और आगे जाने की विशेष आवश्यकता नहीं। गजल पर परिश्रम करो। लोग इस पर जान देते हैं। बहुत हुआ तो दादरे, ठुमरी की फरमाइश करेंगे। इसके चाहने वाले भी कम होते जा रहे हैं। लोग पहले तो राग की आत्मा को समझते और पहचानते थे, परन्तु अब नहीं। अब तो सारा काम ही आसान हो गया है।'

मन ही मन में सपना ने जहरा की तुलना अपने अब्बा-मियाँ से की—अधिक बोलने वाली है, बोलने पर आये तो यह नहीं सोचती कि कोई सुन भी रहा है या नहीं।

जुलाई की शाम के अभी चार बजे थे। उस्ताद जी की प्रतीक्षा में में वह तीन बजे ही तैयार हो कर बैठ गई थी। हालांकि महफ़िल छः बजे के बाद दिन ढले जमना शुरू होती थी। तीन साढ़े तीन मास के अरसे ने उसे उस वातावरण में इस तरह जड़ दिया था जैसे लकड़ी में कील। प्रकृति के हाथों ने उसे अनोखी भूमि पर ला पटका था जहाँ की जलवायु बोझिल परन्तु नशीली थी। सपना औरत थी—औरत के बीज में प्रकृति ने पता नहीं कौन सी चीज शामिल कर दी है कि वह हर भूमि में जड़ें पकड़ लेती है। कभी-कभी उसे खुद आश्चर्य होता है। औरत की आत्मा में इतनी सहन-शक्ति होती है कि जख्म तक मद्धम हो जाते हैं। कुछ चिह्न रह भी जायें तो वह उनको विश्वास के साथ सीने से लगाये रखती है कि दूसरों को संदेह नहीं हो पाता।

सपना का अपने पिछले दिन भूले न थे। उसके हृदय में बड़ी मासूम और प्यारी यादें जमा थीं, परन्तु वह किसी को सुनाती न थी, उन्हें कभी

दुहराती न थी, कि वातावरण अनुकूल न था।

अभी दिन और रातें उसकी अपनी थीं। केवल शामों का सौदा हुआ था। वह शाम की प्रतीक्षा बेचैनी से करती थी। शाम का समय उसके शरीर के आनन्द का समय होता था, जब शरीर का एक-एक भाग समय के बहलावे में आ जाता। आत्मा साथ-साथ चलती जैसे दोनों एक धारे पर नाच करते हों। पल भर के लिये उसे सब कुछ भूल जाता और सारी दुनिया पाँव के नीचे आ जाती।

आपा जहरा की घड़ी की सुइयाँ बहुत सुस्त रफतार से चल रही थीं। वह उकता कर एक बार फिर अपने कमरे में आ गई। समय गुजरता न था। उसने दरवाजे बंद कर लिये और देर तक आईने के सामने नाचने का अभ्यास करती रही। नाज गत, जादू गत, मुकट गत, हुस्न गत, परी गत और जाने कौन-कौन से कोण उसे बनाने पड़ते। आईने में अपनी हर अदा उसे भली लगी। उसका जी चाहा बढ़े और अपनी परछाईं को चूम ले। उसके होंठ कितने जानदार हैं—उसने सचमुच उन्हें चूम लिया और देर तक चूमती रही। फिर अपने दहकते गाल आईने की सतह पर रख दिये और माथा रगड़ती रही। आईना सख्त और ठंडा था। उसके शरीर ने फुरेरी ली और तब उसे पता चला कि कपड़े पसीने में भीग चुके हैं। कमरे में घुटन है और दिल बुरी तरह धड़क रहा हैं। उसने लपककर दरवाजा खोल दिया और पंखा झलने लगी। साये मुँडेरों तक पहुँच चुके थे। चिड़ियाँ और कौवे बरामदे में गिरी पड़ी खुराक की तलाश में फुदकते फिरते थे। नई मामा रसोई के सामने बैठी दोपहर के जूठे बर्तन धो रही थी। मुंदरा मौसी सामने बालकनी वाले कमरे को साफ करने में यूँ मग्न थी जैसे बहुत बड़ी महफ़िल जमने वाली हो। सपना ने सोचा—हर चीज को ढंग से सजाना मौसी का ही काम है, मुहल्ले में कोई भी जलसा हो मुंदरा मौसी को सारा प्रबंध सौंप दिया जाता है। उसके हाथों के जस और आवाज

के रस को सभी मानते हैं। वह बेढब चीजों को ऐसे ढंग से लगाती है कि देखते बनता है। अपनी इसी कला के कारण वह कटरे भर में प्रसिद्ध है। इसी प्रसिद्धि के सहारे उसने अपने अकेलेपन के कई वर्ष बुरे-भले गुजार लिये—लोग उसका मान करते हैं।

'मुंदरा मौसी, मैं भी आऊँ।'

सपना कमरे के दरवाज़े पर आकर बोली। उसका दिल मौसी का हाथ बटाने के लिए मचल उठा था।

'न-न—आराम कर—करने को है ही क्या।' मौसी ने चाँदनी की सिलवटों को दूर करते हुए कहा।

'हाँ, तो आज दोपहर के समय तुझे नींद नहीं आई। तेरे कमरे में पंखा भी तो नहीं। धीरे-धीरे सब हो जायेगा। तू जहरा के पास पड़ रहा कर।' मुन्दरा ने आँख उठाकर सपना को भरपूर देखा।

'ओ—हो—' फिर उसने बलायें लेते हुये कहा—'मैं वारी, मैं कुर्बान, थोड़ा काजल की बिंदिया लगा ले।'

और सपना की गर्दन पर चिपकी हुई बालों की लट को हटाया—

'यह तो भीगी पड़ी है।'

'मौसी, मुझे सारी नाच-गतें याद हैं, आपा ने जभी तो यह कपड़े पहनने को दे दिये। वह कहती हैं, अब मैं ऐसे कपड़ों की हक़दार हो गई हूँ—मौसी, भला अच्छे कपड़ों के बिना नाचना क्या! जैसे हीजड़ा नाच रहा हो—' सपना ने झूम-झूम कर कहा।

मौसी ने कारनिस पर पड़ी हुई मूर्ति को साफ करते हुये कहा—'पर अब तो उन कम्बख्तों के भी क्या कहने हैं। क्या नहीं पहनते?'

सपना एक एड़ी पर घूम गई।

'मौसी, परवाज मेरे शरीर पर अच्छी लगती है न।'

'तुम्हारी छवि बड़ी मतवाली है। सब कुछ जँचता है।'

मुन्दरा ने सितार के तारों को छेड़ा। वह झनझना उठे। फिर ठाठ

घुमा-फिरा कर देखे और दुपट्टे के पल्लू से साफ करके चाँदनी के एक तरफ रख दिया। तसल्ली के लिये चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। सब कुछ तैयार था, और सपना भी तैयार थी। बाहर मामा आवाज़ दे रही थी—

'ज़हरा बीबी, पानी तैयार है, नहा लीजिये, ओ-हो, गर्मी ने तो तल कर रख दिया।'

सपना ने ज़हरा को सहारा दिया और स्नानघर में छोड़ने चली गई।

मौसी ने पूछा—'सपना, मैं जानूँ, आज तुम एक ही बार नहाई हो।'

'ऐ तोबा बीबी, इस गर्मी में कोमल शरीर को साफ-सुथरा रखना चाहिये।' मामा ने भी अपना मत प्रकट किया।

'चाँदनी पर बैठने के भी कुछ ढंग होते हैं। इन मर्दों के नख़रे, तोबा—खुदा बख्शे। बाई जी कहा करती थीं, इतर-फुलेल पहले—रंडी बाद को—'

बूढ़ी मामा हर बात अपनी मृतक 'पहली मालिका' के हवाले से करती। वह मुन्दरा की आँखों की तरफ देखते हुए बोली—

'बड़ी बी, रंडी का मन मैला हुआ करे, पर तन मैला कभी न हो।'

मुन्दरा क्रोध से गरजी—'अच्छा-अच्छा, बकवास बन्द कर।'

वह नहीं चाहती थी कि सपना के कानों से कोई ऐसी बात गुजरे जिससे उसके दिल में ख्याल पैदा हों, और वह वातावरण से घृणा करने लगे। परन्तु उसने बात टालने के लिए कहा—

'जब देखो, बाई जी बाई जी की रट लगाये रखती है, बाई जी न हुईं कि हूर हुईं कि सब खूबियाँ ही खूबियाँ थीं—'

मामा को डाँटते मुन्दरा की दृष्टि सपना पर जा पड़ी। वह अपनी धुन में कुछ सोच रही थी। मामा को बोलते रहने की आदत थी, आगे से बोली—

'ए बीजी, मैं काहे को बकवास करूँगी, तजुरबे की बात जैसे बकवास हो गई। हुआ करे, नहीं कहेंगे आगे से, भलाई की कहो बुराई आवे।'

मुन्दरा किसी काम से कमरे में जा चुकी थी। बुढ़िया की कीकर की सूखी डालियों जैसी बाहें धीरे-धीरे आकाश की तरफ उठीं और उसने अपनी मृतक बाई जी के हक़ में दुआ के लिए हाथ फैला दिये—

'दो वक्त मिलते हैं मौला, करवट-करवट जन्नत देना, कैसे-कैसे दिन दिखाये!' बुढ़िया की आँखों में नमी और चमक थी।

बाई जी को अपने जीवन में पता भी न होगा कि कौन उसको कितना चाहता है।

इन्सान जीवन भर वहमों के पीछे भागता है और सच्चाई से आँख मिलाने से जी चुराता, अंधाधुंध खुशियों की पीछे भागता है। बाई जी ने बूढ़ी मामा के प्यार को कहाँ पहचाना होगा।

□□

मोतिये के फूलों और धूप की सुगंध में घर नहा उठा था। जोड़ी की खनक के साथ घुंघरू छनक रहे थे और सपना नाच रही थी।

'सैयाँ अनाड़ी ने कंकरिया मारी'

जहरा ने अपनी लोचदार आवाज में बोल उठाया, और भाव बता बता कर गर्दन के हल्के से संकेत से सपना को इशारा किया। सपना बोलों के साथ और तबले की गतों के साथ मधुर लय ले रही थी। उस्ताद जी लहक-लहक कर जहरा से प्रशंसा पा रहे थे, और जहरा की आँखें दो मशालें थीं कि चमक रही थीं।

'ता ता थई, तका थई तका थई ।'

उस्ताद जी ने आलाप तेज कर दिया । सपना के शरीर में बिजली दौड़ने लगी । वह चकफेरियाँ लेती रुकने का नाम न लेती थी । उसके पाँव में हरकत और शरीर में आग का अलाव था कि शोले बरसा रहा था । दुनिया घूम रही थी । धरती घूम रही थी । घूमती सपना का चेहरा तमतमा रहा था । आँखें बन्द थीं । उसे ऐसे महसूस हुआ जैसे वह खुले वातावरण में चौकड़ियाँ भरती फिर रही है । उसके आस-पास उसकी बकरियाँ बिखरी हैं और वे निश्चिंतता से घास चर रही हैं । जंगल में बरसात के फूलों की खुशबू फैली है । और दूर उसके घर से उठता हुआ धुआँ—वहाँ अम्मा है और अब्बा-मियाँ—इससे आगे कुछ नहीं—कुछ नहीं—कुछ नहीं । वह नाचती-नाचती चकरा कर गिर पड़ी । जहरा ने उसे तुरन्त गोद में ले लिया और अपने पल्लू से हवा देने लगी । उस्ताद जी हाथ-पाँव की हथेलियाँ और तलवे सहलाते हुए धीमे स्वर में बोले—

'धीरे-धीरे आदी हो जायेगी ।'

'उस्ताद जी आप कल से आना बन्द कर दें, बीबी नहीं सीखेगी ।' जहरा ने ऊँचे स्वर में कहा ।

'नहीं अपिया, मैं सीखूँगी—अवश्य सीखूँगी । यह तो ऐसे ही जाने क्या हो गया था ।' सपना तड़प कर जहरा की गोद से उठते हुए बोली, 'अवश्य सीखूँगी आपा—'

जहरा का छूटा हुआ तीर निशाने पर बैठा और उसने आगे कहा—'क्या सीखोगी ? कई बातें कुछ लोगों के बस की नहीं होतीं ।'

वह लड़की के शौक़ को बढ़ावा दे रही थी और सपना कुछ भी न समझ पा रही थी ।

आज नाचते हुए उसके अन्दर छिपी हुई कोई चीज उसे ऊपर ही ऊपर उड़ाये लिये जा रही थी । यह वक्त किस तरह अच्छा था । आज

उसकी आत्मा ने एक अरसे के बाद स्वतंत्रता महसूस की थी। उस पल वह जंजीर से छूटी हुई हिरनी की तरह घूमती फिरी थी, जहाँ मौसी मुन्दरा की चक्कर लगाती हुई आँखें थीं। इस समय वह बहुत कुछ याद कर सकती थी और बहुत कुछ भूल सकती थी।

□□

सूर्य की किरणों ने मकान की ईंटों को ताँबे की तरह तपा रखा था। हर चीज धूप में काँप रही थी। शहर के मकानों की छतों पर फैली दोपहर वीरान और चुप थी। लू चलने से आकाश मैला मैला हो रहा था। छत पर किसी के पाँवों की आवाज हुई—कोई जलती दोपहर में छतें फलांगता फिरता है—मामा होगी—सपना को ख्याल आया। फिर उससे रहा न गया और वह पाँव दबा कर चलती एक पल में ऊपर पहुँच गई। वहाँ कोई न था। वह शीघ्र ही लौट आई। आते-आते उसके कानों से एक आवाज टकराई—

'खुदा के लिये न जाओ।'

उसने ठिठक कर देखा। पड़ोसी मकान की छत पर एक नौजवान अपना आधा धड़ इधर लटकाये कुछ कह रहा था। उसकी आँखों में आग थी। और चेहरा इस तरह उतरा हुआ जैसे प्यासा हो। उसकी बात सुनी अनसुनी करके वह धप-धप दो तीन सीढ़ियाँ नीचे उतर आई। नीचे से मुंदरा ने पुकारा—

'ये, छत पर कौन कूदता है।'

'कोई नहीं मौसी, मैं थी।'

सपना ने मुन्दरा के कमरे में पहुँच कर कहा।

'मौसी, मैं देखने गई थी कि खुले में धूप की परछाईं कैसे काँपती है ? मौसी, तुमने कभी देखा कि चमकीली धूप की भी एक परछाईं होती है।' सपना एक तरफ रखी हुई चौकी के किनारे पर बैठती हुई बोली। मौसी की बूढ़ी नींद ने झकोरा लिया। पंखा हाथ से छूट गया तो आँख खुल गई और उसे पहली बात भूल गई। वह सपना को समझाते हुए बोली—

'धूप में मत जाया कर, रंगत काली पड़ जायेगी—तू छत पर क्या लेने गईं थी।'

'धूप की परछाईं देखने। मौसी, तुमने आग की परछाईं देखी है ? धुएँ की परछाईं अवश्य देखी होगी। गर्मी और जलन की परछाइयाँ भी अवश्य देखी होंगी।'

सपना जान-बूझ कर बात को गोल-मोल करके बढ़ा रही थी। उसका दिल अपने-आप चाहने लगा था कि वह बात को छुपा जाये। और वह चुपके से एक नजर और देख आये जहाँ जलती हुई भावनाओं की परछाईं डोलती फिरती है।

मुन्दरा की दुनिया और जमाना देखी हुई आँखें सपना के चेहरे को ध्यान से देखने लगीं।

'सर्दी गर्मी के रंग खूब नजर आयेंगे, वक्त आने दो।'

मुंदरा ने करवट ले ली और ज़ोर-ज़ोर से पंखा झलने लगी और मौसम की खराबी को कोसने लगी। सपना के शरीर में झुरझुरी पैदा करती एक ठंडी-सी लहर गुज़री। उसने मौसी को ध्यान से देखा और उठ कर चली आई। मौसी ने दोबारा आँखें मूँद ली थीं परन्तु पंखा हिलाते हुए कह रही थी—

'जा कर सो रह—शाम को घुमाने ले चलूँगी। अभी तो तीन भी न बजे होंगे।'

सपना ने मौसी के कमरे का दरवाजा लगभग बन्द करते और

तसल्ली देते हुये कहा—

'मौसी लू आती है, दरवाजा बन्द किये देती हूँ।'

अपने कमरे में आ कर वह पलंग पर लेटी छत पर आहट की प्रतीक्षा कर रही थी।

अभी परसों सुबह वह थोड़ी देर टहलने के लिये ऊपर गई थी तो साथ वाले घर की छत पर यही तो खड़ा था। उसके शरीर पर छोटी-सी नेकर के अतिरिक्त कोई कपड़ा न था। भारी मुगदर उठा कर जब वह हवा में लहराता तो उसकी चिकनी-चमकीली बाहों की मछलियाँ कैसे तड़पती थीं। घुँघराले बाल हर झटके के साथ झूमते थे। यूँ अधनंगे मर्द को देख कर सपना का जी शर्म से काँपा भी और दोबारा देखने की इच्छा भी पैदा हुई।

उसने सपना को अपनी तरफ देखते पाया तो मुस्करा कर आँख मारी। सपना ने शरीर में एक शोला लपकता महसूस किया। वह प्रत्युत्तर में पता नहीं क्यों मुस्करा दी। फिर उसके पाँव आप ही आप उखड़ गये और वह नीचे उतर आई। उसके माथे पर पसीना जम गया था। दिल इंजन की तरह धक-धक चलने लगा था।

उसी शाम को वह मुंदरा के साथ शहर के सबसे सुन्दर बाग की सैर को गई। मौसी ने झल-झल करती साटन की शलवार पहन रखी थी। बारीक कमीज में से कसी हुई अँगिया खूब झलक रही थी। इस खेंचतान ने बुढ़ापे में एक बाँकपन पैदा कर दिया था। जैसे कुछ ऊँचे घरानों की फैशनेबल औरतों में होता है। खुले दुपट्टे का कमीज़ से मैच करता ऊदा रंग मुन्दरा को संजीदा बनाये हुए था। सफेद बालों को जूड़े में लपेट कर सर को दुपट्टे से यूँ ढाँप रखा था जैसे वह किसी बड़े आदमी की विधवा हो।

ताँगा शहर की गलियों से होता हुआ साफ-सुथरी चौड़ी सड़कों पर आ गया। सपना के लिये ये सड़कें एक नई दुनिया से कम न थीं। बड़ी-

बड़ी ऊँची इमारतें, सजी हुई खूबसूरत दुकान, फैशनेबल औरतें और मर्द। मुन्दरा उसे समझा रही थी, यह फलाँ स्थान है, इसका नाम यह है, इस व्यक्ति का काम यह है आदि। तांगे वाले ने पीछे मुड़ कर देखा। मुन्दरा ने डाँट कर कहा—

'आगे देख, पीछे क्या धरा है, मरवायेगा क्या ?'

सपना मीठी-सी हँसी हँस पड़ी। तांगे वाले का जी चाहा वह इस नये कबूतर को ध्यान से देखे जिसके पंख नये हैं और दड़बे से निकला हुआ सहमा-सहमा हर चीज देख रहा है।

'ऊई मौसी, यह हमारे तांगे के पीछे कौन ताँगा लगाये चला आता है ?'

मुन्दरा ने गर्दन इधर-उधर हिला कर देखा—

'ऐ हे, यह तो पड़ौसिन झंडी का छोकरा है हरामी तेफा—'

'छी—छी कमीना—'

मुन्दरा की तीर सी दृष्टि देख कर तेफ़े का सिर झुक गया। उसने अपने-आप को ताँगे वाले के पीछे छुपाने की चेष्टा की। मुन्दरा सपना को बता रही थी—

'तू क्या जाने बच्ची। यह बहनों की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाता है। उड़ाये—कौन मना करता है। पर हर काम तरीके से हो तो अच्छा लगता है। कइयों से तो प्रेम-चक्कर चला चुका। बेउसूली की भी हद होती है।'

वह सपना को तेफ़े के सारे कारनामे एक ही साँस में बताने पर तुली थी। सपना हूँ-हाँ करती जाती थी। वह मुँह आगे न कर सकती थी, नहीं तो ताँगे वाला बीच-बीच में घूरने लगता था। सामने तेफ़े का ताँगा चला आ रहा था। वह केवल मुन्दरा की तरफ देख-देख कर बातें न सुने तो क्या करे। मुन्दरा दिल ही दिल में प्रसन्न थी कि लड़की उसकी एक-एक बात पर ध्यान देती है।

'जानती हो, उसने पिछले वर्ष क्या किया ? रात को अपनी एक प्रेमिका की नाक काट लाया। वह किसी और के साथ हँस-बोल रही थी तो भला तुझे क्या ? उससे प्रेम में कमाई ही क्या धरी है। निखट्टू जहान का। निगोड़े तू देता ही क्या है जो वह तेरी पाबन्द हो जाये। बस जरा शरीर तैयार है। करमों फूटियाँ उसी पर रीझती हैं। रिझाव में नाक ही गँवा बैठी। नाक न रही तो क्या रहा।'

मुन्दरा ने ठंडी साँस खींच कर दर्शन बघारने की चेष्टा की—

'आह, नाक बड़ी चीज है—शरीफों में भी और बदमाशों में भी इसका बड़ा महत्व है।'

'हाँ माँ तू ठीक कहती है।'

ताँगे वाले ने हाँ में हाँ मिलाई और घोड़े को चाबुक मारते हुए एक गाली दी।

'माँ जी, दुनिया में दो चीजों का ही झगड़ा है। नाक और पेट। असल में नाक निरा नखरा है और पेट पाजीपन—हा—हा—'

मुंदरा के कान खड़े हो गये। वह ताँगे वाले की बात की प्रशंसा किये बिना न रह सकी। और वह सोच रहा था कि हीरा जौहरी के हाथ आया है अनाड़ी के नहीं। वह सन्तुष्ट-सा हो कर बैठ गया और पुचकारते हुए लगामें खींच लीं। घोड़ा एक झटके के साथ रुक गया। मुन्दरा और सपना गिरते-गिरते बचीं।

ताँगे वाला बोला—

'मैंने सोचा इस बाबू का तांगा आगे निकल जाये।'

मुन्दरा ने ताँगे वाले को बताया—'यह बड़ा कमीना है।'

'मैं जानता हूँ, निरा अकड़फूँ है।'

अब ताँगा धीरे-धीरे चल रहा था। सपना को यूँ लगता था जैसे सब लोग उसकी तरफ घूर रहे हैं। न मालूम उसमें कौन-सी बात अन-होनी थी।

घोड़ा मोड़ काट कर नई सड़क पर हो लिया। यहाँ कुछ कम भीड़ थी। इस सड़क के दोनों तरफ पैदल चलने वालों के लिये पक्की पटरियाँ बनी हुई थीं। पटरियों के साथ घास के टुकड़े थे। जिनमें बैठे हुए लोग निश्चिंतता से गप्पों में मग्न थे।

सूर्य अपनी धूप-छाँव को समेट चुका था। वातावरण में शाम के हल्के अंधेरे के साथ हल्की प्राकृतिक खुनकी फैलने लगी थी। लोग बाग में सैर कर रहे थे। फव्वारों के पास बच्चों और औरतों के झुरमुट थे। यहाँ शोर, गर्मी और जीवन था। औरतें अपने मर्दों के साथ बातें करती हुईं इधर से उधर घूमती फिरती थीं। सपना ने सोचा—

'शहर अच्छे होते हैं। निरन्तर मेले—'

वह चुपचाप देखती चली गई। बच्चे अपने बापों की उँगलियाँ पकड़े अठखेलियाँ करते चल रहे थे। उनकी मासूम आँखें कहीं एक स्थान पर न टिकती थीं।

बच्चे एक नजर में कितना कुछ देख लेना चाहते हैं। वह भी जब अब्बा मियाँ की उँगली पकड़े कहीं आया-जाया करती थी तो इसी प्रकार बेचैन रहा करती थी। परन्तु बड़े होकर दृष्टि यूँ पथरा-सी जाती है कि एक चीज देखने के बाद दूसरी देखने की न वह इच्छा और तड़प रहती है न शक्ति—मुझे अब क्या हो गया है? सपना ने भीड़ को देखते-देखते सोचा।

मुन्दरा की दृष्टि फिर कहीं तेफ़े पर जा पड़ी। वह फिर कोस रही थी। सपना ने उसे खींचते हुए कहा—

'जाने भी दो मौसी, जाये भाड़ में।'

कुछ देर के लिये मुन्दरा एक बेंच पर बैठ गई। वह कुछ उदास थी। सपना ने उसे देखा और कहा—

'मौसी, बाग कोई उदास होने का स्थान है, ऊँह।'

'नहीं, मैं सोच रही थी, ज़हरा बेचारी क्या हो कर रह गई। काश

वह भी साथ आ सकती ।'

'हाँ, मौसी, कितनी बुरी बात है, हम आपा को छोड़ कर चले आये । मैंने कहा भी, परन्तु वह तैयार नहीं हुईं ।'

मुन्दरा निराश होकर बोली—'उसके आधे जीवन का मुझे बड़ा दुःख है । जो मेरे दिल पर गुजरती है कोई क्या जाने । वह हिम्मत वाली तो है परन्तु हठी बहुत है ।'

कहते-कहते मुन्दरा का जी भर आया । वह चुप बैठी सपना के कंधों पर नर्मी से हाथ फेरती रही ।

'सपना, तुम समझदार हो, जहरा का दिल न दुखने देना, वह तुम्हें सम्बल से भी अधिक चाहने लगी है ।'

'मौसी—'

वह अधिक कुछ न कह सकी । मुन्दरा सपना का हाथ पकड़ कर खड़ी हो गई । वे बातें करती-करती एक बार फिर फव्वारों की तरफ जा निकलीं ।

एक औरत अपने पति के ऊपर अपना भारी बोझ डाल कर चलती हुई पास से गुजरी कि एकदम सब की नजर उस पर जा पड़ी । ज्योंही एक जोड़ा हाथों में हाथ झुलाता गुजरा, तो फव्वारे की मेंड़ पर बैठी किसी औरत ने कहा—

'ऐ लानत पड़े जमाने पर, कैसी बेशर्मी ।'

मुन्दरा ने भी कहा—'सब बहू-बेटियाँ इसी डगर पर चल निकली हैं —देशी विलायती सब एक हो गईं ।'

मुन्दरा ने यह बात कुछ इस तरह कही जैसे वह किसी अच्छे घर की गृहस्थिन हो । दोनों औरतों में बात शुरू हो गई । सपना लोगों और उनके कपड़ों को आश्चर्य और दिलचस्पी से देख रही थी ।

दुनिया कितनी रंगारंग और दिलचस्प है ।

□□

आकाश में सितारे निकलने के साथ वे घर लौट आईं। खाने के बाद पलंग पर लेटते हुए उसे ख्याल आया जहरा कुछ दिनों से कुछ अधिक चुप रहने लगी है। एक गाने और पढ़ने से प्रेम है, बस। उसने प्यार से आवाज दी—'अपिया !'

ज़हरा ने बुझी हुई आवाज में 'हूँ' कहा और करवट बदल ली। बत्तियाँ बुझ चुकी थीं, उसका चेहरा दिखाई न देता था। अंधेरे की चमकती धूल देख कर कुन्ती का ख्याल आ गया। वह उसको राम का मार्ग और अब्बा-मियाँ रसूल को राह बताते थे। राम जब बनवास गये तो रास्ते में उनके पाँव से उड़ती हुई धूल का हर कण सितारा बनता गया, और अब्बा-मियाँ के कथनानुसार रसूल जब मेराज को तशरीफ़ ले गये तो रास्ते की धूल रोशनी में ढलती गई और हर सितारा एक दुनिया बन गया। फिर भी, रास्ता एक ही है। सपना ने जब भी इस पर सोचा उसे कोई अन्तर महसूस न हुआ, परन्तु उसे उलझन अवश्य होती। यह उलझन आज भी पैदा हुई परन्तु लहर की तरह गुजर गई। उसने जहरा से फिर कहा—'अपिया, आप चुप क्यों हैं ? आप हमारे साथ घूमने जाया करेंगी न ? मौसी कहती हैं उस्ताद जी की छुट्टी के दिन हम अवश्य जाया करेंगे।'

'क्या रखा है उधर।' जहरा ने इतना ही कहा, 'तुम भी घूम-फिर लो कुछ दिन—फिर धंधे में ऐसी फँसोगी कि सिट्टी-पिट्टी भूल जायेगी।'

जहरा ने अन्तिम शब्द होठों के बीच कहे।

'क्या कहा अपिया ? उधर बड़ी अजीब दुनिया है। औरतें, मर्द, बच्चे, फूल, फव्वारे और जाने क्या-क्या कुछ, और सुनो अपिया, यह पड़ोसिन का लड़का तेफ़ा है न, यह हमारे पीछे-पीछे फिरता रहा—और—और मौसी कहती है वह बुरा आदमी है।'

ज़हरा ने करवट बदल कर उसे ध्यान से देखा—

'हाँ-हाँ, फूफी ठीक ही तो कहती हैं, वह डोरे डालना खूब जानता है। कहीं तू उसके चक्कर में न आ जाना। चतुर शिकारी है। नये शिकार की घात में रहता है। हाँ, तुझे ग़ज़ल याद हो गई ? सुना तो—'

'बोल सुनाऊँ ?'

'धुन और बोल दोनों—'

सपना गुनगुनाने लगी। जहरा ने खुद दुहराया और कहा—

'ऊँ हूँ—तुम सुरों को गड़बड़ कर रही हो, दुहराओ फिर से—

सद जलवा रूबरू है जो मिजगान् उठाइये
ताक़त कहाँ कि दीद का अहसान् उठाइये

'ठीक है, फिर दुहराओ।'

'छोड़ो अपिया, कौन देखता है इतनी बारीकियाँ। ग़जल गाने में दूसरा सुर लगा दिया तो क्या हुआ ?'

जहरा हँसी—

'पगली सुर तो आत्मा है, एक और केवल एक, और सरगम इस आत्मा के उतार-चढ़ाव का नाम है। सुर पानी के बहाव की तरह है। पानी में मिल कर बहता है। दरिया में पानी की बूँद पड़ी दरिया बन गई, कंकरी गिरी तो कंकरी रहेगी—'

सपना ने कुछ उकताते हुए कहा—

'ओह आपा, आप क्या आत्मा और शरीर के चक्कर में पड़ गईं।'

'हाँ, तो मैं तुम्हें यही अन्तर तो बताना चाह रही हूँ कि सुर आत्मा

है, उसको बदला नहीं जा सकता। शायरी का क्या है, यह तो शरीर है, लाख चोले बदलता है, और ग़ज़ल—'

ज़हरा फिर हँसी—'ग़ज़ल सुन्दर औरत का शरीर है, सुडौल और मुलायम—हर अंग अपनी जगह सुन्दर और आकर्षित करने वाला।'

सपना ने बेचैनी से उचक कर ज़हरा का हाथ थाम लिया। ज़हरा उसकी कोमल उँगलियों से खेलते हुए कह रही थी—

'क्या यह अच्छा नहीं कि सुन्दर शरीर में सुन्दर आत्मा भी हो।'

सपना अपनी धुन में सोच रही थी, आपा हर समय सुर-ताल में खोई रहती हैं। और ये कितनी अकेली हैं। मैं भी तो अकेली हूँ। मेरा क्या बनेगा? और फिर मुंदरा है।

'अपिया—'उसने बात को बदलना चाहा—

'अपिया, वहाँ बाग में बड़ी रौनक थी। कई औरतें मर्दों के हाथ पकड़कर बच्चों की तरह चल रही थीं। मुझे तो हँसी आई जैसे वह नन्हीं-मुन्नी बच्चियाँ भी बेचारियाँ—ही-ही—' सपना अब भी हँस रही थी। ज़हरा की तरफ से कोई उत्तर न पाकर वह एक बार फिर जोर से हँसी—और ज़हरा ने इस क्षण जो पीड़ा और बेचैनी महसूस की वह उसको प्रकट न कर सकती थी। वह चुपचाप आकाश की तरफ देखती रही, फिर खुद-ब-खुद उसके ओंठ हिलने लगे—

'सपना—प्यार इन्सान को नन्हा-मुन्ना बना देता है। यह इतना महान् है कि उसके सामने झुक जाने को जी चाहता है—यह कमजोर तो नहीं बनाता; मासूम बना देता है—चाहने और चाहे जाने में बड़ा अंतर है। चाहना एक पीड़ा भरा मजा है और चाहा जाना विजय और विश्वास है। यही औरत का अधिकार है जो हमें प्राप्त नहीं।'

ज़हरा आकाश की तरफ देखते हुए बोली, जैसे वहाँ ही किसी से बात कर रही हो।

'तूने हमें किस क़दर मजबूत समझ रखा है—जैसे हमें किसी सहारे

की आवश्यकता नहीं। तेरे ख्याल में हम कोई और जीव हैं। सपना, मैं अल्ला मियाँ से पूछती हूँ कि हमारे लिए यही सब क्यों बदा है? हमारे बच्चे होते हैं जो किसी को बाप नहीं कह सकते। शुरू से ही यतीम, परन्तु उन पर कोई दया नहीं करता। और वह जंगली पौधों की तरह अपने आप ही बढ़ते रहते हैं। क्या हम दुर्घटनाओं में नहीं जीते? जीवन हमारे साथ वे सारी चालें चलता है जो वह दूसरों के साथ नहीं—सपना, इस विवशता और असमर्थता ने मुझ में भरपूर जीवन की इच्छा तेज कर दी है।'

सपना सुनते-सुनते सजल हो गई।

'आपा, तुम घूमने जाया करो न, जी बहल जायेगा।'

सहारा लेकर चलती हुई औरतों को देखने—हा-हा—तुम्हारा दिल आज उधर बहुत लगा। सपना, मगर तुम काम ध्यान से सीखो। एक दिल को लेकर कहाँ मारी-मारी फिरोगी—अच्छा, अब सो जाना चाहिए।'

सपना ज़हरा की बातों को नींद के झूलने में झूलती, सुनती रही—ज़हरा ने भी करवट बदल ली।

वह दिन-रात बेकार रहने से उकता गई थी। अक्सर रातें बिना स्वप्नों के गुजर जातीं। उसका शरीर नाकारा रहने के कारण फूलने लगा था। बैसाखी का सहारा लेकर थोड़ी दूर चलने से थक जाती। अपने जीवन की पुस्तक को दिलचस्प न पाकर उसने दूसरों की चीजों-विचारों में शरण लेना शुरू कर दिया था।

लेटे-लेटे उसका दिल चाहा कि उठे और थोड़ी देर को टहले, और दीवारों से उस पार झाँके जहाँ चहल-पहल है। परन्तु सोई हुई सपना और मुन्दरा के ख्याल से उसने इच्छा को दबा दिया। नहीं तो बैसाखी की खट-खट से वे जाग जातीं।

□□

अपने अच्छे पिछले दिनों की याद किसे नहीं आती। परन्तु जब रास्ता व्यस्तताओं से अटा पड़ा हो तो कौन है जो मुँह पीछे की तरफ करके चल सके।

सपना दीवानी न हुई। बोझिल कदमों से चलती रही धीरे-धीरे। उसका रास्ता बड़ा अलग-थलग और अनोखा था। उसमें ऊँची-नीची जगहें घनी थीं और मोड़ कम।

आज उसकी पहली रात थी। महफ़िल में आने की शाम, सावन-भादों की खूबसूरत शामों में से एक, जब चम्पा की कलियाँ फूल बनने लगती हैं। और मौलश्री के मटियाले फूल झड़-झड़ कर मिट्टी में मिलने लगते हैं और खुशबू हवा के साथ आवारा फिरती है।

इस शाम सपना गुलाब मिले पानी से खूब मल-मलकर नहाई। ऐसे ही ढंग से वह पहले भी एक बार नहाई थी। परन्तु तब पानी को किसी ने सुगन्धित न बनाया था। उस दिन उसकी शादी थी।

'आज जाने क्या है ? इसको क्या नाम देंगे ?'

वह काफी देर तक नहाती और खुश होती रही, हालांकि किसी ने दरवाजा खटखटा दिया। घर में बहुत-से लोगों की आवाजें गूंज रही थीं।

हुस्ना और नज्जू भी आई थीं। चंचल हुस्ना और नज्जू बातों ही बातों में उसकी सहेलियाँ बन गईं।

कपड़े समेटती वह स्नानघर से बाहर आई। मौसी ने बलायें लीं। दो-तीन लड़कियाँ लपक कर आगे आईं और वह इन सबके बीच ऐसे

चली जैसे वह महारानी है और नौकरानियाँ उसके पीछे-पीछे चल रही हैं।

आज वह महफ़िल को रोशन करेगी। आज की रात उसकी रात है। सपना ने गर्व और विश्वास से आईने में अपने को देखा और सराहा। जहरा उसकी प्रतीक्षा में बैठी थी। आँखों से आँखें मिलीं, दोनों एक साथ मुस्कराईं।

जहरा और कई दूसरी औरतों ने मिलकर उसे सजाया। हुस्ना सजाते-सजाते हर बार हल्की-सी चुटकी ले लेती। सपना के कानों में फुसफुसाहट करने पर जहरा से डाँट खाई। सपना के दिल में हजार वलवलों में घिरी उमंग सी थी जिसे जवानी का नशा कह सकते हैं।

बालकनी वाले कमरे को दुल्हन की तरह सजाया गया। सफेद चाँदनी का फ़र्श सपना के शरीर की तरह कुँवारा और बेदाग था। मुन्दरा उस पर किसी को पाँव न धरने देती। रेशमी गाव-तकिये, इत्र की खुशबू, मुन्दरा के जूड़े में चम्पा का गजरा, जहरा की कुन्दन सी रंगत पर नवरत्न के गहने। आज सबने चोला बदला था। जवान औरतें चुहल करती फिरती थीं।

जहरा चाँदनी पर आकर बैठी। मुंदरा सदके वारी गई। वह तान-पूरा पकड़े इक बाँकपन से बैठी जच रही थी। मेहमान आने शुरू हुए। वह सिर को हिलाकर और ओठों में मुस्कराकर स्वागत करती, अपने स्थान से उठती न थी। बहुतों ने उसकी विवशता को गर्व समझा और सँभलकर बैठ गये।

सब मेहमान आ चुके। साजिंदों ने साज सँभाल लिए। मुन्दरा की प्रसन्नता की सीमा न थी। कई पुराने ग्राहक भी बुलवाये गये थे और कई नये, क्योंकि आज एक नई वेश्या के जीवन का मुहूर्त था। और इस सबकी कर्ता-धर्ता मुन्दरा थी। वह विजयी भाव से सर ऊंचा किये मेहमानों के चेहरों से उनके ख्यालों को पढ़ने की चेष्टा कर रही थी।

पुराने जानने वाले कितने तपाक से मिले थे। सम्बल की मौत के साथ जैसे वे सब भी मर गये थे। आज जहरा के एक बुलावे पर ये क़ब्रें फाड़ कर निकल आये हैं।

यह सब सोचकर मुन्दरा ने बात को कारोबार से आगे सरकने न दिया। खैर-खैरियत पूछी-बताई, अल्ला-अल्ला खैर सल्ला।

महफ़िल में चुप्पी छाई थी कि जहरा ने गाने के लिए आवाज उठाई। सुब्हान अल्ला-सुब्हान अल्ला की गूँज ने वातावरण को संजीदा कर दिया। फिर अवसर के अनुकूल ग़जल छेड़ी और वह उस चुप्पी को बहाकर ले गई। शेरों में प्रेम की विवशताओं का रोना था और प्रेमी की प्रशंसा। लोग बेचैन हो गये। शेर और गाने के दौरान एक तीखी-सी आवाज आई—

'मुन्दरा बाई जी, शमा कहाँ है ? उजाला तो कर दो—'

जहरा बुझ-सी गई। राग को लपकती हुई लय दबकर रह गई। उसने अर्थपूर्ण ढंग से फूफी को तरफ देखा। उसकी आँखें जैसे कह रही थीं—

'अभी पैमाना छलक लेने दो—'

फिर किसी की आँख का संकेत पाते ही मुन्दरा उठी और जाकर सपना को ले आई। सपना ने सबको झुककर सलाम किया। वह बैठने को थी कि मौसी ने गाव-तकिये को टेक लगाये बैठे एक मर्द को तरफ संकेत करते हुए कहा—

'इनको देखो बेटा, यह सरदार साहब हैं, हमारे पुराने जानने वाले।'

सपना ने दुबारा सलाम किया और मुस्कराते हुए बोली—

'ओह···बहुत जिक्र सुना था। आज दर्शन भी पा लिये, जहे नसीब।'

सरदार साहब ने एक छोटी-सी सुन्दर डिबिया जेब से निकालकर पेश

की और कहा—

'हुस्न के हज़ूर में, तुच्छ भेंट।'

सपना झेंपी। उसके क़दम जम से गये। मुन्दरा और जहरा की इतने दिनों की शिक्षा हार खाने को थी कि उसके कानों ने फिर सुना—

'क़बूल फरमाइये—लीजिए न। शर्म आ रही है ? ओह !'

सरदार साहब की शरारती आँखें सपना के चेहरे पर गड़ी थीं। वह उनकी चुभन को महसूस कर रही थी।

'ले लो न बेटे—'

मुंदरा ने उसके पाँव को हल्का-सा दबाया। वह आगे बढ़ी, झुकी, हाथ को माथे तक ले जाते हुए डिबिया पकड़ ली। वाह-वाह का शोर उठा। हाथ से हाथ छू गया। दो मतवाली आँखें दो प्यासी आँखों से टकराईं। वह लड़खड़ा-सी गई। वापस मुड़ते-मुड़ते उसने एक पल के लिए सोचा—

'कहीं मुझे इससे प्यार न हो जाये।'

जहरा सितार के ठाठ ठीक कर चुकी थी। उसने प्यार भरी प्रशंसात्मक दृष्टि से सपना को देखा और मुस्करा कर धीरे से कहा—

'सैयाँ अनाड़ी—'

सपना समझ गई। साजों पर धुन बजने लगी। जहरा ने तान उठाई और सपना तोड़ा लेने के लिए खड़ी हो गई। लय की रवानी के साथ उसके पाँव भी रवाँ होते गये। वह घूम रही थी और कई नजरें उसका पीछा करतीं उसके साथ-साथ घूम रही थीं। उसे नाचते हुए कई बार अहसास हुआ कि ये नजरें उसे परेशान किये दे रही हैं। परन्तु वह नाचती रही। रुपयों का बारिश में भीगती, धन-दौलत को पाँव तले रौंदती। मुंदरा को क्रोध आ रहा था कि वह तरीके से नोट नहीं पकड़ती। नाचते-नाचते हमेशा की तरह वह फिर आसपास को भूल गई। जैसे वह केवल अपने लिए नाच रही हो।

साज बजते रहे। जहरा के गीत के बोल समाप्त हो गये। माथे और ओठों के ऊपर-नीचे पसीने की बूँदें काँपने लगीं। वह थक गई थी, परन्तु उसका फ़रार ख़त्म न हुआ था। आँखें कभी मुंद जातीं, कभी खुल जातीं। जमाना उसके साथ घूम रहा था। और वह दोनों थमने का नाम न लेते थे। लोग कह रहे थे—

'कलाकार है, वेश्या नहीं।'

उसके पाँव की थाप उस समय थमी जब उस चकराते वातावरण में एक ठहरा-ठहरा आकार उभरा। कौन किस समय आया? उसे मालूम न था। वह रुककर देखने लगी। सरदार साहब के साथ ही बैठा था। सरदार साहब उसकी तरफ नोट बढ़ाये प्रतीक्षा कर रहे थे। वह पकड़ने के लिए झुकी, परन्तु उसकी आँखों में बरसात की भीगी हुई तूफानी रात फिर गई, जिसमें एक झोंके के साथ एक मुसाफिर आया था।

दोनों ने एक-दूसरे को देखा। फिर सपना पागलों की तरह कमरे से बाहर निकल गई। मुन्दरा पीछे लपकी। लोगों में खुदबुद होने लगी। जहरा बहुत उदास और बेचैन नज़र आती थी।—अन्दर सपना पिट रही थी।

साजिंदों ने साज बाँध लिये, और उस्ताद जी लोगों से क्षमा-याचना किये जाते थे।

'देखो जी, बच्ची है न आख़िर।'

और लोग एक-एक करके खिसक रहे थे। सरदार साहब के तेवर चढ़े थे। यह सब कुछ इतनी जल्दी हुआ कि वह परेशान हो गये। अचानक उन्होंने अपने साथ लगकर बैठे हुए नौजवान को झिंझोड़ा जो आश्चर्य में डूबा किसी ख्याल में गुम था।

'सुलेमान, तुम यहाँ कैसे आये?'

'मैं-मैं—'

वह चौंककर बोला—

'मैं—तलाश करता हुआ यहाँ पहुँचा हूँ। बड़ी देर से ढूँढ़ रहा था।— मगर मैंने इस लड़की को कहीं देखा है।'

वह मस्तिष्क पर ज़ोर देता उलझन महसूस कर रहा था।

'बहुत निकट से देखा है—कहीं बहुत निकट!'

उसकी आवाज़ धीमी हो गई।

'कहाँ देखा है? जाने कहाँ? जाने कहाँ?'

'क्या कर रहे हो यार?' सरदार साहब परेशान होकर बोले।

कमरा लगभग खाली हो चुका था। ज़हरा बैसाखी के सहारे दरवाजे को लाँघती कितनी दयनीय लग रही थी। सरदार साहब ने आह भरी—

'बेचारी—'

'भई मैं आपको लेने आया हूँ। गाँव से पैग़ाम आया है।— शायद—'

सुलेमान 'शायद' कहकर रुक गया।

'क्या-क्या—शायद क्या—यार तुमने सारा मजा खराब कर दिया।'

सरदार साहब भन्नाये हुए से थे।

'मैंने इस लड़की को कहीं देखा अवश्य है।'

सुलेमान ने सरदार साहब की बात अनसुनी करते हुए कहा। परन्तु अब उन्हें उसके आने का कारण जानने की बेचैनी थी।

'शायद आपकी अम्मा बीमार हैं।—आप ऐसे स्थानों पर क्यों आते हैं। शादी करके आराम से रहें। घरेलू नहीं तो कोई इस मुहल्ले से ही उठा लें। समय क्यों नष्ट किये दे रहे हैं।'

सरदार साहब को किसी चिन्ता ने आ घेरा। उन्होंने सुलेमान की बातों का संक्षेप में उत्तर दिया—

'चलना चाहिये यार, फिर कभी सोचेंगे—'

सुलेमान उठ खड़ा हुआ। उसके मस्तिष्क में नर्तकी का जो चित्र कुछ देर पहले बना था, मिट गया। दोनों बिना किसी से कुछ कहे सीढ़ियाँ उतरने लगे। ठहरी हुई रात का नशा सिसकियों से टूट रहा था। वे सुनते हुए चले गये।

जब जहरा ने सपना को रुई की तरह धुनके जाते देखा तो उसका दिल दया से भर गया। कुछ देर पहले उसे भी सपना की हरकत पर क्रोध आया था। परन्तु अब—अब तो वह बहुत ही मैले और भारी कपड़े की तरह कूटी जा रही थी। उसका दोष इतना बड़ा था—मुन्दरा के क्रोध ने नई राहें पा ली थीं। उसकी आँखों में खून उतर आया था। फ़र्श पर औंधी पड़ी सपना की कमर में लात जमाते हुए वह जहरा पर गुर्राई—

'खबरदार जो तूने इसका पक्ष लिया—मैं इसको सीधा कर दूँगी। इसने मुन्दरा का प्यार देखा है, मार नहीं देखी। नमकहराम, हरामज़ादी, घुन्नी कितनी मासूम और इरादे ऐसे खतरनाकी, धंधा चौपट करने की ठानी है—देखो तो सही।'

'फूफी-फूफी—तुम अच्छा नहीं कर रहीं।'

घिघियाई हुई जहरा सिर पकड़कर बैठ गई। तभी उसके मस्तिष्क में एक विचार आया, जिससे वह मुन्दरा के क्रोध को ठंडा कर सकती थी। उसने फूफी का हाथ पकड़ लिया और कहा—

'रुक जाओ—फूफी—अच्छा हुआ यह भाग आई। जानती हो सरदार साहब का मित्र इसे यों घूर रहा था जैसे पहचान रहा हो। मेरे पाँव के नीचे से तो जमीन खिसक गई। यदि इसे जानने वाला इसको पहचान लेता तो क्या होता। शुक्र करो बचाव हो गया।'

मुन्दरा सोच में पड़ गई। पिछली बातों पर ध्यान देने से उसे विश्वास हो गया कि जहरा की बात ठीक है। दोनों औरतें बातें करतीं बरामदे में आ गईं। बूढ़ी मामा हुक्का गुड़गुड़ाते कह रही थी—

'देखो तो क्या गुल खिलाया—कोई शरीफ़ों की महफ़िल में यूँ करता है—भई खानदान खानदान ही होता है।'

इतने में उस्ताद जी खांसते-खखारते आ पहुँचे—

'बाई जी, साज़िंदों को अभी विदा करना है।'

मुन्दरा बटुआ संभालते हुये बोली—'हाँ-हाँ क्यों नहीं।'

उसे बटुए का ख्याल अब आया। नहीं तो क्रोध ने उसे ऐसे सब कुछ भुला दिया था।

उसने मखमली बटुआ उंगलियों से टटोला, नोट चरमराए।

मुन्दरा संतुष्ट थी। थैली का पेट भरा हुआ था।

□□

जीवन में पहली बार मार खा कर जो अपमान महसूस किया वह सुबह को सिर उठाने न देता था। जोड़-जोड़ दुःख रहा था। वह रात भर जागी थी। रात भर रोई थी।

काफी दिन चढ़ आया। वह न उठी। नींद का बहाना किये बेसुध पड़ी रही। उसमें हिम्मत न थी कि कोई उसे जगाने आये और वह उसका सामना कर सके। इतना उसे ख्याल था कि धूप दीवारों पर उतर आई होगी। मुन्दरा रोज़ की तरह बड़ी चौकी पर बैठी कौवों-चिड़ियों को दाना डाल रही होगी। और जहरा आपा? उसका कुछ पता नहीं चलता किस समय क्या करती है। वह कहीं इधर न आ निकले। सपना सोचती चली गई।

वह आ गई तो मुझे सचमुच जागना पड़ेगा। वह ठीक ही कहती है वह मुझे पहचानने की चेष्टा कर रहा था। परन्तु मैंने तो उसे पहचान

लिया था और जान लिया था। मर्द हवा का झोंका है। उसका गुज़र कभी गंदी नालियों में से होता है, कभी खुशबू में बसे बागों में से। व्यर्थ और अशक्त तिनके उसके साथ उड़ने की इच्छा में कभी कूड़े में जा गिरते हैं कभी फूल के सिंहासन पर, उनके भाग्य में यही लिखा है—झोंके को क्या मालूम ?

सपना अपने-आप से कह रही थी।

वह आया—और फिर चला गया, मुझसे कुछ कहे बिना—मैं मुसीबत में आ गिरी, मुझे वह उठा कर नहीं ले गया। बहुत भारी हो गई हूँ शायद ? उसके साथ उड़ नहीं सकती।

किस गली से गुज़रे हो मीत ? मैंने कहा था न, तुम्हें जहाँ कहीं जब कहीं देखूँगी पहचान लूँगी—तुम मुझे फिर छोड़ गये—झकोरे, ठंडी पवन के मस्त हिलोरे, फिर कब आओगे ? इस जीवन में बहुत जलन है और मैं कब से प्यासी हूँ।

उसने ओठों पर जिह्वा दुःख और क्रोध के कारण सूखी और बोझिल थी।

□□

'ज़हरा, ज़हरा, बेटा क्या बात है ? नाश्ता न करोगी ?'

मुन्दरा ने ज़हरा की ठंडी बाँह को छुआ और कहा।

'तबीयत ठीक नहीं है क्या ?'

'फूफी, अब तो ठीक है। रात नींद नहीं आई। जाने शायद बुख़ार हो गया था। मुँह का स्वाद कड़वा-कड़वा हो रहा है।'

ज़हरा ने मुंह खोल कर जीभ दिखानी चाही। मुन्दरा उसके सर पर हाथ रखे उसके पसीने से भीगे माथे को आंचल से पोंछ रही थी।

'इस समय बुखार तो नहीं। पसीना आ रहा है। तुमने मुझे जगाया होता। आखिर तुम लोग मुझे अपना शत्रु क्यों समझने लगी हो।'

मुन्दरा के स्वर में शिकायत थी।

'फूफी, मैंने तो कभी ऐसा प्रकट नहीं किया। और सपना के मुँह से भी कभी कोई ऐसी बात नहीं सुनी। पिछली रात वह बहक गई तो क्या हुआ। किसी के मन पर हम पहरा नहीं बैठा सकते। वैसे फूफी, तुमने अच्छा नहीं किया—'

जहरा मुरझाई हुई लग रही थी। सपना को शारीरिक मार पड़ी थी। परन्तु उसे अपने अंग का एक-एक हिस्सा टूटा हुआ महसूस होता था। पिछली रात उसके मस्तिष्क ने, भावनाओं और कल्पना ने, बड़े संघर्ष के बाद हार खाई थी। लोगों की अपने खुद में दिलचस्पी न पाकर वह रात को महफ़िल में जैसे कोड़ों की मार खा चुकी थी। यह चीज उसकी आत्मा को घायल करने के लिये काफी थी। सरदार साहब जो कभी उसकी अदाओं का मूल्य दिल खोल कर चुकाते थे, केवल दया भरी मुस्कराहट से उस को देखा किये और बस। वह अपनी घायल भावनाओं को लेकर सारी रात सोचती रही। सुबह उसे यूँ लगता था जैसे वह लगातार कई घंटे शिकंजे में फंसी रही हो। उसकी आत्मा और शरीर बुरी तरह कुचले गये थे। सपना का ख्याल आते ही उसने मुन्दरा से पूछा—

'फूफी, सपना कहाँ है? उसे इधर भेज दो। क्या उसने नाश्ता कर लिया?'

मुन्दरा दुखी होकर वहाँ से चल दी। उसकी भतीजी, उसका अपना खून उसके अहसासों को नहीं समझता। वह कितने प्यार और भरोसे के साथ आई थी कुछ बातें करके जी का गुबार हल्का करले। वह पागल तो नहीं कि बिना कारण लोगों को मारती फिरे।

सपना सिर झुकाये हुए कमरे में दाखिल हुई। उसके बाल बिखरे थे, और बनाव-सिंगार फीका पड़ा हुआ था। आँखों से काजल धुल चुका था। दोनों की नज़रें मिली। सपना ने होश्यारी से पलकें झुका लीं।

'इधर आओ।'

जहरा ने बांह फैलाई

'जरा मुझे वह आईना उठा कर पकड़ाना।'

सपना ने चुपचाप आईना उठा कर दे दिया। जहरा ने अपने को उसमें देखा। आँखों के गड्ढे और गहरे हो गये थे।

'उफ़, आज की रात ने मुझे कितना बूढ़ा कर दिया है।'

सपना ने कोई बात न की। वह मुँह दूसरी तरफ किये खड़ी थी। जहरा ने हाथ पकड़ कर उसे पास बैठा लिया। सपना का बोझिल सिर अपने-आप जहरा के सीने पर टिक गया। फिर दिलों पर छाई हुई घटा देर तक बरसती रही और उनके रात के बासी चेहरे धुल गये।

□□

जंगली कबूतरों ने सामने के वीरान घर के झरोखों में घोंसले बना रखे थे।—जहरा दोपहर का खाना खाकर चुकती तो खिड़की खोलकर बची-खुची चीजें बाहर डालकर कितनी देर खड़ी देखती रहती। कई जोड़ों ने बच्चे दे रखे थे। वे शोर मचाते सारा दिन बच्चों में व्यस्त रहते। उनको देखते-देखते जहरा ऊँघने लगती। परन्तु आज उसने उनका तमाशा भी न देखा।

हाथ में पीले रंग का कागज पकड़े वह सोच में गुम थी। हालाँकि काग़ज को उँगलियों ने नम कर डाला था। उसने दोबारा खोल कर पढ़ना शुरू किया, और कुछ देर बाद सपना को पुकारा। जहरा की नजरें बार-बार एक ही वाक्य पर दौड़ रही थीं।

'हम परिचित तो कभी न थे, न तुमने समझा...हम मित्र हैं शायद।'

'शायद—शायद—शायद—'

वह धीरे-धीरे बड़बड़ा रही थी। बाहर कबूतर गुटरगूँ-गुटरगूँ कर रहे थे। जहरा ने सिटपिटा कर सोचा। वे अपने बच्चों को दाना खिला रहे होंगे या अपने-अपने साथी से प्यार कर रहे होंगे—क्या मुसीबत है।

सपना जहरा की आवाज पर अभी तक न आई थी। उसने उसे फिर पुकारा। वह आईं तो पूछा—

'तुम कहाँ रह गई थीं ?'

'आपा, मौसी को दबा रही थी, मैंने आप की आवाज सुनी थी, मौसी बोलीं उँगलियों के पटाखे निकाल कर चली जाना।'

जहरा मुँह मोड़े खिड़की से बाहर देखती रही और सपना से आँखें नहीं मिलाईं। फिर बोली—'बैठ जाओ।'

'अपिया ! नाराज हो ?'

वह धीरे से पलंग की पायंती पर बैठ गई और धीरे-धीरे जहरा के पाँवों को सहलाते हुए पूछा—

'सचमुच रूठी हैं ?'

जहरा के थोड़े भी अलग मूड से उसका दिल काँप उठता था।

'लो यह पढ़ो।'

जहरा ने कागज उसकी तरफ बढ़ा दिया।

सपना घबराहट से कँपकँपाने लगी। इतने अरसे में यह पहला पत्र था जो जहरा ने उसको पढ़ाना ठीक समझा। सम्भव है इसमें अब्बा-मियाँ की कोई सूचना हो। अवश्य उन्हीं के बारे में लिखा होगा। बेचैनी ने उसे पढ़ने का भी अवसर न दिया और उसने जहरा से पूछा—

'अब्बा मियाँ की सूचना है ? क्यों ?'

'ओह, लड़की—तू पढ़ तो ले।'

सपना ने पढ़ा। फिर पढ़ा। जैसे कोई बात स्पष्ट न हो रही हो। वह निराश-सी हो गई।

'आपा तुम ही बताओ। मेरी समझ में कुछ नहीं आता।'

जहरा पढ़कर सुनाने लगी। बाहर कबूतरों ने शोर मचा रखा था। सपना ने खिड़की बन्द कर दी।

'हां अब सुनाइये।'

'मगर तुमने खिड़की क्यों बन्द कर दी? जब तुम न होगी तो मैं इसी शोर से दिल बहलाया करूँगी। जमाना बदल जाता है। जीवन भी बदल जाता है। परन्तु भाग्य को बदलना सम्भव नहीं होता।'

सपना जहरा की बातों से उलझन महसूस कर रही थी। आराम के समय में राम-कहानियाँ छेड़ बैठती हैं, और इधर आधी रात तक जागो और नाचो। मौसी घुड़कियाँ देती है। भला वह किस-किस की सुने और किस की हो रहे। एक क्षण के लिए इस वातावरण से भाग जाने को उसका मन चाहने लगा। जब से उसने मुन्दरा की मार खाई थी और काम शुरू किया था, उसमें सख्ती से बात कहने की हिम्मत पैदा हो गई थी।

'क्या लिखा है इस पत्र में? मेरी मौत का परवाना होगा?' सपना ने जानबूझ कर यह बात कही।

'जो मैं कहूँ वह मानोगी?' जहरा ने आँखों में आँखें डाल कर पूछा—

'मानने की बात हुई तो—' सपना ने कहा।

'तुम्हारे ही फायदे की बात है। हमें भी घाटा नहीं रहेगा। फूफी इस बात को नहीं मान रही—मैं मना लूँगी—सपना, तुम्हें पता है कि कोई तुम्हें बहुत चाहता है।'

जहरा ने देखा कि सपने के चेहरे पर बारिश के पहले छींटे की सी मुस्कराहट बिखर गई है और उसकी पलकों को स्वप्नों की पुरवा ने बोझिल कर दिया है।

'मैं क्या जानूँ?' सपना बोली।

'खुद चाहना तो बड़ी जोखिम का काम है। यही क्या कम है कि चाही जाओ। और फिर हमारा तो पेशा ही यह है, कोई झूठों चाहे या सच। सपना, मैं चाहती हूँ तुम इस व्यक्ति की पाबंद हो जाओ, उसके पास जा कर रहो, उसने यही लिखा है—वह तुम्हें निश्चय ही प्रसन्न रखेगा—मैं जानती हूँ तुम यहाँ बाजार में न चल सकोगी।'

'हाय, अपिया, वह है कौन ?'

सपना ने बुझे हुये कहा।

'मैं आप लोगों को छोड़ कर कहाँ जाऊँ ? मुझे कहीं नहीं जाना। आपा, तुम्हें छोड़ कर जाना कितना कठिन है ! हाय, न—'

जहरा को छोड़ कर चले जाने के ख्याल से उसे दुःख हो रहा था।

'परन्तु वह है कौन ऐसा दिलफेंक ?'

'वह—वह उसी रात वाला सुन्दर मर्द, जिस रात तुम भरी महफ़िल में से भाग आई थीं।' जहरा ने कुछ उसके दिल की बात कह देने की ठान रखी थी।

सपना उसके निकट सरक आई और जहरा के कूल्हे से टेक लगा दी, 'अपिया—सच—?'

वह बहुत खुश थी। दूसरे क्षण वह इस ख्याल से उदास हो गई। उसे इस घर के छूटने के गम ने घेर लिया था।

'तुम चुप क्यों हो गई। याद नहीं आ रहा। वही तो—मैं जानूँ वही तो तेरा चित-चोर है।'

जहरा अपनी टाँग को झुला रही थी जिससे सपना लग कर बैठी थी। सपना के साथ प्यार इस प्रकार भी हो सकता था कि उसके गले में वह अपनी बाँहें डाल दे और चटाचट बलायें ले ले। परंतु अपनी आयु और बुद्धि के हाथों विवश थी।

'तुम अवश्य चली जाना। पता नहीं किस हीरे की तलाश में उसने अभी तक शादी नहीं की। उसका मन यूँ मुट्ठी में ले लेना कि वह तुमसे

शादी कर ले ।—देखो, शादी कर लेना अच्छा ही रहता है। बच्चे हो जाते हैं। घर बन जाता है। दुनिया में जितनी देर जिये इन्सान जी लगा कर तो जिये । मैं तो यही सलाह दूँगी—'

सपना सुनते-सुनते रुआँसी हो गई ।

'और आपा तुम ? तुम क्या करोगी—?'

'मैं—?' जहरा बोली—'तुम्हारे बच्चे हो जायेंगे। वे मुझे खाला कहा करेंगे। तुम्हारा मियाँ और तुम मुझे आपा कहा करोगे—सपना, यह बड़ी मुश्किल है। मुझे भी कोई संजीदगी से घर बिठाता तो मैं फूफी की परवाह करती—कभी भी न। दूसरे कच्ची उम्र में इन बातों के सम्बन्ध में कौन सोचता है। जी चाहता है आज़ाद पंछी की तरह यहाँ से वहाँ उड़ता फिरे। तुम्हारी भी कुछ ऐसी उम्र है—आज मैं किसी के घर में होती तो कुछ सहारों को तो मैं अपने शरीर से जन्म दे लेती। कोई मुझसे कहाँ तक दामन छुड़ाता। जिन लोगों ने मुझे चाहा उनको मैंने मुँह नहीं लगाया। सेठ के साथ गुजर सकती थी। परंतु जब ख्याल आया तो समय का इरादा बदल गया।'

सपना अब अपने सहारे से बैठ चुकी थी। वह ज़हरा की बातों पर ध्यान दे रही थी। और उसके दिल में एक आस थी—

'सम्भव है यह व्यक्ति वही हो—निश्चय वही होगा। आपा जहरा ने मेरी आँखों से भाँप लिया होगा।'

उसे अपने स्वप्न के पूरा होने की आशा नजर आई। हाँ, कह देने में उसे संकोच था। कहीं जहरा उसे आजमा तो नहीं रही है, कि यह लड़की अब भी यहाँ रहना चाहती है कि नहीं। वह यहाँ से भागना तो नहीं चाहती।

उसे सहानुभूति भी थी। उसके होने से तो घर का कारखाना चल निकला था। और अभी तो ठीक से चला भी नहीं, तब वह कैसे जा सकती है। इस मकान की दीवारों से भी उसका घोर परिचय हो गया

था। यह घर जहाँ उसने अपने पिछले दिनों को दफ़न कर दिया, इस मजार पर बैठ कर रोने की उसकी आदत कैसे छूटे, और फिर आगामी जीवन में पता नहीं क्या मुसीबतें और कठिनाइयाँ होंगी।

जहरा के दोबारा पूछने पर उसने धीरे से कहा—

'आप दोनों का ख्याल आता है। यह घर छोड़ने को जी न चाहेगा।'

'तुम हमारी चिन्ता न करो। उन्होंने हमारा प्रबन्ध पहले कर दिया है। और तुम कौन-सा उम्र भर के लिए जा रही हो। जितनी देर तुम वहाँ रहोगी, हमें पाँच सौ रुपये मासिक मिलते रहेंगे। पाँच सौ कोई कम रक़म नहीं। संभव है फूफी कुछ प्रबन्ध कर ले। अब उसे कुछ अनुभव हो गया है।'

सपना ने 'हाँ' कह दिया। जहरा ने फिर कहा—

'तू इतना सोच मत कर। सोचते रहना इन्सान को व्यर्थ बना देता है। तुम निश्चिंत रहो, उन्होंने बार-बार फूफ़ी से कहा, मेरे नाम पत्र लिखे—आज वे खुद आते परन्तु कोई काम आ पड़ा। उन्हें बहुत पहले से जानती हूँ। बहुत ही भले आदमी हैं।'

दिन ढले तक दोनों के बीच बात होती रही। जहरा ने सपना को तैयार कर लिया था।

बाहर तेज़ हवा चलने लगी थी। एक तेज़ झोंके ने खिड़की के हल्के पट को झटके से खोल दिया। ठंडी हवा उनके चेहरों से टकराई—

'मौसम बदल रहा है।'

जहरा ने उठते-उठते कहा और बैसाखी सँभाल ली। सपना उसे बाहर जाते देख रही थी। हवा के तेज़ थपेड़े अपने साथ बेजान आवारा पत्तों को उड़ा लाये थे। अब ये पत्ते आँगन के पक्के फ़र्श पर सर पटकते फिर रहे थे। सपना ने देखा इन पत्तों की कई किस्में थीं। रंग, शक्लें और नस्लें एक दूसरे से अलग थीं। ये किन-किन वृक्षों से टूटकर और पता नहीं कहाँ-कहाँ लुढ़कते यहाँ आये थे।

उसने दरवाज़े में खड़े-खड़े ज़हरा से पूछा—

'ईंट और पत्थर के मकानों के सिवा यहाँ दूर-दूर तक वृक्ष नहीं, ये कहाँ से आ जाते हैं ?'

'इसी तरह आते हैं और चले जाते हैं।' कहते-कहते ज़हरा स्नानघर से चली गई। और सपना ने कमरे का दरवाज़ा बन्द करके साँकल चढ़ा दी।

□□

रोशनी झीने पर्दों से छनकर अन्दर आने की चेष्टा कर रही थी। हाथ बढ़ाकर उसने सिरहाने की दीवार में बाहर खुलने वाली खिड़की का परदा सरका दिया—पतझड़ की फीकी सुबह कब की फैल चुकी थी। वह अंगड़ाई लेकर उठी, दोनों पर्दों को हटा दिया और अपना माथा खिड़की की जाली पर रख कर बाहर की दुनिया देखने लगी। वातावरण में गोबर की और उपले जलने की गंध फैली हुई थी। आम, माल्टे और नींबू के वृक्ष पंक्तियों में दूर तक फैले हुए थे। बड़ के पुराने वृक्ष पर चढ़ी हुई अंगूर की बेल नीचे तक झुक आई थी। पतझड़ का प्रभाव अंगूर की बेल पर अधिक था। आमों पर नई कोपलें फूटी थीं। उस समय हवा वृक्षों से दामन बचाकर चल रही थी। सपना का जो चाहा वह अंगूर की बेल को परे हटाकर उससे भी परे देखे। कहीं से दूध बिलोने की आवाज़ निरन्तर आ रही थी। और चिड़ियों के झुण्ड बाग में उगी हुई घास पर दाने की तलाश में शोर करते फिर रहे थे। यह सब कुछ देखकर उसे अपना घर याद आया। दिल पुरानी यादों के ताजमहल पर नया चाँद उगते हुए देख रहा था। उसने लम्बी ठंडी साँस लेते हुए कमरे को

दरवाजे पर खटखटाहट हुई। सपना ने उठकर खोला। रात वाली नौकरानी नाश्ता देने आई थी। रात का खाना अभी उसी तरह रखा था। सफर की थकान, नया वातावरण, ज़हरा और मौसी से बिछुड़ने का दुःख, खाने की तरफ उसका ध्यान ही न गया। रात तो वह पानी के कुछ घूँट पीकर बत्ती बुझाकर लेट गई थी। बिस्तर हालांकि नर्म था परन्तु उसे नींद न आई।

नौकरानी नाश्ता रखकर कुछ देर रुकी रही। फिर सपना की खामोशी को जाँचने के लिए पूछा—

'किसी और चीज़ की आवश्यकता है। स्नानघर कमरे के साथ है।' उसने परदा गिरे हुए एक दरवाजे की ओर संकेत किया।

सपना ने कहा, 'ठीक है, शुक्रिया।'

नौकरानी चली गई। सपना को लगा कि यह औरत बड़ी तेज़ है और उसकी आँखों की तेज़ी मुन्दरा के मुहल्ले की औरतों से मिलती-जुलती है।

गर्म पानी से नहा कर उसे यूँ महसूस हुआ जैसे हल्की-फुल्की हो गई हो। अब उसने कमरे को ध्यान से देखना शुरू किया।

दरवाज़ों और खिड़कियों पर कीमती पर्दे लटक रहे थे। हवा से उनमें रहस्यात्मक-सी हरकत होती थी। जैसे कोई उनके पीछे छुपा साँस ले रहा हो। उसने एक-एक करके सब पर्दों को हटाकर देखा। कमरे में सारा सामान अच्छे स्तर का था, परन्तु ढंग से कोई चीज़ न रखी गई थी। वैसे अलमारियों में किताबें तरीके से लगी थीं। दीवारों पर कला के सुन्दर नमूने भी लगे थे। काली लकड़ी का भारी फ़र्नीचर, सोफे और गद्दियाँ—सुर्ख मखमल से मढ़ी हुई, पूरे कमरे में बिछा फूलदार कालीन जिसमें लाल रंग अधिक उभरा था—पीतल के बड़े-बड़े गुलदस्तों में लगे फूल भी अधिकतर लाल ही थे। वह सिंगार-मेज़ की तरफ बढ़ी और अपने चेहरे को ध्यान से देखा। सुर्ख पर्दों से आती रोशनी ने उसका चेहरा

गुलाबी कर दिया था। उसने पता नहीं क्या सोचा, वह बड़बड़ाती हुई कमरे में टहलने लगी।

लाल-लाल खून ही खून, भला यह भी कोई तुक है। कोई सीमा होनी चाहिये। अचानक उसकी नज़र अपने हाथों पर जा पड़ी।

उफ़! जाने क्या सोचकर ज़हरा ने उसके मेंहदी रचा दी थी। अब उसे अपने हाथों से घिन आ रही थी। हथेली से उठती हुई मेंहदी की महक उसे अच्छी न लग रही थी। सिंगार-मेज़ से कंघी उठाकर उसने अनिच्छा से बाल बनाये। अपने बक्स से नया जोड़ा निकाल कर एक तरफ रख दिया। इस घर के किसी व्यक्ति ने अभी तक उसकी खबर न ली थी। सपना को अमाम-बी पर क्रोध आ रहा था। समय गुज़रता न था।

एक अलमारी खोलकर पुस्तकों को उलटना-पलटना शुरू कर दिया। ये पुस्तकें अधिकतर तस्वीरों से भरी पड़ी थीं। वह जल्दी-जल्दी पृष्ठ उलट-उलटकर देख लेती और फिर उसी स्थान पर रख देती। एक पुस्तक को खोला तो उसकी नज़रें वहीं रह गईं। उसने चुपके से पुस्तक बन्द की और रख दी।

'उफ़ गंदी-नंगी औरतें।'

परन्तु दूसरे ही क्षण उसी पुस्तक को उठाकर वह फिर देख रही थी। उसका दिल धड़क रहा था।

अभी थोड़ी देर पहले वह चाहती थी कि कोई आये, ताकि उसका अकेलापन दूर हो, परन्तु अब उसके कान हर ध्वनि पर खड़े होते कि कोई आ न जाये। स्नानघर में खट-पट हुई, उसने पुस्तक छुपा दी और जाकर झाँका। मेहतर सफाई करने आया था। वह फिर पुस्तक लेकर बैठ गई।

एक औरत बिल्कुल नंगी करवट लिए आईने में अपने हुस्न को देख रही थी। एक और चित्र में एक जवान औरत बड़े अंदाज से सर के पीछे

बाँहें रखे सोफे पर लेटी थी। उसके तन पर कोई कपड़ा न था। दूसरा पृष्ठ उलटा, वही औरत, वही अंदाज़, परन्तु शरीर पर पतला कपड़ा—जैसे कोई किसी की बुराइयों पर दिखावे का पर्दा डाल दे। इनके अतिरिक्त और बहुत-सी तस्वीरें थीं। बैठी, खड़ी, लेटी, नंगी औरतें—इन तस्वीरों के नीचे अंग्रेजी में कुछ लिखा था। काश वह पढ़ सके और जान सके, वे कौन हैं, इस तरह नंगी क्यों खड़ी हैं ?

मुंदरा कई बार उसे गंदी-गंदी बातें समझाया करती थी जिनको सुनकर उसके कानों की लवें तप जातीं और पहलू में दिल यूँ टिक-टिक बजता जैसे तबले परे कोई नाखून से ताल बजाये। उसे इन बातों की कुरेद होती भी तो वह अपने-आप में हिम्मत न पाती कि किसी से विस्तार से पूछे। जहरा ने कभी इस शास्त्र का पाठ न पढ़ाया था। यह काम उसने फूफी के जिम्मे लगा रखा था।

तभी उसे ख्याल आया कि वह उनसे पूछ लेगी। पर कैसे ? सपना ने अपने को ताना देते हुए सोचा—

कैसे पूछ सकूँगी। लाज के मारे मेरे ओंठ न हिल सकेंगे। और जो मैं पक्की बनकर कभी पूछ भी लूँ तो वह सोचेंगे—आखिर को है न वहीं से आई हुई—परन्तु मैं वहाँ की कब हूँ, मैं तो जहाँ की थी, वहाँ आ गई।

वह कपड़े बदल चुकी थी। किसी ने फिर दरवाज़ा खटखटाया। अमाम-बी आई थी। सपना ने खुदा का शुक्र अदा किया कि नौकरानी साथ नहीं। अमाम-बी उसे प्यार देते हुए कह रही थी—

'मेरी बच्ची, अकेले में घबरा गई होगी। मुझे तो सुबह पता चला कि तुम अकेली थीं, मैं इस ख्याल में रही कि साहब तुम्हारे पास होंगे।'

सपना की आँखों में लज्जा और क्रोध घुलमिल गये।

'तुमने ढङ्ग का जोड़ा क्यों नहीं बदला।'

अमाम-बी अपनी हाँके चली गई और रात के खाने पर से रूमाल

उठाकर देखा ।

'ऐ-हे, तुमने रात खाना भी न खाया ? सोचो मैं अपनी मुन्दरा बेगम को क्या बताऊँगी जाकर, कि लड़की ने खाना-पीना छोड़ रखा है, च्-च्-च् ।'

'माँ, रात तुम आ जातीं तो मैं खा लेती । अकेले में जी नहीं चाहा ।' साहब वाली बात सपना जानबूझ कर गोल कर गई ।

'अच्छा अब तुम मेरे साथ नाश्ता करो ।' वह नाश्ता निकालते हुए बुढ़िया से बोली ।

'मैं तो कब का कर बैठी । बच जाये तो चाय पिला देना । तुम खाओ, मैं इतने में तुम्हारी चीज़ें ठीक से लगा दूँ । बेटी, मैंने अच्छी तरह देख-भाल लिया है । अमीर घराना है, बस ज़रा साहब पर नज़र रखना, फिर कोई बात नहीं । इस निगोड़ी शाइस्ता को मुँह मत लगाना । मैंने एक रात में भाँप लिया कि यह कौन चीज़ है ।'

अमाम-बी घर की डायरेक्टरी पढ़ आई थी और अब एक ही साँस में सपना को बता देना चाहती थी । सपना जानती थी कि अमाम-बी बढ़िया सौग़ात की पुड़िया है । सपना ने पूछा—

'माँ, यह शाइस्ता कौन है ?'

'वही जो तुम्हें रात यहाँ छोड़ गई थी । एक मुसीबत है । सारे नौकर उससे काँपते हैं । सुना है साहब भी दबते हैं उससे ।—और यह भी सुना है कि वह बड़े साहब की कुछ थी । खुदा जाने—बस तुम ख्याल ही रखना ।'

अमाम-बी उसके कान पर यूँ झुक गई जैसे पड़ोसिन नई ब्याही बहू को सास के विरुद्ध भड़काये ।

'पर माँ वह क्या बिगाड़ेगी ?'

सपना इस मामले को कठिन न समझती थी ।

'लो भला । लड़की, तुझे क्या मालूम—मैं जानूँ बाप मरा तो बेटे के

साथ लग गई होगी। मर्द को तो औरत चाहिये। ये मर्द केवल माँ-बहन पर तोबा करते हैं, वह भी दुनियादारी के लिए, वरना कौन जाने दिलों में क्या शैतानी होती होगी।'

सपना ध्यान से खाने में लगी थी। समझाते हुए बोली—'किसी पर ऐसे ही संदेह नहीं किया करते।'

'ऐ लो। मैं जो इन हालों में हूँ—पूछो, किसकी मारी? मौसी के पूत ने रौंद के रख दिया। क्या मैं उसकी बहन न लगती थी?'

अमाम-बी की आवाज भर्रा गई। उसने अपना सूखा कमजोर हाथ सपना के सर पर रख दिया—

'मेरी बच्ची!'

और सपना को पता चला कि यह सठियाई हुई बुढ़िया पानी का उबलता हुआ चश्मा है जिसके मुँह पर समय का पत्थर पड़ा है। उसमें से कभी-कभी कोई धार फूट बहती है। उसकी कहानी सुनने के लिए कोई रुकता न था। उसके ऊपर से भारी पत्थर को उठाने की शायद किसी ने चेष्टा न की थी। वह केवल नौकरानी थी, और नौकरानी को कौन पूछता है। सपना ने बुढ़िया का ध्यान बटाना चाहा—

'तुम मेरी चिन्ता में क्यों घुली जाती हो। सब ठीक हो जायेगा।'

'हाँ-हाँ, ठीक है। जो कुछ समय के लिए पत्थर पास पड़ा रहे तो उससे परिचय-सा लगने लगता है। तुम तो इन्सान हो—तुम ही घर का सब कुछ हो। खुदा न करे तुम्हें कुछ हो जाये। तोबा-तोबा, मेरे मुँह में कीड़े—' अमाम-बी गालों पर थप्पड़ मारती बोली।

'मुझे पता है तुम कई मुजरों में हो आई हो—पर पाबन्दी कुछ और ही चीज है। यह शाइस्ता इस घर की मिट्टी का कीड़ा है। ध्यान रखना यह कीड़ा नाग न बन जाये तुम्हारे लिए।'

सपना उसकी बातों से उकता गई थी। वह घर के मालिक के बारे में कुछ भी न पता कर सकी थी। उसने कहा—

'माँ, बर्तन तुम ले जाओ। हाँ, वह साहब बहादुर कहाँ हैं। कैसे बहादुर आदमी हैं कि हमारी गंध पाते ही छिप गये।'

सपना इस बात को रात से दबाये बैठी थी। आखिर पूछ ही लिया। वह इतना अवश्य जानती थी कि प्रेम करने वाले तो प्रेमी की प्रतीक्षा में दिल थाम के खड़े रहते हैं। यह कैसा चाहने वाला है कि उसके लिए वह खुद दिल हाथों में लिये खड़ी है और कब से खड़ी है।

अमाम-बी लाड़ से बोली—

'उनका मुझे क्या मालूम, मैं जानूँ तुमने कहीं छुपाकर रखा है कि हम न देखें।'

अमाम-बी पोपले मुँह से हँसी। सपना की आँख में प्रसन्नता की चमक लहराई। अमाम-बी चुपचाप देखती रही। सपना ने कहा—

'जिनके लिए हम आये वह यहाँ नहीं तो हमारा क्या रहना। हम शाम तक राह देखेंगे और चले जायेंगे। तुम खुद ही तो कहती हो शाइस्ता खतरनाक औरत है।'

'ऐसी-तैसी उसकी। हम उससे डरकर भागने वाले नहीं। सुना है हमारे आने से पहले शहर से तार आया था। कोई अपना बीमार है। तुरन्त चले गये। हमारे बारे में कह गये थे। विवशताएँ होती हैं इनसान की। शहर कौन-सा दूर है आ जायेंगे। मुझे अपनी चिन्ता हो रही है कि अधिक देर यहाँ टिक गई तो मुंदरा बेगम घबरा जायेंगी। मेरा तो जी चाहता है तुम्हारे पास ही रह जाऊँ। तुम्हें नौकरानी की आवश्यकता भी होगी। पर वहाँ मेरी आवश्यकता इससे भी दुगुनी है। नमक खाया है। तीनों एक से हैं। मिलकर बैठ रहेंगे। आशा है जहरा के गाने की साख कायम रहेगी। तुम भी तो वापस चली जाओगी। उम्र तो न हारोगी यहाँ।'

सपना का दिल कह रहा था—

'तुम एक उम्र कहती हो। मुझे जितनी उम्रें मिल सकें यहाँ हार

हूँ। तुम क्या जानो कितने जनम खोकर यहाँ पहुँची हूँ।' मगर उसने केवल इतना कहा—

'और क्या कहते ये लोग उनके बारे में ?'

वह नाश्ता समाप्त कर चुकी। अमाम-बी बर्तन इकट्ठे कर रही थी और उसके मस्तिष्क में सपना के लिए चिन्ता थी।

'इतना कम खाना भी अच्छा नहीं।'

'माँ, उन लोगों से कहना मैं नाश्ते में इतना कुछ नहीं खाया करती।'

'हाँ-हाँ, मगर तू कुछ खाया-पिया कर लड़की—इस उम्र में खाया काम आयेगा।'

अमाम-बी चली गई। सपना आईने के सामने बैठी सिंगार में व्यस्त हो गई।

□□

साये ढलते ही बंगले के आस-पास जीवन फैल गया। लोग दिन भर के काम-काज से छुट्टी पा चुके थे। औरतें, जवान, बुढ़ियाँ, बच्चियाँ-दासियाँ, लौंडे-लपाड़े बाग के कुएँ पर जमा थे।

दूसरी तरफ बाबा करमू चौकीदार की नौजवान बहू ज़रदाँ-बीबी गलियारे में चारपाई डाल कर बिस्तर लगा रही थी। उसका देवर, धीरज हुक्का ताज़ा करके रख गया था और अब चिलम में आग रखे फूँकों से सुलगाता चला आता था। भाभी के पास आ कर उसने ज़ोर से फूँक मारी और कई चिनगारियाँ उड़ कर बिखर गईं। ज़रदाँ ने आँचल सरका कर देवर को घूरा—

'मसखरियाँ करता है रे—जो आग लग जाये तो—आ लेने दे तेरे

भैया को।'

धीरज ठहाका लगा कर हँसा—'आग ही तो लगाना चाहता हूँ भाभी। भैया क्या बिगाड़ लेगा मेरा ?'

वह चिलम हुक्के पर जमाये यूँ मज़े में कश ले रहा था जैसे पंचायत का चौधरी हो।

धीरज करमू की सबसे छोटी औलाद था, चहेता और मनचला। घर भर की आँख का तारा, और बकौल बाबा करमू पक्का बदमाश। करमू जब उसे पक्का बदमाश कहता तो अजीब-सा मज़ा महसूस करता। जैसे बदमाशी कोई बड़ी खूबी हो जिसे वह बेटे में देख कर गर्व कर सकता है। उसकी बदमाशी यही थी कि वह अच्छे स्वास्थ्य का, और शोख था। कभी इसको छेड़ा, कभी उसको तंग किया।

देवर-भाभी की छेड़-छाड़ लगी रहती। बावजूद धमकी देने के कि वह अपने पति को बता देगी वह कभी शिकायत न करती थी। बच्चा है, इसी के दम से तो रौनक है। ज़रदाँ यही सोचकर क्षमा कर देती।

परन्तु जब से ज़रदाँ को धीरज के दिल में किसी और मूर्ति की परछाईं का संदेह हुआ था वह ताने और जली-कटी सुनाने से बाज न आती। धीरज अपने बाबा की चारपाई पर इस समय धरना धर कर यूँ ही तो न बैठा था। ज़रदाँ खूब जानती थी कि साँवरे माली की जवान लड़की काजल पानी भरने गई है। वह अभी गलियारे से गुज़रेगी।

'जा रे, बिस्तर लग गया। उनकी चिलम पिये जाता है। बाबा को बुला ला न।'

धीरज ने चिन्ता प्रकट करते हुए कहा—

'इस सर्दी में तो चौकीदारी मैं करूँगा। बाबा इस उम्र में ठंडी रातों को जागते हैं।'

'हाँ-हाँ रे—मैं खूब जानती हूँ। तेरी रातों की नींद जो उड़ गई है। साहब कोई ऐसे सीधे तो हैं नहीं कि जो छोकरे-बाले को चौकीदार

बना लेंगे। प्रेमी क्या चौकीदारी करेगा रे, समझे।'

'ओह—भाभी, तू तो बड़ी समझदार हो गई है। तू तो बिल्कुल बदल गई। भाभी, मैं तो तुझे अब भी उतना ही प्यार करता हूँ—थोड़े चने तो खिला।'

'जा बक-बक न कर, आया बड़ा प्यार जताने वाला।'

ज़रदां मजे से गुड़ और चने खा रही थी। देवर का हाथ बढ़ा देखा तो और बड़ाई में आ गई।

'पेट भर रोटी जो मिलती है। बाबा ठीक ही कहता है। तू है ही बड़ा बदमाश!'

धीरज को विश्वास था कि भाभी उसके रहस्य से परिचित है। पर वह सीधी तरह उसे प्रकट भी न करती थी। और न खुद उसमें इतनी ढिठाई आई थी कि खुल कर दिल की बात कर सके।

करमू के घर में ज़रदाँ एक ही औरत थी। धीरज के दिल में काजल का ख्याल पैदा हो जाने से उसे ईर्ष्या-सी हुई, दूसरी तरफ़ ज़िम्मेवारी थी कि सब उसीको देखना-करना है। नौजवानों की शादियाँ समय पर न की जायें तो खराबियाँ करते फिरते हैं।

'भाभी।'

'हूँ।'

'तुझसे एक बात पूछूँ।'

'क्या है रे?'

वह कुछ देर चुप रहा। हिचकिचाहट उसे मन की बात कहने से रोकती थी। इसलिए उसने बात बदल दी।

'भाभी, सुना है, साहब नई औरत लाये हैं।'

भाभी ने बिना चौंके कहा—'लाये हैं तो तुम्हें क्या?'

'किसी एक से शादी क्यों नहीं कर लेते?'

'तू कौन होता है रे, वह जो भी करें मालिक हैं। तू अपनी कह।'

भाभी ने देवर को आगे न कहने दिया। भला जिसका नमक खायें उसी की बातें बनायें। ऐसा तो न होना चाहिये। इस समय धीरज को खुद भी इस मामले में दिलचस्पी न थी। वह तो भाभी को बातों में लगा कर अधिक देर गलियारे में बैठना चाहता था।

मोड़ पर ठहाकों की आवाज़ हुई। छोटी लड़कियाँ सिर पर पानी से भरी गागरें रखे तेज़-तेज़ चली आ रही थीं। उन्होंने शर्त लगा रखी थी कि देखें कौन आगे निकलता है। ज़रदाँ की सात-आठ साल की बच्ची सिर पर छोटी-सी गगरी रखे सबसे आगे दौड़ी आती थी। माँ के पास आकर रुक गई और धीरज से कहा—

'धीरू चाचा, उधर कंजरी आई है। हमने झाँका, थोड़ी नज़र आई। साहब पकड़ कर लाये हैं।'

ज़रदाँ ने उससे गगरी पकड़ ली और एक घूँसा कमर में दिया। धीरज ने लड़की को अपनी तरफ खींच कर चारपाई पर बिठा लिया। नौजवान को कुरेद हुई। उसने धीरे से पूछा—

'अच्छा बाली, तुम झाँकी, कैसी थी वह ?'

'हाँ—रमता कहती है कंजरी के यह बड़े-बड़े दाँत होते हैं। लम्बे-लम्बे कान, पैर पीछे को, चुड़ैल होती है—चिमट जाती है—हाँ !'

बाली चोर आँखों से माँ को तरफ देखती सूचनायें दे रही थी। ज़रदाँ को हँसी आ गई।

'तू उधर मत जइयो—पकड़ लेगी।'

ज़रदाँ ने बेटी को समझाया और बाली ने छोटे-छोटे हाथ जोड़कर उधर जाने से बच्चों जैसी तोबा की।

'हाँ-हाँ बाली, फिर—'

बाली ने ज़ोर-ज़ोर से पाँव झुलाते हुए माँ की तरफ देखा और सोचते-सोचते कहा—

'धीरू चाचा, हमने झाँका तो वह औरत थी।'

देवर भाभी दोनों हँस पड़े ।

बाली और धीरज की बड़ी मित्रता थी । बाली ने अक्सर जरदाँ का मक्खन चुरा कर चचा को खिलाया और चचा भी कहीं जाता तो कभी खाली हाथ न आता । चूड़ियाँ, खिलौने, मिठाइयाँ वही ले कर आता था उसके लिये । बाली समझदार बच्ची थी परंतु उसमें एक बात बहुत खराब थी—इधर की बात उधर निकाल देती । मक्खन चुराने पर माँ की एक चपत खाते ही कह देती—

'चाचा ने कहा था चुराने को ।'

फिर देवर-भाभी की लड़ाई होती और बाली की पिटाई—परन्तु इन दिनों बाली कुछ अधिक समझदार हो रही थी ।

पनिहारिनों की टोली गुज़र गई । उनमें काजल न थी । वह हवेली के ऊपर चक्कर काट कर गुज़र गई होगी । धीरज ने दिल में सोचा और दबी-दबी ठंडी साँस भरी—अगर भाभी घर चली जाये तो वह खुद चक्कर लगा कर देख आये या बाली ही को भेज कर पता करे । भाभी को संदेह है तो खुल कर क्यों नहीं कहती । कुछ देर तीनों चुप बैठे रहे । बाली चाचा के नये रेशमी फूलों वाले रूमाल से खेल रही थी । धीरज का जी उड़ा जाता था । कहीं वह रूमाल को अधिक खराब न कर दे, और जो कब्ज़ा ही जमा लिया तो ? वह तो यह काजल के लिए पहला उपहार लाया है । ज़रदाँ आकाश पर पहले सितारे की तलाश करती जाने के लिए उठ खड़ी हुई । काजल पास से गुज़री । उसके पाँव के छागल बज रहे थे, और मटकियों से पानी छलक रहा था । कमीज़ भीग कर शरीर से चिपक गई थी । जरदाँ की नजर पड़ी और उसने कहा—

'सहज चलो न ।'

धीरज चुपचाप देख रहा था । बाली खिल-खिल हँसी—

'चाचा—ही—ही—ही-ही !'

□□

नर्म बिस्तर काँटों की तरह चुभ रहा था। साहब आज भी न लौटे थे। प्रतीक्षा ने आँखें पका दी थीं। उनमें नींद कहाँ—ऐसा न हो उसकी आँख लगे और वह आ जायें। अमाम-बी वादे के बावजूद उसके कमरे में सोने न आई थी। धीरे-धीरे रात का आंचल भीग चला था।

जाने कौन-सा पहर है? उसने अपने आपसे पूछा। इस नये स्थान में वह अंदाजा न कर सकती थी। लैम्प की लौ काँप रही थी। और कमरे की हर चीज रोशनी के साथ डोल रही थी। समय रेंग रहा था। कभी-कभी चुप्पी को तोड़ती चौकीदार के लट्ठ की आवाज—

खिड़की के पास सूखे पत्ते चरमराये। कोई ध्यान से क़दम रखता चला आ रहा था। सपना के कान खड़े हो गये। धीरे से खिड़की खोली और बाहर झांका। आवाजें। आदमी एक से अधिक थे। सपना ने बत्ती बिल्कुल नीची कर दी और दूसरी खिड़की खोल दी। अब वह इन परछाइयों को निकट से देख सकती थी।

'तुमने मुझे इधर क्यों बुलाया? कुत्ते पीछे पड़ गये तो?'

यह औरत की आवाज थी।

'असल में बाबा इधर नहीं आते। साहब ने खुद मना किया है कि मेरे कमरे के पास लट्ठ मत चलाया करो, नींद खराब करते हो।'

'तुम्हें हर एक खबर है।'

वृक्षों के पत्तों से पिछले पहर की चाँदनी ताक-झाँक कर रही थी। स्नानघर की दीवार के साथ लगी उसे दो परछाइयाँ नजर आईं।

'काजल।'

'हूँ ।'

'तू दूर क्यों खड़ी है । मेरे पास आ न ।'

'दूर रहना अच्छा होता है ।'

लड़की की आवाज में मिठास थी और लड़के की आवाज में नशा ।

'तो फिर प्यार क्यों करती है ?'

काजल दो कदम सरकते हुए डर रही थी ।

'धीरू, जो लड़की-लड़का पास-पास बैठें तो काम खराब हो जाता है ।'

'वह कैसे री ।'

धीरज ने उसके निकट खिसकते हुए कहा ।

'बच्चा हो जाता है ।'

काजल ने धीमे से कहा । मगर धीरज अपनी हँसी न रोक सका ।

धीरज ने उसे बाहों में जकड़ कर कहा, 'हम ऐसा नहीं करेंगे पगली ।'

काजल ने बेचैन होकर पूछा, 'छोड़ तो न देगा रे ।'

'तुम्हारे सिर की सौगंध—'

धीरज ने काजल की आंखों पर ओंठ रख दिये । चाँद एक बड़े वृक्ष की ओट में हो गया । सपना ने आँखें मूंद लीं और वहाँ से हट गई । बाबा करमूं की लट्ठ की आवाज सो गई थी । सपना के तमाम शरीर ने एक तनाव महसूस किया । यह घड़ी उसे अकेलेपन की तमाम घड़ियों से लम्बी लगी । जैसे वह भी पत्थर की बनी हो और समय भी पत्थर हो गया हो ।—वे दोनों क्या बातें करते रहे, उसने अधिक जानने की चेष्ठा न की । उसे तो यह डर था, कहीं कोई उनकी शिकायत न कर दे ।

'प्रेम का हर रास्ता कठिन है—मेरे अल्ला, मेरी मंजिल कहाँ है ?' उसने बिस्तर पर दोबारा लेटते हुए सोचा ।

□□

मिलन की रात की सुबह की पीड़ा कोई उस व्यक्ति से पूछे जिसने आँखों-आँखों में रात काटी हो, और उजाला फैलने से पहले आशाओं के सारे दीपक अपने हाथों से बुझा दिये हों।

रात अपने-आप को समेट रही थी। आंगन की दीवार के परे गाड़ी रुकने की आवाज़ आई। सपना ने धड़कते दिल पर हाथ रख लिया—कोई आया है ?

'सलाम हज़ूर—'

करमू बाबा की नींद में डूबी आवाज सुनाई दी।

'हज़ूर, बेगम साहिबा की तबीयत अब कैसी है ?'

'ठीक है।'

किसी ने बरामदे की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए उत्तर दिया। वह सपना के कमरे की तरफ आ रहा था।

'हज़ूर, इधर मेहमान उतरे हैं।'

'कौन मेहमान।'

सपना का दिल डूब गया।

'आप ही के हज़ूर।'

'ओह—अच्छा—मुझे साथ वाला कमरा खोल दो।'

'आप रात ही में क्यों न आ गये। बहुत राह देखी।'

'बाबा, मैं यहाँ नजदीक कहाँ था। दो-तीन सौ मील दूर पहाड़ों का चक्कर लगा कर आ रहा हूँ। और तो घर में सब ठीक है न ? स्नानघर में पानी रखवा दो। मैं पहले नहाऊँगा।'

करमू ने कमरा खोला और बाकी सारे कामों के लिए अच्छा कह कर चला गया। सपना दरवाज़े के साथ लगी सुनती रही। आने वाला व्यक्ति बरामदे में उससे कुछ कदम दूर खड़ा जाने क्या सोच रहा था।

सुबह होने में थोड़ी देर बाकी थी। बाग में लोगों के पानी भरने के लिए रहट चल पड़ा था। हर तरफ आवाज़ें फैल गई थीं। सपना ने रात के बासी ठंडे पानी से स्नान किया और अपना सबसे बढ़िया जोड़ा निकाल कर पहना। वह प्रसन्न थी, बहुत ही आशावान! लैम्प की रोशनी में आईने के सामने बैठी बनाव-सिंगार करती कभी गुनगुनाने लगती—

'आज बलम संग रूठूँगी—' और कभी मुस्कराने लगती।

आँखों में काजल की शोख लकीरें खींचीं और ओठों को गहरे रंग से सजाया—फिर धीरे से सांकल खोल कर दरवाजे खुले छोड़ दिये, और खुद एक अदा से बिस्तर पर अधलेटी हो गई—उसका दिल ढारस पकड़ चुका था—वे आ गये थे—धीरे-धीरे बिस्तर की नर्मी और गर्मी ने अंग-अंग को सुस्त कर दिया और वह बिना जाने नींद की गोद में चली गई।

दरवाजे पर हल्की-हल्की आवाज़ हुई। वह संभल कर बैठ गई और सुनाने के लिए खांसी कि वह जाग रही है।

'आ जाऊँ हज़ूर।'

किसी ने नौकरों वाले लहजे में कहा।

'आ जाओ।'

उसका जी जल कर रह गया। खद्दर की चादर ओढ़े एक बूढ़ा नौकर कमरे में आया। सपना ने देखा, वह पूना से मिलता-जुलता था। वह चौंक-सी गई। और कितनी देर बिना कुछ बोले बूढ़े को घूरती रही। उसके सलाम का उत्तर भी न दिया। नींद से धुँधलाई आँखें कहती थीं, पूना है। निश्चय ही अब्बा-मियाँ हैं।

बूढ़े ने उसे अपनी तरफ देखते देखा तो पूछने लगा—'क्या है हज़ूर? हमने कच्ची नींद जगा दिया।'

'तुम कौन हो बाबा ?'

'मैं—मेरा नाम सांवरा है हज़ूर। सरकार के बाग में काम करता हूँ। घर में भी हाथ बटाता हूँ। और कभी-कभी गाड़ी भी चलाता हूँ।'

सांवरे की दाढ़ी के बाल खिचड़ी थे। सपना उसमें अब्बा-मियाँ को देख रही थी।

'आप हैरान क्यों हैं—मेरा मतलब है—सरकार आपको नाश्ते पर याद कर रहे हैं।'

'क्या ?'

'सरकार ने आपको बुलवाया है हज़ूर।'

सपना पलंग से उठकर आईने के सामने चली गई। उसने कहा—

'तुम यहाँ रहते हो—तुम्हारा घर यहीं हैं ?

'हाँ हज़ूर—मेरी दो बेटियां हैं, निर्मल और काजल। बड़ी की तो शादी कर दी। छोटी काजल मेरे पास है। अभी यहाँ थी। फूल बीन कर ले गई है। हज़ूर के लिए गजरे पिरो कर लाये ? बड़ी शरारती है जी।'

काजल की वह रात मिलन की थी। सपना ने दिल ही दिल में सोचा। तमाम देहाती बूढ़े इसी तरह से मासूम और संतुष्ट होते हैं, अब्बा मियाँ की तरह। शायद इस स्थान पर उसे अपनी खोई हुई जन्नत मिल जाये। यहाँ अब्बा-मियाँ जैसे लोग बसते हैं। इन लोगों को देखकर वह पुराने दिन याद कर लिया करेगी। मुन्दरा मौसी के घर ये लोग कहाँ थे। और क्या खबर वे अब्बा-मियाँ को तलाश कर दें। वह उसकी इच्छा को रद्द नहीं करेंगे। वह उसे चाहते न होते तो इतनी दूर से बुलवाते ही क्यों ?

वह बिना झिझक हार-सिंगार में व्यस्त थी। साँवरे की उपस्थिति को भुलाये हुए। साँवरे ने बेकार खड़े रहने की बजाय अपनी चादर की पल्लू से मेंटल-पीस की चीजें साफ करना शुरू कर दीं। सपना नहान-घर

में चली गई। थोड़ी-सी नींद ने मुँह का स्वाद खराब कर दिया था। उसने वे सारे जतन किये जो मुन्दरा और जहरा उसे मर्दों की महफ़िल में ले जाने से पहले करवाया करती थीं।

सपना के हाथ-पांव में जैसे शक्ति न थी, और दिल पहलू से भागा जाता था। वह शरीर को सुगन्धियों में बसा के चली तो साँवरे ने अपने दिल में कहा—'आखिर तो बाजारी है', और मुँह दूसरी तरफ़ फेर लिया। उसकी काजल यूँ बन-ठन कर चलती तो ज़िंदा गाड़ देता, बूढ़े ने गर्व से सोचा और सपना के आगे चलने लगा।

'हमारे मालिक बहुत शरीफ़ हैं। यूँ बात दूसरी है, उन्होंने हमारी बहू-बेटियों पर कभी बुरी नजर नहीं डाली।'

वह अपने-आप में जैसे बोल रहा था। सपना को केवल इतना याद था :

'मैं जा रही हूँ, अपनी मंजिल के पास—छोटी-सी नदी की तरह दरिया से मिलने चली हूँ। मैं पानी की एक बूँद हूँ। मेरा महत्व ही क्या है। धरती पर टपकी तो बिखर गई। सागर में गिरी तो सँवर गई—मैं सागर से मिलकर अमर होने जा रही हूँ।'

डर और शौक की इन्तिहा थी कि क़दम उठते न थे। वह रेंगती हुई चल रही थी। साँवरा जाने किस सोच में गुम था। हाँ कमरे के दरवाज़े पर जाकर वह रुक गया। और पर्दा सरकाते हुए बोला—

'चलिए हजूर, अन्दर तशरीफ़ ले चलिए।'

सामने से एक नौकर चाय लाता दिखाई दिया। सपना ने जाने किस ख्याल से चाय की ट्रे उसके हाथ से पकड़ ली—

'यह मैं लिए जाती हूँ, तुम लोग जाओ।'

उसमें ऐसी हिम्मत पता नहीं कैसे आ गयी। नौकर हैरान थे कि पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ।

'सरकार बुरा मानेंगे।'

नौकर डरते-डरते कह रहा था ।

'नहीं मानते बुरा ।'

सपना के कानों में जहरा की कही हुई बातें गूँज रही थीं। पहले दिन से प्रभाव डालने की चेष्टा करना । संभव है वह भाग्यशाली औरत तुम हो जिसे वह बीवी बनाकर रख ले ।

नौकर चले गये । सपना ने कमरे में प्रवेश किया । वे मुँह में पाइप दबाये दरवाज़े की तरफ पीठ किये अखबार देख रहे थे। सिर के इर्द-गिर्द सफ़ेद बालों का घेरा था । कन्धे चौड़े और मजबूत दिखाई देते थे । किसी की चाप सुनकर देखे बिना उन्होंने कहा—

'आ जाओ ।'

सपना नजरें झुकाये आगे बढ़ी । उनके ख्याल में नौकर चाय रखने आ रहा था ।

'आदाब अर्ज़ ।'

पायल जैसी छनकती आवाज़ सुनकर वह अचानक पीछे मुड़े ।

'हूँ'

'आप ?—आप वह तो नहीं—सरदार साहब ।'

उसके मुँह से इतना निकला और वह लड़खड़ा कर फर्श पर गिर गई । आँखों के सामने कमरा और उसकी हर चीज घूम रही थी। वे घबड़ाहट में उसको उठाने की चेष्टा कर रहे थे। वह बर्तन और चीजें समेटती धीरे-धीरे रो रही थी ।

'आप रो क्यों रही हैं ?'

वह उसे उसी हालत में छोड़कर खड़े हो गये।

'यह सब टूट जो गया । और मेरे हाथ से छूट गया ।'

उसने नजरें झुकाये-झुकाये उत्तर दिया । वह मुस्करा दिये। सारे बर्तन टूट गये थे । सपना ने महसूस किया वह नंगे सिर है ।

'अजीब तरीके से मुलाकात हुई ।'

उन्होंने उसे बाँह से पकड़ कर निकट कर लिया। और मुस्कराकर सपना की आँखों में झाँका। सपना ने नज़रें झुका लीं और अपना भारी सिर सरदार साहब की छाती पर रख दिया। वह उसके बालों से खेलते जाने क्या कह रहे थे। सपना के काँपते ओंठों पर कोई बात न थी। वह आँखें बन्द किये कितनी देर तक इस नये सहारे से लग कर खड़ी रही, कुछ बोली नहीं। नौकर खखारता हुआ कमरे में आया तो वे अलग हो गये।

दूसरी सुबह अमाम-बी घर वापस जाने वाली थी। सपना ज़हरा को बहुत-सी बातें बताना चाहती थी, इसलिए उसने एक लम्बा पत्र लिखा—

'अच्छी आपा—'

सोचती हूँ क्या लिखूँ और क्या न लिखूँ। तुमसे बिछुड़ने का दुःख अधिक था या अब दूर रहने का ग़म। आप कहेंगी, मैं खुश हूँ—हाँ, यहाँ का वातावरण और मौसम, यहाँ के लोग—सब ऐसा लगता है मेरे अपने हैं। पर मैं इनमें वापस आकर फिर खो गई हूँ। अब मैं अपने आपको कहाँ-कहाँ ढूँढ़ती फिरूँगी। क्यों न यहीं रह जाऊँ? आपकी इच्छा भी तो यही है। परन्तु आपा, प्रकृति की मार देखिए। वह, वह तो न निकले जो मैं समझी थी। मैं सपनों के महल बहुत जल्दी बना लेती हूँ। परन्तु महल समय का एक हाथ पड़ते ही धरती पर आ रहते हैं। अब मैं यह सब छोड़कर यथार्थ की दुनिया में आने की चेष्टा करूँगी—आप प्रार्थना करें। सरदार साहब बहुत अच्छे हैं। दो दिन तक तो उनके दर्शन ही न हुए, कहीं बाहर गये हुए थे। कल सुबह आये। मैंने कल के सारे वक्तों के खाने उनके साथ खाये। रात को घुमाने ले गये थे। हाथ पकड़ कर कच्चे-पक्के रास्तों से गुज़रते रहे। आपा, इनके बँगले के आस-पास फूल ही फूल हैं। ये फूल चाँदनी के साथ खेलते हैं। रात हम इनके पास से गुज़रे तो बड़ा अच्छा लगा। हर तरफ सुगन्धि फैली थी। उन्होंने

बहुत से फूल तोड़कर मेरी झोली में भर दिये और कहा, 'झूठे होते हैं, जल्दी मुरझा जाते हैं।' मैंने मुट्ठी भरकर उनके सर पर बिखेर दी और हम बड़ी देर तक हँसते रहे। यह सब कुछ अच्छा लगता है आपा—सरदार साहब अधिकतर चुप रहते हैं। इस समय जबकि मैं पत्र लिख रही हूँ, वे आँगन में एक वृक्ष के नीचे तख्त जमाये बैठे हैं। कल से उन्हें दस-बीस देहातियों के घेरे में ही देखा। पता नहीं लोग क्या पूछने आते हैं और वे उन्हें क्या सलाह देते हैं। तमाम रात प्रतीक्षा करती रही, न बुलवाया न खुद आये। कल मुझे कह रहे थे, तुम्हारा चेहरा चित्रों के योग्य है, चित्र बनाऊँगा। मुझे बड़ी गहरी नज़रों से देखते हैं। उठते-बैठते हँसते-बोलते उनकी आँखें मुझ में कुछ तलाशती रहती हैं। इस व्यक्ति को चाहा जा सकता है आपा? मगर उसको चाहने से पहले मैं अपने दिल के तमाम कोने झाँककर देख लूँगी। उसमें कोई और तो नहीं। और क्या मेरा दिल इतना साफ़ है कि मैं इस तस्वीर को उसमें बिठा सकूँ। उसके साथ-साथ मेरे हालात ऐसे हैं कि हैं उनके साये में शेष जीवन आराम से गुज़ार सकूँ।

स्पष्ट है यह सब असम्भव है, और वह खुद भी ऐसा क्यों चाहेंगे। मैं क्या—मेरी मजाल क्या—आपा! यहाँ दुनिया की हर चीज़ प्राप्य है। सरदार साहब के शौक़ निराले हैं। मेरी माँ की तरह दुनिया के सब जीव जमा कर रखे हैं।

कबूतरबाज़ भी हैं। सुबह उठकर उड़ाते हैं। नीले आकाश पर कबूतरों की टुकड़ियाँ उड़ती-फिरती अच्छी लगती हैं। यहाँ हर तरफ आराम है, काश आप भी यहाँ हों।—और जो मैं कहूँ आपा, आ जायें—तो आ जायेंगी न? मौसी को भी लायें। मगर वे कह रहे थे दो-चार दिन में मुझे अपने पहाड़ वाले बँगले में ले जायेंगे। धान की फसल की कटाई तक वापस आ जाएँगे। उनके ये दिन कुछ खाली-खाली हैं।

हाँ आपा—पहाड़ों पर मेरे चित्र भी बनेंगे—अजीब आदमी हैं न

ये। नौकरानियाँ कहती हैं यह ऐसे ही किया करते हैं। लोग मुझे आश्चर्य से नहीं देखते।—वे आदी हैं आपा। अभी मेरा और अपना इरादा मौसी पर प्रकट न करना। यहाँ मैं अपनी नींद सोती हूँ, अपनी नींद जागती हूँ—पत्र लिखती रहा करोगी न? मैं भी लिखती रहूँगी। और मुझे बेकार पड़े करना ही क्या है यहाँ।

जी चाहता है बच्चों की तरह खुले वातावरण में छलाँगें लगाती फिरूँ। अब यह बात कहाँ। आशा है आपको रुपये समय पर मिलते रहा करेंगे। उन्होंने मुझे बैंक के काग़ज दिखाये थे। मुझे तसल्ली हो गई। मौसी कोई और प्रबन्ध करने की सोच रही होगी। कोई भूला-भटका मुझ जैसा पक्षी आये तो अवश्य बतायें।—विश्वास करें आपा, आप लोग मुझे बहुत याद आते हैं। अमाम-बी से पूछ लेना। वे मानें तो मिलने के लिए आऊँगी।

मौसी को आदाब!

आपकी,

सपना

उसने पत्र में कई बातें झूठ लिख दीं। केवल ज़हरा और मुन्दरा की प्रसन्नता के लिए। निस्संदेह वहाँ ज़हरा की सहानुभूतियाँ उसे प्राप्त थीं। परन्तु यहाँ वह एक की थी, और वहाँ होटल की मेज़ की तरह कोई ग्राहक किसी समय भी कब्ज़ा जमा सकता था। मुंदरा मौसी बैरे की तरह लाख पोंछ-पाँछ कर रखे, धब्बे बढ़ते ही जाएँगे। यूँ रोज-रोज मैली होते चले जाने से यह बेहतर था कि वह यहाँ रहे। सरदार साहब पूछें तो अच्छा, न पूछें तो भी अच्छा। उसे यह डर तो अवश्य था कि नज़र से गिराकर निकाल न दें। परन्तु उसने तय कर लिया था कि वह मिट जायेगी वापस न जायेगी। मंजिल मिले न मिले उसकी राह में मर जाना भी बेहतर है। प्रकृति ने राह निकाली है तो वह उस पर आगे बढ़ेगी, पीछे नहीं।

अमाम-बी को विदा करते हुए उसने इतना कहा—

'माँ—मौसी से कहना, मैं यहाँ जैसी भी हूँ, कुछ दिन बिताकर चली आऊँगी।'

□□

दोपहर के खाने का समय हो चुका था, और सपना का भूख के मारे बुरा हाल था। अमाम-बी की मौजूदगी में उसे अकेलेपन का इतना अहसास न हुआ था। वह हर बात का ख्याल रखती थी। आज सरदार साहब भी पता नहीं किस काम में व्यस्त हो गये थे कि अभी तक लौटे न थे।

घर के दूसरे भाग में क्या कुछ है? यह जानने के लिए सपना का दिल बेचैन था। वह उसे उधर ले ही नहीं गये। भला क्यों? यह भी कोई बात है? वह बैठी-बैठी उकता कर उस दीवार के पास चली गई जो घर को दो भागों में बाँटती थी। बीच का दरवाजा हाथ लगाने से खुल गया। वह चुप खड़ी देखती रही।

दो तरफ इमारत के बरामदे नजर आये। आधा कच्चा आधा पक्का आँगन, कच्चे हिस्से में छोटा सा बगीचा, जिसमें फूलों-फलों के पौधों के अतिरिक्त सब्जियों की बेलें भी चढ़ी हुई थीं, और उसके पुराने पत्तों और फूलों ने वातावरण को उदास बना रखा था। घर में सब तरफ सन्नाटा था, केवल एक आवाज आ रही थी—फट-फट—जैसे कोई रोटियाँ पका रहा हो।

सपना आगे बढ़ी, रसोईघर की दीवार के साथ तन्दूर बना हुआ था, और शाइस्ता खड़ी रोटियाँ लगा रही थी। खानों की गन्ध फैली

थी। वृक्ष की ओट में वह चुपचाप खड़ी रही। कोई उसे देख ले और बुला ले, वह सोच रही थी कि उसने अपने पीछे छोटे-छोटे कदमों की चाप सुनी। मुड़कर देखा।

'खी-खी—'

बाली ने दाँत निकालते हुए कहा।

'सलाम बेगम साहब।'

'तुम कौन हो?'

'मैं, बाली हूँ। सब्जी लेने आयी हूँ।'

बाली ने कटोरा दिखाते हुए कहा। सपना उसे देखकर मुस्कराई। बाली कितनी शोख और निडर थी। बिना पूछे बताती चली गई—

'अम्मा ने दिन-रात छाछ से रोटी खिला-खिला कर स्वाद-बेस्वाद कर दिया। शाइस्ता खाला से सब्जी लेने आई हूँ।'

बाली ने दोबारा स्पष्टीकरण किया। उसने देहाती जवान औरतें और बेगमें तो देखी थीं, मगर ऐसी मुलायम नजरों वाली अब तक न देखी थी।

'बेगम साहब, मैं अन्दर चली जाऊँ?'

'क्या बहुत भूख लगी है तुम्हें?'

सपना चाहती थी वह कुछ देर रुक कर उससे बातें करे।

'हाँ—धीरू चाचा रोटी खा रहा है न।'

बाली ने अपने गोल चेहरे पर गिरती लट से परेशान थी। सपना ने उसे बातों में लगा लिया। कहाँ रहती हो, बाप क्या करता है, घर में कौन-कौन रहता है आदि। और अन्त में उससे मित्रता करने को कहा—

'बाली, देखो तुम हमारी सहेली बन जाओ, मैं तुम्हें बहुत सी सब्जी दिया करूँगी।'

बातों की आवाज सुनकर शाइस्ता रोटी हाथ में लिए-लिए मुड़ी—

'अरे बाली ? किससे बातें कर रही है ?'

सपना ने मुँह पर उँगली रख कर बताने से मना किया तो बाली मुँह बनाती वहाँ से चल दी।

'शाइस्ता खाला मैं आ जाऊँ।'

सपना वहाँ से दूसरी तरफ हो ली। बड़े-बड़े जालीदार दरबों में अच्छी किस्म की मुर्गियाँ—राजहंसों के दो-तीन जोड़े, उनके लिए एक कोने में तालाब-सा बना था। अल्सेशन कुत्तों का जोड़ा ठंडे साये में आराम कर रहा। हर एक चीज मौजूद मगर जिंदगी का अहसास न था। जैसे हर चीज नशे में हो।

उसने एक कच्चा नींबू तोड़ा, सूँघा, और दाँत से काट कर उसे चूसती रही। आँगन की दीवार के पार अचानक ही बच्चों का शोर हुआ। बाली भागती हुई उसके निकट से गुजर गई। सपना की तरफ देखा तक नहीं। सपना को बुरा सा लगा। वह वापस लौट आई। बच्चे फाटक से बाहरे खड़े चिल्ला रहे थे।

'कोयल का मुँह काला, कोयल मींह माँगे।'

इस मौसम में बारिश की बिल्कुल आवश्यकता न थी। और बच्चे अभी तक सावन माँग रहे हैं।

बाली सब से आगे थी। एक हाथ में सब्जी का कटोरा और दूसरा हाथ नचा-नचा कर आवाजें लगाती थी—'कोयल का मुँह काला—'।

शाइस्ता उधर से अनाज से भरा हुआ थाल ले कर निकल आई। बच्चे उस तरफ जाने लगे। 'वह क्या दे'—सपना के दिल में ख्याल आया और वह अपना बटुआ निकाल लाई। जहरा ने वक्त-बेवक्त काम आने के लिये कुछ रुपये साथ कर दिये थे। उनकी आवश्यकता आज तक न पड़ी थी। गेट पर आ कर उसने नोट हवा में लहराया जैसे लोग उसे मुजरे में दिया करते थे।

'बाली—बाली—'

वह बाली को यूँ पुकार रही थी जैसे पुरानी जान-पहचान हो। शाइस्ता की आँखों का उसे पूरा अहसास था—लो भला, इसमें जलन कैसी ?

सपना निश्चिंतता से खड़ी थी। बाली भागी-भागी उसके पास आई। सब्ज़ी गिरने से उसके कपड़े खराब हो चुके थे। उसे घर लौटना बिल्कुल याद न था। बच्चे बाली के पीछे लपके चले आये। शाइस्ता पुकारती-कोसती रह गई। वे बरामदे तक आ गये। ज़ोर-ज़ोर के नारे। ज़िंदगी का दरिया ठाठें मार रहा था। बाली ने सब्ज़ी का कटोरा एक तरफ़ रखा और बच्चों की जमात संभाल ली। सपना की ठहरो-ठहरो की कौन सुनता था। बाली के दो-चार झापड़ों से मामला कंट्रोल में हो गया। वरना सपना को आज शाइस्ता को नीचा दिखाने का पता चल जाता। देहाती बच्चे टूटे पड़ रहे थे, जैसे उन्होंने रुपये कभी न देखे हों।

नोट बँटते रहे, उसके बाद छुट्टे पैसे। वह किसी महारानी की तरह बच्चों को एक-दूसरे पर झपटते-लड़ते-रोते देख रही थी, और प्रसन्न थी। आज उसने पैसे का तमाशा देखा था। और शाइस्ता को जो उससे खुदा-वास्ते का बैर रखती थी, हार दी थी।

बाली ने सारे बच्चों को हाँक कर बाहर भेज दिया, और खुद सपना के पास खड़ी उसे देखती रही। उसके मस्तिष्क में प्रश्न उभर रहा था—

'अच्छा ऐसी औरत को कंजरी कहते हैं।'

आँखों-आँखों में बाली और सपना की मित्रता हो गई।

एक लड़का गेट पर खड़ा रो रहा था।

'बाली, यह कौन है ? क्या हुआ उसे ?'

बाली ने उसे पुकारा—

'कलवा, इधर आ जा। बेगम साहब और पैसे देंगी।'

सपना के पीछे-पीछे दोनों बच्चे कमरे में चले आये। बाली कह रही थी—

'यह मेरे ताऊ का बेटा निहारी है।'

दोनों की उम्रों में अधिक अंतर नहीं था। लड़का गोल-मटोल ठिगने क़द का था। बाली उसे अपना नोट दिखा-दिखा कर चिढ़ा रही थी और उस बेचारे के हाथ मुँह काला करवाने के बाद भी इकन्नी आई थी। वह बाली को गालियाँ दे रहा था। वह और सब कुछ भूल कर खुशदिली से ठहाके लगा रही थी। कितने जीवित क्षण थे ये।

बाली और लड़का चले गये परन्तु वह उनके इस स्वांग के बारे में सोचती रही। भला डोईं का बारिश से क्या सम्बन्ध। पर मींह न बरसे तो फ़सल कैसे हो? फ़सल न हो तो कोई क्या पकाये क्या बाँटे?

दिन के दो बज चुके थे। शाइस्ता खाना ले कर आई तो उसकी भूख मर चुकी थी, और दिल दुःख से भरा था। सुबह से फिर उस व्यक्ति की शक्ल देखने को तरस गई। आखिर वह उसे यहाँ किस मक़सद के लिये लाये थे!

यह अकेलेपन की कैद सपना को खलने लगी थी। वह उम्र के उस दौर में थी जब इनसान अपना अलग घर चाहता है, एक साथी चाहता है।

शाइस्ता को चुप खड़ा देखकर उसने पूछा—

'सरदार साहब कहाँ हैं?'

'हम उनका पता रखने वाले कौन?' शाहस्ता ने रुखाई से उत्तर दिया।

'शाहस्ता खाला, क्या तुम मुझसे नाराज़ हो?'

शाहस्ता हँसी—'नाराज़? तुम से?—तुम जैसे कई फ़सली बटेर यहाँ आये और चले गये। हम परवाह नहीं करते।'

वह अपनी घृणा को प्रकट करती जाने के लिये मुड़ी और एक भयानक नज़र डाल कर चली गई। सपना रुआँसी होकर बैठी रही। खाना पड़ा-पड़ा ठंडा हो गया। बाली जल्दी वापस आने का वादा कर गई थी,

न आई। उससे कोई भी प्यार नहीं करता। उसके दिल में एक ख्याल सा उभरा कि यदि हालात ऐसे ही रहे तो उसे जाना पड़ेगा वापस।

पिछली खिड़की के पास बच्चों ने फिर शोर मचाना शुरू कर दिया था। उसने आवाज़ देकर बाली से न आने का कारण पूछा तो उत्तर मिला—

'न भई, हम नहीं आने के, शाहस्ता खाला मारेंगी।'

बाली ने इतना कहा और फिर खेल-कूद में लग गई। उसे इस समय सपना में कोई दिलचस्पी न थी।

'बाली—बाली—इधर आ, मेरा एक काम कर दे। मैं तुझे बहुत-सी चीज़ें दूँगी।'

दो-चार बातों में बाली का दिल पसीज गया। वह खेल छोड़ कर उसके पास आ गई।

'बाली, तू शाहस्ता खाला से डरती है?'

'नहीं—'बच्ची ने चोर नज़रों से इधर-उधर देखते हुये उत्तर दिया।

सपना ने उसको अंडे का हलवा और थोड़ा-सा फल खाने को दिया। उसकी दिलचस्पी की बातें करती रही। फिर धीरे से कहा—

'बाली, चुपके से पता चला कर आ, सरदार साहब कहाँ हैं।'

बाली ने वादा किया। फिर खा-पी कर तसल्ली से उठी। ध्यान से चारों तरफ देखा, और चली गई।

निर्धन के बच्चे और कुत्ते में कोई अन्तर नहीं। और यदि आज उनसे मुलाक़ात हो जाये तो खुल कर बात करूँगी। हो सकता है पहल करने से हिचकिचाते हों। और यदि जानबूझ कर ऐसा कर रहे हैं तो यह सरासर अपमान है।—आज मैं पहल करूँगी। ऐसा करने में हर्ज ही क्या है। वह सोच-सोच कर उलझती रही।

□□

शाम अपने रंगीन आंचल को स्याही में डुबोती चली गई। वह कमरे से बरामदे में और बरामदे से कमरे में टहल-टहल कर उकता गई थी। आज दिन के समय थोड़ी देर बारिश होती रही थी। हर तरफ सीलन थी और लैम्प पर कीड़े मंडरा रहे थे। वे मर-मर कर गिर रहे थे। सपना ने लौ नीची कर दी और बिस्तर पर आ लेटी। कीड़े जब तक रोशनी थोड़ी भी थी, परे न रह सकते थे—अँधेरे और अकेलेपन से परेशान होकर वह कीड़ों को कोसने लगी, ठहरे हुये चुप वातावरण में कोई स्वर तो हो—

'मूर्खो, तुम इसी तरह जलते मरते रहोगे।'

उसने देखा कि वे रोशनी से मिलाप के बाद राख हो जाते हैं तो पूछा—

'क्या प्रेमी से मिलन का जीवन इतना संक्षिप्त और मृत्यु इतनी आसान है। मिलाप के इस क्षण के लिये न जाने तुम कहाँ-कहाँ से उड़ कर आये हो। और बताओ कि इस क्षण का मजा सब क्षणों से बेहतर है? है, तो कोई बात नहीं, मर जाओ। मरते रहो। परन्तु ऐसा मजा चखने के लिये मुझे तो अभी जीना है। तुम अँधेरे के समुद्र को पार कर यहाँ पहुँचे हो। और मुझे अभी अँधेरे रास्ते में चलना है। मुझे प्रेमी के घर का पता मालूम नहीं। तुम मर रहे हो कोई बात नहीं। अमर न हो सके तो

क्या ? नामुराद तो नहीं हो। नामुराद मरना कितने बड़े दुःख की बात है।

सपना जिस मोम के दिल को तसल्लियों की ठंडक से जमाये बैठी थी, वह आग और पतंगे के मामूली खेल से पिघल गया था। भूली-बिसरी यादें चिनगारियों की तरह चमक उठी थीं।

बरामदे में भारी कदमों की आवाज़ सुनाई दी। वह उठ कर कुर्सी पर बैठ गई और सिर कुर्सी की पीठ से लगा दिया। उससे पहल न हो सकी।

'सपना।' वे कमरे में प्रवेश कर चुके थे। वह चुप रही मगर सँभल कर बैठ गई।

'तुम चाहती क्या हो ?'

'कुछ नहीं।'

वह पहलू बदल कर बैठते हुए बोली। वह उस पर झुक आये। उनकी आँखें लाल थीं। क्रोध से, प्रेम से या शराब से। सपना ने दोनों हाथों में उनका चेहरा थाम कर अपने निकट करना चाहा कि उन्होंने हाथ झटक दिये। वह क्रोध में फुंकारी—

'आप क्या चाहते हैं ?'

इस समय उसका दिल चाहता था कि वह सरदार साहब के खिचड़ी बालों को नोंच कर बिखेर दे—उसे ज़हरा का बताया हुआ तरीका याद आय।—'मर्द के साथ पहले प्यार और नर्मी से पेश आओ। कोई ऐसा अवसर आ आये तो पहल करने से भी न हिचको—और यदि फिर भी न माने तो उखड़ जाओ, परन्तु लगाव के साथ, यहाँ तक कि वह मिट्टी हो जाये।'

परंतु सपना ऐसा न कर सकी। वह सरदार साहब के कदमों में पड़ी थी। और वह कह रहे थे—

'तुम औरत बन कर रहना चाहती हो—बीवी की तरह रहना

चाहती हो ? इतने दिनों में मैं तुम्हें अच्छी तरह जान गया हूँ। तुम मुझसे इतनी आशायें क्यों लगाये बैठी हो ? मैंने तुम्हें बतौर माडल खरीदा है। तुमने कैसे समझ लिया कि मैं तुम्हें चाहता हूँ। मैं तुम्हें नहीं चाहता, कभी नहीं चाहूँगा।'

उन्होंने उसे परे धकेल दिया। और खुद हल्का ठहाका लगाकर हँसे—

'बेचारी लड़की।'

सपना उठी और उन पर झपट पड़ी। वह उनको बेतहाशा चूम रही थी और उसके पागल ठहाके कमरे की दीवारों से टकरा रहे थे। सरदार साहब बेबस हुए पूरी बात न कह सकते थे।

'तुम भूलती हो—तुम पागल हो—तुम नहीं समझती मैं क्या हूँ—'

फिर उन्होंने दीवानी सपना को बाँहों में उठा कर पलंग पर फेंक दिया और ज़ोर से दो-चार थप्पड़ जड़ दिये।

'मैं खूब समझता हूँ—मैं जानता हूँ—'

न मालूम वह क्या जानते थे जिसे सपना न समझती थी। उसने इतना कहा—

'मैं नहीं जाऊँगी, यहाँ से नहीं जाऊँगी।'

और वह फूट-फूट कर रो दी।

सरदार साहब कुर्सी खींच कर उसके निकट बैठ गये। कीड़ों का आना-जाना बढ़ गया।

सपना की हरकत का विश्लेषण करते वह इस परिणाम पर पहुँचे कि मैंने उसका शरीर किराये पर लिया है, आत्मा और भावनायें नहीं। और अपनी बात कहने का उसे पूरा अधिकार है।

वह थोड़ी देर के लिये कमरे से बाहर चले गये। वापस आये तो भी कोई बात न थी। कितनी देर तक सिगरेट पर सिगरेट पीते रहे। सपना उसी करवट लेटी थी। उन्होंने एक क्षण के लिए महसूस किया कि अपने

हाथ से सपना के शरीर की नर्मी को महसूस करें, परन्तु दूसरे क्षण वह दोनों हाथ सिर के पीछे बाँधे छत की तरफ देख रहे थे :

'सपना—सपना—'

उन्होंने दो-चार बार पुकारा। उधर से कोई उत्तर न मिला तो खुद कहने लगे। उनके स्वर में नर्मी थी।

'बोलो—तुम यहाँ रहना चाहती हो ? मैंने कब कहा, तुम्हें वापस भेज रहा हूँ। मैं तुम्हें दुनिया की नजरों से दूर ले जाकर कला में बदल दूँगा। मगर क्या करूँ मेरे पास वे सारे रंग नहीं जो प्रकृति ने तेरे शरीर में भर दिये है। मेरी कला निस्संदेह मेरे कहने पर चलती है, परन्तु मैं बड़ा अजीब कलाकार हूँ। मैं प्रकृति को आज तक सही मानों में कैद नहीं कर सका।

प्रकृति को आज तक पूरी तरह न ही तो माइकलेन्जेलो कैद कर सका न ही वैन-गॉग। हम प्रकृति की नकल करने वाले अपनी रचनाओं को अपने खुद से अलग नहीं कर सकते—यह हमारी इच्छा की एक तस्वीर है। हम इस इच्छा को कभी दबा लेते हैं और कभी खुला छोड़ देते हैं। इसी संघर्ष में कहीं ज्ञान का रास्ता शुरू हो जाता है।'

सरदार साहब नशे और भावनाओं में डूबी हुई आवाज़ में अपने विचारों को प्रकट कर रहे थे। उनकी आवाज गहरे कुएँ से आती लगती थी। कुछ भयानक, कुछ दर्दनाक लोच और लहराव के साथ फैलती हुई—। सपना इस मर्दाना भरपूर आवाज़ से प्रभावित होती रही और फिर कुछ सोच कर अपना कमज़ोर हाथ उनकी तरफ बढ़ा दिया—

'वादा करती हूँ, जिस हाल में रखेंगे, रहूँगी। असल में मुझे आप से अपनी दु:ख भरी कहानी कहनी थी। यह आप से किसने कह दिया कि मैं बीवी बन कर रहना चाहती हूँ। कोई औरत किसी मर्द के पास दो तरह ही से रह सकती है। बीवी बन कर, या रखैल के तौर पर— पहली सूरत से आपने इनकार कर दिया। दूसरी सूरत से इनकार का

मतलब होगा, मैं यहाँ से चली जाऊँ। परन्तु मैं मुंदरा के हाँ वापस नहीं जाऊँगी।—मैं पत्थर सही, मुझे सड़क में लगाने की बजाय घर की दीवार में चुन दीजिये। दासी बना कर रख लें। उफ़ न करूँगी। और फिर मैं तो समझती हूँ यहाँ मैंने केवल पड़ाव किया है, मुझे तो अभी आगे जाना है : यह भी हो सकता है कि इन्सान अपनी कम बुद्धि के कारण पड़ाव को अपनी मंज़िल समझ ले और सुस्ताने के लिये अपने को ढीला छोड़ कर आँखें मूँद ले, और मुँदी आँखों से मंज़िल का झूठा मज़ा ले ले।'

यह उठ कर बैठ गई और सरदार साहब को ध्यान से देखा। वह उनके ख्याल जानना चाहती थी।

'आशा है आप मुझे क्षमा कर देंगे।—मैं आपकी दिल से इज़्ज़त करती हूँ।'

सरदार साहब ने वादा किया कि वह किसी भी सूरत में सपना को मुंदरा के पास नहीं भेजेंगे।

रात के पिछले पहर वह अपने कमरे में चले गये।

□□

कई दिनों से बाली नज़र न आई थी। सपना का कितना दिल चाहता था उससे मिले और आस-पास फैली हुई चुप्पी के बारे में पूछे। यह काजल की शादी के बाद चुप-सी क्यों लग गई। सिवाय बाली के सब बच्चे खेलते नज़र आते थे। वह जानना चाहती थी कि धीरज का क्या बना ?

काजल की शादी सप्ताह के अन्दर-अन्दर ही कर दी गई। उस दिन उसका दिल काँप-काँप गया। उसे अपनी शादी की घटना याद आती

रही। वह कितनी उदास थी। उस दिन जब काजल और उसका दूल्हा सरदार साहब को सलाम करने के लिये कोठी में आये तो लाल चादर में हिलकोरे लेता काजल का शरीर उसने पर्दे के पीछे से देखा था। और धीरज फाटक का स्तम्भ थामे बुत बना इस सारे दृश्य को देख रहा था। काजल का दूल्हा बहुत काला होने के बावजूद बदशक्ल न था। खासा स्वस्थ शरीर, ओठों पर मासूम मुस्कराहट।

बाली का भोला उदास चेहरा सपना को भूलता न था। काजल की डोली पर विदा हुई और बच्चे कौवों की तरह झपटने और नालियों में हाथ-डाल कर पैसे ढूँढने लगे तो बाली भी आगे बढ़ी। परन्तु धीरज ने चोटी से पकड़ कर घसीट लिया और वह अर्थपूर्ण नजरों से चाचा का मुँह तकते-तकते उदास हो गई और फिर बिसूरती हुई घर की तरफ चल दी।

सरदार साहब ने सपना को लोगों से मिलने की अनुमति दे रखी थी ताकि वह अकेलापन न महसूस करे। वह अधिकतर बच्चों से बातें करती, जब चाहती उन्हें लौटा भी देती। काजल उसके लिये फूल लाया करती थी। सपना को उसमें पहले दिन ही दिलचस्पी पैदा हो गई थी। परन्तु काजल से बात करके पता चला कि वह कच्ची उम्र की लड़की ही है। और उसकी सगाई कहीं बचपन में हो गई थी। धीरज के बाप के पास न तो जमीन है न रुपया, किस बूते पर वह रिश्ता माँगेगा। सपना के पूछने पर कि क्या उसे धीरज के साथ प्यार है, कुँआरी काजल ने सिर झुका लिया था।

सूर्य धान के खेतों पर सेंदूर छिड़क गया था और आकाश में लाली छा गई थी। वह गेट पर खड़ी सरदार साहब की प्रतीक्षा करते-करते धीरज और काजल के बारे में सोच रही थी। उसका जी चाहता था बाली न सही धीरज ही उधर से गुजरे तो वह उससे अवश्य पूछेगी कि क्या तेरे दिल ने इतनी जल्दी धैर्य पा लिया। क्या प्रेम के क्षण का स्वाद

दिनों में फैल कर फीका पड़ जाता है ? इक्का-दुक्का देहाती दिन भर के काम से छुट्टी पा कर थके-थके से घरों को लौट रहे थे। थोड़ी देर के लिए कोई व्यक्ति नज़र आता, फिर खेत में से गुज़रती पगडंडी में गुम हो जाता। कौवों-चिड़ियों ने बसेरा लेने से पहले बाग में शोर मचा रखा था। इस शोर में एक मर्दाना भारी और रसीली आवाज़ उभरी। कोई देहाती कहीं पास ही बैठा लोक गीत गा रहा था। वह लय के रस में डूबी गीत को समझने की चेष्टा कर रही थी :

'बहार की ऋतु आई और चली गई मेरे महबूब ;
तुम न आये तो क्या हुआ ?
अब मैंने बादल के साथ बरसना सीख लिया है
मेरी उम्मीदों ने पानी के बुलबुलों की मानिंद दम तोड़ दिये
फिर वह सागर बन कर हवा की लहरों के संग-संग डोलती रहीं
लेकिन यह सागर फिर बादल बन कर उठेगा, बरखा बनकर बरसेगा
यह सिलसिला खत्म तो न होगा मेरे महबूब !
तुम न लौटे तो क्या हुआ।
बरखा के बाद हर शै का रूप निखर आता है
पर धरती के घाव गहरे हो जाते हैं
मींह की नेज़ों सी बूँदे छतों को छलनी कर देती हैं
लोग अपने घरों को देखते-भालते फिरते हैं
जिस घर में तुम बसते हो उसका पता न लोगे ?
आ न जाओ !

बढ़ते हुये झुटपुटे में सपना यह सोचते हुए कमरे में आ गई।

दिल एक समुद्र है और प्रेम उस धातु की तरह जो पानी की गहराई तक फैलता चला जाये और बाहर का वातावरण उसे रास न आये।

काजल का बाप तीन-चार दिन के बाद आया तो वह पूछे बिना न

रह सकी । वह क्रोध और घृणा से बोला—

'हजूर आप क्या जाने । सारी मुसीबत की जड़ बाली थी । इससे पहले कि बात अधिक बढ़े मैंने लड़की रुखसत करना ही ठीक समझा । नन्हीं सी जान दो घरों को बर्बाद करने पर तुली थी ।'

'मगर बाबा, दोष तो बड़ों का होगा ।' सपना ने और बात जानने के लिये बूढ़े को उकसाया ।

'बड़े कहाँ हजूर ! वह पैगाम इधर-उधर ले जाने का काम न करती तो बड़ों को शैतानी का अवसर ही न मिलता । फिर हमारा जोड़ भी नहीं था । मेरी एक बेटी खाती-पीते घराने में है । यह धीरज के साथ खेतों में काम करती और अपने भागों को रोती । हमने अपनी पसंद की जगह ब्याही है, दुःखी होगी तो हमें दोष देगी, सुखी रहेगी तो ठंडी हवा आयेगी । अपनी जान को तो न रोयेगी । माँ-बाप तो यहाँ तक सोचते हैं हजूर कि औलाद सारे इल्ज़ाम उन पर थोप दे और अपने किये पर उन्हें ज़रा लज्जित न होना पड़े ।—बाली कोई बच्चा थोड़े ही है । हजूर, यह छलावा है छलावा । मारे शर्म के अब घर से नहीं निकलती । मेरी बेटी वापस आई तो उसे देखने भी नहीं आई । ज़रदाँ ने पिटाई भी अच्छी-खासी की थी ।'

'बाबा, उसे इतना खतरनाक भी न समझो । तुमने तो बात को बढ़ा कर रख दिया । कुछ बच्चे होशियार होते हैं, परन्तु उनके फलने-फूलने में सहायक चीज़ें उपलब्ध नहीं होतीं ।'

सपना बाली की बुराई सुनने के लिये तैयार न थी । सांवरा धीरज के बारे में कह रहा था—

'वह बुरा लड़का नहीं । उसे और बहुत मिल जायेंगी । लड़कियों की कमी है कोई । इस उम्र में कदम लड़खड़ा ही जाते हैं । यही सोच कर मैंने उसे क्षमा कर दिया । वरना कत्ल कर देता ।'

साँवरा अब भी क्रोध दिखा रहा था । और सपना का दिल कह

रहा था—

तुमने जो गलियों की रौनक खत्म कर दी, यह क्या कत्ल से कम है ? यह वातावरण जो पिछले कई दिनों से बोझिल-सा है, इसका जिम्मे-दार कौन है ? मुझे मालूम न था यह हो जायेगा। वरना सरदार साहब के सामने तुम्हारी क्या मजाल थी। वह जरूर धीरज के हक में निर्णय देते। आखिर तुम्हारी औकात ही क्या है। कमजोर किसान, उँह—'

वह भावुक होकर सोच रही थी। अपने पर इतना विश्वास और गर्व हो जायेगा कि वह यूँ दखल देना चाहेगी और लोगों के भाग्य के बारे में सोचेगी, इसका अंदाजा वह खुद भी न लगा सकती थी। वह अपनी ज़ात के जाल को तोड़ कर बाहर निकल आई थी और बाहर जिंदगी बिखरी पड़ी थी।

साँवरा चला गया तो उसने जहरा का पत्र निकाल कर फिर पढ़ना शुरू कर दिया। लिखा था, वे लोग उससे मिलने नहीं आ सकते, इसलिए कि मौसी की तबीयत खराब है। हो सके तो वह खुद आ कर देख जाये। इसके अतिरिक्त गली-मुहल्ले की बातें, घर के विस्तृत हालात। उसने यह पत्र सरदार साहब को भी दिखाया। उनका ख्याल था कि पहाड़ पर जाते-जाते रास्ते में पूछते जायेंगे—वह भी यदि सपना ठीक समझे तो। सपना को मुन्दरा की मार के साथ ही उसका प्यार भी याद था। माँ के मरने के बाद उसने सब कुछ अब्बा-मियाँ को जान लिया था। उनसे छूटने के बाद मुन्दरा मिली। 'बेचारी'—सपना का दिल पसीज रहा था। सरदार साहब ने अब्बा-मियाँ को तलाश करने का भी विश्वास दिलाया था।

आशा के विपरीत एक आशा थी कि वह खुद तलाश करने जायेगी तो वह अवश्य मिल जायेंगे। अपना घर छोड़ कर तो वह कहीं न गये होंगे। यदि वह उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते—इससे आगे सपना की सोच जाना न चाहती थी। आशा के दीपक बुझने लगते थे।

इस घर में आये उसे केवल बीस-बाइस दिन हुये थे। सरदार साहब व्यस्तताओं के कारण अभी पहाड़ पर भी न जा पाये थे। इतने दिनों में वह यहाँ यूँ रहने लगी थी जैसे वर्षों से यहीं हो। शाइस्ता के साथ भी कुछ सुलह हो गई थी। उसके बारे में सरदार साहब ने उसे बताया कि वह बड़ी बेगम की खास नौकरानी के सिवा कुछ भी नहीं। वह घर की शुभेच्छुक है इसलिये हर परिवर्तन पर ध्यान रखती है। शाइस्ता को भी कुछ दिनों में विश्वास हो गया कि यह नई औरत सरदार साहब की पहली रखैलों की तरह ठस्सा नहीं दिखाती। केवल उदास-उदास नजरों से चेहरे पढ़ने की चेष्टा में रहती है। और मालिक ने उसे गिरी पड़ी औरत की तरह तरस खा कर रख लिया है।

सपना ने जीवन का ढंग कुछ इस तरह बदल दिया था कि जिसमें 'नहीं' की गुंजाइश न रह गई थी। उसका सिर हर हाल के सामने झुका था। यह सिर कब उठेगा उसे खुद पता न था।

प्रतीक्षा का समय काटने के लिए वह एक पुस्तक के पृष्ठ पलट रही थी कि आँगन में झांझर बज उठी—

'सलाम बीबी जी'

शर्माती-लजाती काजल उससे मिलने आई थी। वह एक 'हाय' के साथ बिना किसी तकल्लुफ के उससे चिमट गई। उफ़, उसके शरीर में कितनी खुशबूएँ डेरा डाले बैठी थीं।

'अरे, तुम ठीक तो हो ?

सपना को आशा थी वह बिसूरते हुए कहेगी—'बिल्कुल ठीक नहीं।' परन्तु काजल चहक रही थी।

'हूँ—ठीक हूँ—शादी के बाद कोई अफसोस भी होता है !'

नई उम्र की नवविवाहिता काजल के चेहरे की चमक लेम्प की रोशनी से कई गुना थी। पतली-सी सुन्दर नाक पर सफेद नगीने वाली कील सूर्य की तरह चमकती थी। दांतों की लड़ी लाखा लगे ओठों में

रही थी। वरना बगावत कर देती और कह देती—

अब्बा-मियाँ, मेरे दिल में एक मद्धम सी रोशनी है। उसे मैंने अपनी कल्पना से रोशन किया है, इसे रोशन रहने दो। मुझे इतनी रोशनी काफी है—मेरे दिल में इतना अँधेरा उस समय कब था? परन्तु मैंने विद्रोह नहीं किया और घुप अँधेरा मेरा भाग्य बन गये। मैं विद्रोह कर देती तो अच्छा था क्योंकि मेरे लिये विद्रोह में शान्ति थी। काजल के लिये 'भाग जाने' में सुख है। अपने-अपने हालात हैं। परन्तु यदि हालात ही सब कुछ हैं तो फिर दिल क्या है? मस्तिष्क क्या है? हम क्या हैं? इस हालात की पैदावार बिल्कुल नहीं। सपना ने उलझ कर अपने आप से कहा—'हमें सोचना चाहिये।'

परन्तु उसके ओंठ काजल से कह रहे थे—

'तो तुम धीरज को सचमुच भूल गई हो?'

'जिस रास्ते पर चलना नहीं, उसे मुड़-मुड़ कर देखने से क्या लाभ?' काजल बुद्धिमान औरत की तरह बोली।

'हाँ, यह ठीक है। जिम्मेदारी के कुछ दिनों ने तुम्हें बदल दिया है। अच्छी बात है। कुछ लोग तो उम्र भर जिम्मेदार नहीं बनते। वहमों के पीछे भगाते रहते हैं।' वह नाखून काटते हुए अजीब बेतुकेपन से बोले जा रही थी।

'तुमने ठीक किया काजल। लड़कियों को ऐसे ही करना चाहिये—बिल्कुल—ऐसे ही बड़ी होकर बाली भी इसी तरह करेगी—'

काजल उसकी बातों से उकता कर सलाम कहती उठी और चली गई। वह उसी तरह बैठी बड़बड़ाती रही। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था।—नहीं—नहीं—उसने जोर से अपने हाथ पर काटा—अब वह रोने लगी थी।

□□

कार इतनी तेज चल रही थी कि साँस अंदर की अंदर और बाहर की बाहर रही जाती थी। वृक्ष, झाड़ियाँ और मील के पत्थर प्रसन्नता के क्षणों की तरह गुज़रे जाते थे। सपना ने चेहरा खिड़की से हटा लिया। उसके बाल उड़-उड़ कर उसे परेशान कर रहे थे। वह सोच रही थी अभी थोड़ी देर बाद हम मुन्दरा के घर पहुँच जायेंगे। क्योंकि सरदार साहब ने उसे यही बताया था। वे लोग उसे देख कर खुश तो होंगे, उसे पूरी आशा थी और ज़हरा आपा से तो वह लिपट जायेगी।

कार ने एक गहरा मोड़ काटा। सपना सरदार साहब पर लगभग गिर गई। वह सँभलने न पाई थी कि झटका लगा और सिर स्टियरिंग से जा टकराया।

'क्या बकवास है।' उसके मुँह से निकला। वह सँभलने की चेष्टा कर रही थी कि उन्होंने उसका सर पकड़ कर अपने कंधे से लगा लिया। सपना ने उनकी तरफ देखा, वह मुस्करा रहे थे। उनकी मुस्कराहट आकर्षित करने वाली थी। वे एक-दूसरे को देखते-देखते हँस पड़े। आज कितने समय बाद उसे शर्म सी महसूस हुई—शर्म की लहर उसके सारे शरीर में दौड़ गई। वह उनके कंधे से लगी इस लहर के मजे को महसूस करती रही। सरदार साहब एक हाथ से स्टियरिंग सँभाले दूसरे से उसके बालों से खेल रहे थे। उनकी आँखें कभी सड़क को देखती थीं कभी

सपना को। काफी देर चुप रहने के बाद अपनी गम्भीर आवाज में बोले—

'तुम बोर हो रही हो—ऊँ—?'

उसने कोई उत्तर न दिया।

'सीप—!'

'हूँ—'

वह उसे प्यार से सीप कहने लगे थे। अब्बा-मियाँ भी तो उसे कभी-कभी इसी तरह पुकारा करते थे। इस पुकारने और उनके पुकारने में कितना अंतर था। वह उसके कंधे को हाथ से महसूस करते हुए कह रहे थे—

'सफर अक्सर बोर ही करने वाले होते हैं।'

वह थोड़ा-सा हँसी।

'मेरा मतलब है सफर को अच्छा बनाना मुसाफिर का ही काम है।'

'वह कैसे—?'

'जब तुम-सा साथी मिल जाये तो सफर सफर कब रहता है।'

उन्होंने अर्थपूर्ण ढंग से सपना की ओर देखा।

'आज आप कैसी बातें कर रहे हैं?'

'आशापूर्ण, आम इन्सानों जैसी, तुम्हें अजीब इसलिए लगा कि मैंने तुम्हारे सामने अपने व्यक्तित्व पर से पर्दा कभी नहीं उठाया।'

'आज कैसे ख्याल आ गया?'

सपना के स्वर में व्यंग और लगाव था। वह हँसे—

'मैं जो भरम बनाये फिरता हूँ, यह एक दीवार है सीप, मैं इसमें कैद हूँ, यही कैद मेरी शान है और मुझे दूसरों से बड़ा बनाती है।'

वह सड़क को घूरते हुए कह रहे थे और कार की रफ़्तार हल्की कर दी थी।

'परन्तु कभी न कभी तो दिल चाहता है कि स्वतंत्र वातावरण में

उड़ान लगाये—और कोई हो जो उसकी हिम्मत को देखे और शाबाश कहे—'उनकी आवाज फिर दब गई थी।

'सीप—सीप—'

उनकी बाँहो का घेरा तंग होने लगा। सपना ने बिना उनकी तरफ देखे 'हूँ' कहा। वह बोलते जा रहे थे—

'मैं तुमसे प्यार करने लगा हूँ शायद—सचमुच—मेरी उम्र चालीस वर्ष के ऊपर हो गई है। तुम कहोगी बासी कढ़ी में उबाल आ रहा है—कह लो—परन्तु मेरा दिल कहता है, तुम मेरे साथ निभा लोगी—मैं हमेशा अपने आप से भयभीत रहा हूँ। यही कारण है मैंने किसी को भी अपने अंदर झाँकने का अवसर नहीं दिया।'

शर्म के मारे सपना की साँस फूल गई। आज वह सब कुछ खुद बता रहे थे। जिसे जानने के लिये वह कई दिनों से बेचैन थी।

'मेरे साथ में घबरा तो न जाओगी—'

'जब तक आपकी सेवा में हूँ—आप मुझे कभी भी अपनी इच्छा के विरुद्ध न पायेंगे।'

सपना ने नपा-तुला उत्तर दिया।

'फिर—फिर कहाँ जाने के इरादे है—?'

उन्होंने बेसबी पर काबू पाते हुये कहा।

'पता नहीं मेरी मंजिल कहाँ है? मुझे कुछ पता नहीं।'

'तुम मुंदरा के पास जाना चाहती हो।'

'नहीं—' वह खिड़की से बाहर देख रही थी।

'फिर उधर न जाय?'

वह चुप रही—गाड़ी अब ऐसी सड़क पर जा रही थी जो पहले देखी हुई सी लगती थी। यह वही सड़क है—वही वृक्ष—मैं पहचान सकती हूँ। यह कच्चा रास्ता मेरे घर को जाता है। सपना के हाथ-पाँव फूल गये। जैसे दूर के मुसाफिर के सामने आशा के विपरीत अकस्मात

मंज़िल आ जाये। वह खिड़की से बाहर लगभग लटकी हुई चीखी—

'रुक जाइये—कहीं न जाइये—इस कच्ची राह पर मुड़ जाइये—यही रास्ता तो मेरे घर को जाता है।'

सपना की बेचैनी को देख कर वह उस रास्ते पर हो लिए। वह बच्चों की तरह इधर-उधर झाँक रही थी।

'बिल्कुल—आप ठीक जा रहे हैं। हाँ, इससे थोड़ा आगे नदी आयेगी—फिर पुल है, और पुल पार करके—पास ही तो हमारा घर है। पैदल चलने में दूर लगता है—अब्बा-मियाँ घर पर ही होंगे—हाय, मैं उनके कितना निकट रहती थी!'

'सब्र तो करो—' सरदार साहब ने प्यार से कहा। परन्तु वह ऊंची आवाज में बोली—

'तेज चलाइये न—अल्ला घर में सब ठीक हों।'

अब उसे किसकी चिन्ता थी। समय ने उसे क्या-क्या दिखाया। परन्तु समय बीतने वाली चीज थी, बीत गया। कितने सारे दुख उठाकर वह वापस आ गई थी।

नदी पर जाकर उन्होंने गाड़ी रोक दी।

'क्यों न नौका पर चलें।' सरदार साहब ने उससे कहा।

'ठीक है—'

वह दरवाज़ा खोलती बाहर कूद गई। और नदी की तरफ यूँ दौड़ी जैसे कभी बचपन में जाया करती थी। सरदार साहब की प्रतीक्षा करने का भी सब्र न था।

नदी उसी प्रकार मस्ती से बह रही थी। वृक्ष सारे पुराने थे। पत्तों और टहनियों से छन-छन कर आती धूप पानी को उसी तरह संवला और चमका रही थी। वृक्षों की वही पुरानी बोलियाँ वातावरण में रची थीं।

नौका में बैठ कर पुरानी यादें आईं, परन्तु नई आशाओं से जल्दी

ही दब गईं। वह तो केवल घर और अब्बा मियाँ के बारे में सोच रही थी। बस उसे क्रोध आ रहा था कि नौका पलक झपकते में उस पार क्यों नहीं ले जाती।

दूसरा किनारा आ गया और वह आवाजें देती एक पगडंडी पर दौड़ने लगी—

'अब्बा-मियाँ—अब्बा-मियाँ—देखो मैं आ गई—इतने दिनों के बाद! जवाब दो—अब्बा-मियाँ—'

दोनों बाहें फैलाये वह पागलों की तरह भाग रही थी। और सरदार साहब उसके इस ढंग पर हैरान थे। कहीं वह पागल तो नहीं हो गई, उन्हें वहम-सा हुआ। वह पीछे से उसे पुकार रहे थे। परन्तु वह तो एक क्षण भी नष्ट न करना चाहती थी—

'अब्बा—अब्बा—'

उसने आंगन में प्रवेश किया—झोंपड़ियों के सब दरवाज़े खुले थे। वह बेधड़क अन्दर चली गई। कई चमगादड़ें फड़फड़ाने लगीं। किसी कोने में बैठे कुत्ता गुर्राया।

छत टपकती रहने से फर्श पर सीलन थी। और पुरानी झाड़ियों की बू में मिली-जुली कई तरह की गंध उसके नथनों में घुसती चली गई। वह जो अब सुगंधियों की आदी हो गई थी, और अब्बा से मिलने आई थी, तुरन्त बाहर निकल आई। उसकी उठी हुई बाँहें गिर चुकी थीं। और वह खाली-खाली आँखों से सब तरफ देख रही थी।

छप्पर जिसके नीचे बैठ कर वह और अम्मा गर्मियों की दोपहर गुज़ारा करती थीं, कहाँ था? रसोई के मलबे के नीचे टूटे हुये घड़े अपनी कहानी कहते चुप थे।

सपना की बाँह एक बार फिर उठी और वह मैके की मिट्टी से लिपट कर दहाड़ें मार कर रो दी।

'सपना—सपना!' सरदार साहब उसको ज़मीन से उठाते हुये घर

की वीरानी पर ध्यान दे रहे थे। हर तरफ घुटने-घुटने घास और जड़ी-बूटियाँ उगी हुई—दीवारें भुरभुरा गई थीं।

उन्होंने सपना को समझाया—'पागल ! देखती नहीं—यहाँ किसी के रहने के चिन्ह भी नहीं। जाने यह घर कब का उजड़ गया।'

'मेरे बाबा का घर यही है—वह मर गये !'

वह फिर चीखी। सरदार साहब बेबस हुये जाते थे।

'तुम्हें कैसे विश्वास है—आओ पहले आस-पास के लोगों से पता कर लें—घबराती क्यों हो। संभव है वह यहाँ से कहीं और चले गये हो—खामखाह रोती क्यों हो !' उन्होंने उसकी आँखें पोंछते हुये ढारस बंधाया।

बात ठीक थी। आस की डोर एक बार फिर बंध गई। कुन्ती के घर से पता चल सकता था। वे उस तरफ चल दिये। सपना के आँसू और गला शुष्क था। परन्तु दिल में आग दुगुनी हो गई थी। आशा और निराशा के दोराहे पर साँस रुक सी गई थी। दोनों चुप थे। दोनों अनिश्चय के बीच मँडरा रहे थे। यदि वह यहाँ भी न मिले तो फिर ? फिर किसी और से पूछने जाना पड़ेगा।—सपना दिल ही दिल में प्रार्थना करने लगी थी।

कुन्ती का घर वैसा का वैसा ही था। बकरियों और गाय के गोबर की गंध—जीवन का और घर वालों की उपस्थिति का विश्वास दिलाती थी। सपना सुस्त कदम उठाती आँगन में पहुँच गई। यह वही घर था जहाँ वह शोर करती हुई आया करती थी। कुन्ती और वह मिलकर खेलती और ऊधम मचातीं। धब धब—ऐसी जोर की कीकली पड़ती कि आँगन का लिपा हुआ कच्चा फर्श जगह-जगह से उखड़ जाता। कुन्ती की माँ उन्हें डाँटती—

'मूर्खो—धरती बचाओ—अकारण क्यों कूदती हो। लड़कियों को वैसे भी सहज-सहज चलना चाहिये।'

उस समय वह इतना समझ सकती थी कि मौसी को क्योंकि सहन लीपना-पोतना पड़ता है इसलिए टोकती है, परन्तु आज वह बिना किसी के कहे संभल-संभल कर चल रही थी। इसलिए नहीं कि धरती की छाती पर घाव न हों, बल्कि उसकी अपनी छाती में जो घाव थे, कदमों की चमक उन्हें रास न आती थी। वह घावों को संभाला देती चल रही थी।

'मौसी—ओ मौसी—' उसने पुकारा।

'अरे कौन है ?' उस समय कुन्ती की माँ रसोई में थी।

'मैं हूँ, मौसी—सपना !' सपना रसोई के दरवाज़े पर चली गई।

'ओ !'

कुन्ती की माँ ने उसे आटा भरे हाथों समेत चिमटा लिया। इस समय उनके बीच धर्म और जाति का प्रश्न भी न था।

'ऐ बच्चो, तू कहाँ चली गई थी—हाय, तू कितनी बदल गई है।'

कुन्ती की माँ ने उसे ऊपर से नीचे तक देखते हुए आश्चर्य से कहा। वह इस कदर घबराई हुई थी कि मस्तिष्क में मेहमान को बिठाने तक का विचार न आया। खड़ी-खड़ी पूछती गई। सपना ने अब्बा के बारे में पूछा तो वह उल्टा उसी को दोषी बनाती बोली—

'लड़की, तू यदि इतने अच्छे हाल में रहती थी तो बाप का पता किया होता। उसको इतना रुलाया क्यों ? वह तो तेरी खोज में जाने कहाँ निकल गया। पहले-पहल वापस आ जाया करता था। फिर पता नहीं क्या हुआ—वह कहाँ चला गया—और इतने महीने बीत गये।'

कुन्ती की माँ रुँआसी हो गई। सपना ने उस क्षण ज़ब्त से काम लिया। उसके मस्तिष्क में हवाइयाँ छूट रही थीं। मौसी ने जल्दी ही विषय बदला—

'तेरी सहेली कुन्ती एक बेटे की माँ है—बड़ी गृहस्थन बन गई है। तुम बताओ—तुम्हारे क्या है ?'

सपना ने उसकी बात का उत्तर देने की बजाय कहा—

'मुझे आज्ञा दो मौसी, मैं जाती हूँ।'

उसके इस व्यवहार को कुन्ती की माँ ने रुखाई और गर्व समझा और दो कदम पीछे हट कर सपना के चेहरे को ध्यान से देखा जिस पर निराशा की परछाइयाँ बिखरी थीं। वह सलाम कहती जाने के लिए मुड़ गई। परन्तु कुन्ती की माँ ने कुछ नहीं कहा। वह उसके कपड़ों की आन-बान और सुगंधियों में बसे हुये शरीर से आश्चर्य चकित थी। जैसे वह स्वप्न देख रही हो—पुरानी सपना मर गई हो और उसकी आत्मा अप्सरा बन कर अपना पहला घर देखने आई हो। उसके दिल में कई उल्टे-सीधे ख्याल आये। और वह तेज कदम उठाती सपना के पीछे-पीछे उसका मियाँ देखने बाहर आई—

'अरे—? वह—वह तो न था!'

कुन्ती की माँ ने माथा पीटा। वे जा भी चुके थे। और उसे लड़की पर कई वर्ष पहले वाले से भी अधिक क्रोध आया। जब वह कुन्ती के साथ उसकी लिपी-पुती पवित्र रसोई में घुसी चली आती थी। तब उसका जी चाहता था पकड़ कर चुटिया मरोड़ दे दोनों की—

'यह मर्द वह तो नहीं। जो सुना था, ठीक ही सुना था।'

उसने अपने आपको बताया। फिर उसके नथुनों में बसी हुई आस-पास फैली हुई सुगंधि दुर्गंध में बदल गई और उसे अपने-आप से घिन आने लगी। जैसे वह नरक से लिपटती रही हो—पुच्छलपाईं—चुड़ैल—जाने किसका बीज था—

वह रसोई में जाने की बजाये नहाने बैठ गई। और राम-राम जपने की बजाये सपना को कोसती पवित्र होने के लिए कितनी ही देर तक नहाती रही।

□□

'सपना—'

'हूँ—'

उसके मुँह से निकला, वरना उसका दिल कोई बात भी छेड़ने को न चाहता था। मोटर कच्चे रास्ते पर धीरे-धीरे आहें भरती रेंग रही थी। नदी का कच्चे लहू सा लाल पानी धीरे-धीरे बह रहा था। जैसे ज़मीन के शरीर का कोई फोड़ा फूट बहा हो। हर तरफ एक चुप्पी थी।—अब यहाँ कुछ न था। सरदार ने फिर बुलाया—

'मुंदरा की तरफ चलें—?'

'पता नहीं—'

सपना को यूँ लगता था कि उसके मस्तिष्क में कुछ नहीं रहा। एक भक्क सी हुई और वह काल-कोठरी की तरह बंद हो गया। और दिल? केवल गले में अटकी हुई एक चीज़ थी जिसे वह थाम भी न सकती थी।

'घर वापस चलें?' सरदार साहब उसकी राय जानना चाहते थे।

'जहाँ ले चलेंगे—चलूँगी—जहाँ फेंक देंगे पड़ी रहूँगी। अब बाकी क्या रह गया है। एक जीना? जी लूँगी।'

निराशा ने सपना को तोड़-फोड़ कर रख दिया था। वह सरदार साहब की हर बात का रूखा-सा उत्तर देती थी। वह वैसे भी कम बोलने वाले आदमी थे। औरतों के बारे में वह इतना ही जानते थे कि वे एक

मर्द क़िस्म का साथी चाहती हैं या रुपया—ये दोनों न हों तो मैदान छोड़ कर भाग जाती हैं—कहीं किसी और जगह भाग्य आजमाने।

यही कारण था कि वह अधिक देर तक किसी एक औरत के साथ चिमटे न रह सके थे। उसे मस्तिष्क पर सवार कर लेना उसूल के विरुद्ध समझते थे। उनका विचार था कि औरत मस्तिष्क पर सवार हो जाये तो बात की बात में व्यक्तित्व के सारे बखिये उधेड़ कर रख देती है।

वह अमीर भी थे। अल्ला ने सब कुछ देकर जाने क्या कमी रख ली थी कि वह अधिकतर चुप रहते थे। सरगर्म जीवन में एक ठंडी लहर डोलती रहती। कैसे रंगीन मिजाज थे, किसी को सही पता न था। पढ़ने के शौकीन थे। अच्छे-खासे कलाकार थे। तस्वीरें बनाने पर आते तो बनाते ही रहते। हर छः के बाद उन्हें अपने माडल से भय में भीगी हुई घृणा हो जाती। फिर वह तस्वीरें बनाना छोड़-छाड़ कर माडल को अलग कर देते और जमींदारी के कामों में लगे रहते। वह अपना माडल हमेशा बाजार से चुनते थे। क्योंकि उनके माडल पैसे खरे करने आते थे। मस्तिष्क पर सवार होने की कोशिश कम करते। कभी-कभी वे भी खालिस औरत बनने की इच्छा करतीं तो उनके पर्दों में छुपा हुआ व्यक्तित्व एकदम चौंक कर उन्हें होशियार कर देता। फिर उठते-बैठते, सोते-जागते उनके मस्तिष्क में एक ही बात गूँजा करती—

'बखिये उधड़ जायेंगे—बखिये उधड़ जायेंगे। तुम नंगे हो जाओगे। नंगे—बिल्कुल नंगे—फिर क्या रह जायेगा!'

और वह चीख पड़ते—

'तुमने समझा क्या है?'

दासी, अपने सुन्दर देवता के इस नये रूप से दंग रह जाती—और वह उनके व्यक्तित्व के आगे ढेर हो जाती।

'धन्यवाद हो, धन्यवाद हो। महाराज तेरे कितने रूप हैं। तुम धनी हो।'

औरत सरदार साहब की कमज़ोरी थी। चलती-फिरती, हँसती-खेलती औरत और बस—वह उसकी तस्वीरें बनाते, नंगी और अधनंगी—वह उनको कागजों पर उतारने की चेष्टा में लगे रहते। और जब तस्वीर पूरी हो जाती, तो अचानक उनकी दिलचस्पी समाप्त हो जाती। जैसे वे कोई अपराध कर चुके हों। एक प्यास-सी बढ़ जाती और वह सोचने लगते—

'कुछ नहीं—कुछ नहीं—इस औरत को निकाल दो, और तस्वीर फाड़ दो, चीथड़े उड़ा दो—'

औरत को निकाल चुकने के बाद वह अपनी बनाई हुई तस्वीर को धीरे-धीरे आँखें उठा कर देखते, छुप-छुप कर देखते, फिर एक दिन चुपके से उसके टुकड़े-टुकड़े कर देते।

'मैंने बनाई थी—मैंने ही उसे समाप्त कर दिया—मैं निर्माता हूँ—निर्माता को कौन कुछ कह सकता है।'

सरदार साहब के लिए सपना भी एक ऐसी ही औरत थी—परन्तु चेष्टा के बावजूद वह अपने-आप को सपना की तस्वीर बनाने को तैयार न पाते थे। इस चुप-चुप-सी लड़की में कोई विशेष बात न थी, जो कलाकार के मस्तिष्क में आग लगा दे और वह इस आग की रोशनी में सब कुछ देख ले, उस पर सारे रंग स्पष्ट हो जायें, हर एक कोण अपने-आप उभर आये।

परन्तु सपना को देखकर दिल धुआँ-धुआँ सा हो जाता। आस-पास धुंध-सी फैलने लगती, और सपना के व्यक्तित्व का धीमा-धीमा रूप इस कुहरे में ढक जाता।

सरदार साहब ने कई बार थोड़ा-सा सोचा कि वह उसे वापस भेज दें, यह वह नहीं जो हम समझते थे, बिल्कुल बेकार, इसके रूप को कैद करना कठिन है। इसकी सूरत में इतना कुछ है कि बनाया न जायेगा।

□□

कुन्ती के घर से वापसी पर एक बार फिर गाड़ी जाने पहचाने रास्ते पर चल रही थी—वे दोनों चुप थे। दोनों के खयाल अलग थे। उन्होंने अचानक कहा—

'हम तुम्हारी मौसी की तरफ जा रहे हैं।'

'क्यों ?' सपना चौंके बिना न रह सकी।

'तुम यही चाहती हो—मैं तुम्हें वापस ले जाकर—'

उन्होंने बात अधूरी छोड़ दी। वह सपना की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा कर रहे थे।

'मौसी के घर की बजाय आप मुझे इसी सड़क पर छोड़ दीजिये।'

वह उनके व्यवहार से आश्चर्य चकित थी।

'हैं—सड़क पर—क्या मौसी का घर इससे बेहतर नहीं ?'

'आप यूँ बदल जाते हैं, मुझे मालूम न था—आपको क्या—यह सड़क एक सड़क है—मौसी का घर तो चौक है। उसमें कई रास्ते और अँधेरी गलियाँ आ कर मिलती हैं।'

घृणा से उसके नथुने फड़क रहे थे। वह परे सरक कर बैठी अपने पाँवों को घूर रही थी।

'रुक जाइये न ? रुकते क्यों नहीं—?'

वह स्टियरिंग पर झपटते हुए बोली। उन्होंने कड़वी हँसी हँसते-हँसते उसे परे हटा दिया और कहा—

'तुम यह क्यों भूलती हो—कि तुम्हारी यह सड़क भी उसी चौक पर जा कर खत्म होगी।'

उसने कोई उत्तर न दिया। और अपना घूमता हुआ सिर खुली खिड़की के किनारे पर रख दिया। मोटर की आवाज़ में सिसकियों की आवाज़ दब गई।

□□

घर पहुँचते-पहुँचते अँधेरा हो गया—सरदार साहब का मूड सारे रास्ते बिगड़ा रहा। बार-बार सिगरेट सुलगाते, उलझते-कोसते कहीं-कहीं अपने-आप सपना को बताने लगते। यह फ़लाँ जगह है, यहाँ से फ़लाँ जगह को रास्ता जाता है, और अजीब लड़की से वास्ता पड़ा है, आदि—

बँगले के बाहर खड़े-खड़े उसने अँधेरे में दूर तक नज़र दौड़ा कर देखा। जुगनू बिखरे थे। मकानों में बत्तियाँ रोशन थीं—नीचे, ऊपर, हर तरफ—तो पहाड़ ऐसे होते हैं। उसने दिल में कुछ खुश होते हुए सोचा और दिन के उजाले की प्रतीक्षा करने लगी। ऐसा चिंगारियों का आँख-मिचौनी खेलता जमघटा उसने पहले बहुत देखा था। गर्मी के मौसम में वह, अम्मा और अब्बा बाहर घूमने के लिये निकलते तो जोहड़ के किनारे जुगनुओं ने पानी के पास ठंडी आग मचा रखी होती। जब वह बहुत छोटी थी तो अम्मा ने कहा था, ये परियाँ हैं—इनको कभी भी पकड़ना न चाहिये। पकड़ने वाले के ऊपर पेशाब कर देती हैं, और शरीर पर ऐसे फोड़े फूट पड़ते हैं कि कभी ठीक नहीं होते। परन्तु वह मना करने के बावजूद उनको पकड़ कर दुपट्टे में क़ैद कर लेती और माथे पर तिलक के स्थान पर रख लेती और अब्बा-मियाँ खुश होकर कहते—

हाँ—हाँ—ये तो केवल कीड़े हैं। खुदा ने उन्हें नूर भरी एक आँख

दे रखी है। तुम्हारी आँखों में भी तो नूर है, और वह जुगनू की तरह चमकती हैं।

और फिर वह आँखों को चूम लिया करते थे—

'हमारे यह जुगनू हैं, तुम्हारे वह—'

रात को खाने से छुट्टी पा कर वे दोनों अपने-अपने कमरों में चले गये। घर के सामान से पता चलता था कि इसे बहुत कम प्रयोग में लाया जाता है। वहाँ आवश्यकता की हर चीज थी, परन्तु बिखरी-बिखरी। खाना खिलाते समय चौकीदार ने अफसोस प्रकट किया कि साहब, यदि आपके आने की पहले सूचना होती तो सब प्रबंध ठीक-ठाक हो जाता। सरदार साहब उसकी इस बात पर बरस पड़े और उनका मूड अधिक खराब हो गया।

तीन-चार दिन यूँ अकेले में इकट्ठे रहते खाते-पीते रहने से उन्हें अहसास-सा हुआ कि वे न केवल एक-दूसरे को गवारा कर सकते हैं बल्कि एक-दूसरे का होना आवश्यक समझते हैं।

बरामदे में कुर्सियाँ डाले वे कितनी देर तक बैठे रहे। सरदार साहब ने सपना की तस्वीर बनाने का दोबारा निश्चय कर लिया था। वह उसके चेहरे और एक-एक कोण को ध्यान से देख रहे थे—सपना के चेहरे पर एक उदास मुस्कराहट हर समय बिखरी रहती। एक बार फिर वह यौवन के सफर पर संजीदगी के साथ चल निकली थी।

'सपना। मैं सोचता हूँ तुम्हारी तस्वीरें बनाऊँ।' उन्होंने चाय पीते-पीते अकस्मात कहा।

'आप न बना सकेंगे।' सपना ने कहा।

'क्यों ?'

'मैं नहीं बनवाऊँगी।'

उसने इस ढंग से कहा जैसे वह कोई राजकुमारी हो और कोई बेचारा कलाकार उसकी तस्वीर बनाने की इच्छा लिये अपना भाग्य

बनाने आया हो।

वह पिछले दो दिनो से बहुत ही नर्म पड़ गये थे। उसे प्यार से बुलाते, प्यार से देखते। परंतु सपना उनसे रुखाई से पेश आती। अब वह उनके बराबर की सतह से भी बढ़ कर ऐसी सख्त बात कह देती कि दोनों आश्चर्य-चकित हो जाते—और सपना कमाल के विश्वास से उनकी आँखों से झांकती जिनमें कभी तो स्वीकृति होता या कभी कुछ नहीं। फिर वह एक-दूसरे का हाथ पकड़े पहाड़ों की ऊँचाइयाँ देखने निकल जाते। ऐसे स्थानों पर घूमने चले जाते जहाँ से कोई न गुजरा हो और जहाँ झाड़ियों के अतिरिक्त चुप्पी का डेरा हो।

शाम की चाय पर वह फीके-फीके और कटे-कटे उत्तर दे रही थी।

'अच्छा तो तुम्हारा ख्याल है मैं तुम्हारी तस्वीर न बना सकूँगा। यह बात है तो अवश्य बनाऊँगा। तुम मेरी सराहना करना।'

'नहीं करूँगी।'

'क्यों?'

वह दिल की बात छुपा गई और हँसते-हँसते कहा—

'इसलिये कि आप मुझे पसंद नहीं करते।'

'वाह, तो अब तक हम झक मारते रहे हैं।'

'यह मैंने कब कहा।'

वह प्याला रख कर उठ खड़ी हुई और बरामदे के झिलमिलियों से बाहर देखने लगी।

'सपना! अब तुम चालाक और होशियार हो गई हो—तुम्हारे व्यवहार में अब विश्वास की झलक नजर आने लगती है और यह एक अच्छा शगुन है। विश्वास को गर्व नहीं बनना चाहिये, यह याद रखना—'

सपना ने वहीं खड़े-खड़े कहा—

'मशविरे का शुक्रिया—इसी तरह आप हौसला बढ़ाते रहे तो परिणाम अच्छे ही निकलेंगे।'

अपनी बात के वज़नदार और लहजे के चटकीला होने पर उसे अपनी विजय का संदेह हुआ। और वह मुँह दूसरी तरफ किये धीरे-धीरे मुस्कराती रही।

□□

अगले दिन वह केन्वस, रंग ले कर तैयार थे। सरदार साहब सुन्दर पृष्ठभूमि में सपना की तस्वीर बनाना चाहते थे। नौकर ने दोपहर का खाना टिफन में रख कर साथ कर दिया। सपना अपने-आप को बहुत महत्वपूर्ण समझ रही थी।

सरदार साहब को बहुत तलाश के बाद एक स्थान पसन्द आया। वह सामान उठाये चल-चल कर थक चुके थे। वह स्थान भी अच्छा था— प्रकृति का सौंदर्य, चुप्पी। सरदार साहब बैठने के लिये दरी बिछाते हुए बोले—

'चुप्पी की भी एक आवाज़ है, जिसे अकेलेपन में कान लगा कर सुना जाये तो दिल में उतर जाती है।'

चश्मे का साफ पानी और किनारों से झालर की तरह लटकती जंगली गुलाब की बेलें, थोड़ा हट कर एक टूटी-फूटी झोंपड़ी थी। कोई बेल उसके साथ बेतरह लिपटी थी और उसमें गुलाबी फूलों के झुमके लटकते थे।

सपना को एक अध-चिकने पत्थर पर बैठने का हुक्म मिला। वह जा बैठी। वह खुद केन्वस आदि लगा चुके थे और बार-बार ब्रुश आँखों के सामने ला-ला कर फासले मापते थे। फिर कहा कि वह एक विशेष कोण से गर्दन को झुकाये बहते पानों को ताकती रहे।

'हाँ बस ठीक है।'

वह थोड़ी-थोड़ी देर बाद हिदायत देते। सपना उनके संकेतों को मानती रही। यहाँ तक कि दोनों थक कर बैठ गये। उन्होंने कई सिगरेट फूँक डाले। जंगली फूलों की महक में मिली बढ़िया तम्बाकू की खूशबू जादू करने वाली थी। वह बेहद प्रसन्न थी।

ज़रा नीचे पहाड़ियों के साथ-साथ पगडंडी पर आते-जाते, इक्का-दुक्का लोग सपना को नज़र आ जाते। सरदार साहब क्या कर रहे थे? वह असम्बंधित बनी बैठी रही। इतने में एक नौजवान देहाती औरत सिर पर गागर रखे गुजरी। उन्होंने देखा कि वह दोनों हाथों से गागर को सँभाले चल रही है। और दिन के पहले पहर की पहाड़ी नर्म धूप औरत के चेहरे को दमका रही है।

एक नज़र देख लेने से पता चलता था कि वह औरत सुन्दर है। सरदार साहब कभी-कभी आँखें उठा कर देख लेते थे और सोच रहे थे—"एक सपना है कि कुछ पता ही नहीं चल पाता कि वह क्या है?

औरत की शरीर बोझ के कारण हर कदम पर थर्रा जाता। ढीला कुर्ता—पीछे गिरा हुआ दुपट्टा—वह देखते गये। ढीले कुर्ते से उधर बाँहों के आस-पास सपना भी उसे नज़रों से ओझल होने तक देखती रही।

गुड़ाप से पानी में छपाका हुआ। और सपना की चीख—

सरदार साहब ने पता नहीं क्या सोच कर उसे पानी में धकेल दिया। फिर एक सेकंड बाद ही उसके पीछे कूद पड़े। और सपना को बांहों पर उठा कर किनारे पर उछाल दिया। डर, सर्दी और क्रोध के मारे उसका शरीर काँप रहा था। वह बेहोश न थी परंतु आँखें बंद थीं। सरदार साहब उसे टिकटिकी बांधे देखते रहे। सपना को—औरत को, उसके भीगे हुये शरीर को, सुनहरी धूप और बर्फ जैसे ठंडे पानी में धुला हुआ निखरा-निखरा शरीर—वह कोई जलपरी थी या केवल धूप और पानी में नहाई हुई आम औरत—कुछ भी हो, वह बेहद सुन्दर लग रही थी।

सपना ने आँखें खोलीं और सरदार साहब को अपनी तरफ यूँ घूरते देखा तो झेंप मिटाती सिकुड़ गई। उसे लाज आ रही थी और क्रोध भी—वह उठ कर बैठने लगी तो वह बहकी हुई सी आवाज़ में बोले—

'ऊँ—हूँ—'

वह अभी तक इस नज़ारे को देख रहे थे। आज उन्होंने शर्म में भीगे हुए इस हुस्न को पर्दे के बाहर देखा था। हुस्न का नया रूप, नया कोण—उनके हाथ जल्दी-जल्दी चलने लगे।

केन्वस पर रंग बिखरते गये—रंगों पर रंग, चीखते-चिल्लाते रंग और गूँगी लकीरें—बिखराव—कला का नमूना—

सरदार साहब अब किसी तरफ भी ध्यान न दे रहे थे। न देखते, न सुनते थे, न कहते थे—सपना वहाँ से उठकर इधर-उधर की सैर करने चल दी। थाल-सा सूर्य आकाश के बीच आ चुका और उनके हाथ तेजी से चल रहे थे और मस्तिष्क कुछ सोच रहा था। कला की सम्पूर्णता दिल के खून से है, न कि आँखों के मात्र देख लेने से, केवल आँखें हुस्न के सुन्दरतम क्षण को कैद नहीं कर सकतीं। जो यथार्थ हुस्न है और आँखों के रास्ते दिल में बस जाता है, फिर वहाँ से एक नई और खूबसूरत सूरत ले कर उँगलियों के रास्ते केन्वस पर उतर जाता है।

'सपना—'

उनकी आवाज़ पहाड़ियों में गूँज गई। अचानक सब कुछ छोड़-छाड़ कर वह उसे आवाज़ें देते चल पड़े। उनका ख्याल था वह नाराज हो कर कहीं इधर-उधर छुप गई है।

'सपना—मुझे क्षमा कर दो—'

वह ऊँची आवाज़ में कह रहे थे। और अगले ही क्षण उन्होंने देखा कि वह मुस्कराती हुई चली आती है। उसकी आँखों में शिकायत है न दुःख—कोई अजीब विश्वास से भरी झलक है। जैसे वह किसी परिणाम पर पहुँच गई हो और उसने कोई निर्णय भी ले लिया हो।

सरदार साहब उसे देख-देख कर मुस्कराते रहे और कुछ न कहा। खाना खाते हुये भी कोई बात न छेड़ी।

उनकी नई तस्वीर फासले पर पड़ी धूप और हवा में सूख रही थी।

'तुमने मेरी तस्वीर देखी।'

सपना ने आँखें झपकाईं।

एक बदशक्ल अस्पष्ट औरत—एक पत्थर नंगा और घिनौना, रंगों के फीके धब्बे और उलझी रेखायें—क्या वह ऐसी ही है? सपना को दिल ही दिल में दुःख हुआ। यह तस्वीर यदि उसकी थी तो उसकी असलियत को प्रकट कर रही थी। सरदार साहब के पास बात करने के लिये कोई विषय न था। वह चुप बैठी खाती रही। वह उसे फिर घूरने लगे थे।

खाने के बाद वह दोबारा तस्वीर बनाने में लग गये। सपना दरी पर लेट गई। वह घास की पत्तियाँ नोंच-नोंच कर चबाती किसी सोच में गुम थी। सरदार साहब ने वहीं खड़े-खड़े पूछा—

'अच्छा, अब क्या ख्याल है?'

'मेरा?' सपना ने व्यंग से पूछा।

'यहाँ तुम्हारे सिवा कौन है जिसे मैं कह सकता हूँ?'

वह फिर व्यंग से हँसी—

'मेरे सिवा आप खुद भी तो हैं। फिर आपके पास दिल है, मस्तिष्क है—'

'मैं ही तो पूछ रहा हुँ—'

वह उसके पास आ बैठे। सपना दूर आकाश में उड़ते पक्षी की तरफ देखते हुए बोली—

'मेरे पास न दिल अपना है न मस्तिष्क—मेरे पास अपना कोई ख्याल नहीं—यथार्थ में मैं—मैं ही नहीं—मेरी रातें—मेरे दिन—मेरी साँसें—मेरा शरीर सब बिकाऊ है—जिसने कीमत लगाई उसी का हो गया।'

दोनों में देर तक बिना मतलब की बहस होती रही। शायद वे दोनों ही किसी परिणाम पर पहुँचना न चाहते थे—सपना ने ज़िंदगी का कार्यक्रम समय के हवाले कर दिया था। इसी सख्त साथी के हाथों कोड़े खा-खा कर होशियार भी होती चली गई।

अब वह सरदार साहब को बहला सकती थी, बहका सकती थी। उनके मामलों में दखल दे सकती थी। वह भी उसे कम से कम टोकते।

जब वह घर लौटे तो थके हुये न थे। सपना को यूँ मालूम होता था कि उसके दिल के किसी कोने में कोई छोटी-सी आशा सर उठा रही है, जैसे टूटी परन्तु वृक्ष से अटकी टहनी में कोंपल फूटे। सरदार साहब का मूड बिल्कुल ठीक था। आज वह छेड़छाड़ से बाज़ न रह सकते थे और बात-बेबात हँस पड़ते थे। शायद इसलिये कि आज एक ने भरपूर हुस्न देखा और दूसरा खुद ही हुस्न था। दोनों अपनी-अपनी जगह जीत गये थे। शायद दोनों ने समय को पहचान लिया, जो बीत रहा था। रात हो गई थी—आधी रात—सपना सोने के लिये अपने कमरे में चली गई।

□□

रात का एक बजा था। सरदार साहब कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। अक्सर जब रात करवटों में न गुज़रती तो वह पुस्तक उठा लेते। पाइप सुलगा लेते और पढ़ते, पहलू बदलते और पढ़ते रहते, यहाँ तक कि पुस्तक में कुछ न रहता, पृष्ठ सफेद कागज रह जाते, खाली—उनके अपने जीवन की तरह। फिर वह जम्हाइयाँ लेते, शरीर को तोड़ते दोबारा बिस्तर में गिर जाते—दोबारा उठ कर खिड़कियों, दरवाजों की कुंडियों को अच्छी तरह देख-भाल कर दो-एक पेग शराब पीते और सो रहते।

कोई नहीं जानता था वह पीते हैं, क्योंकि खुद उन्हें पता न था कि अलकोहल की तेजाब व्यक्तित्व की तह में बैठी हुई मैल को खुर्च कर बाहर ले आती है, और शराबी बकने और असली-नकली बताने लगता हैं।

परन्तु आज की रात वह बिना पिये ही नशे में थे। पुस्तक के निहायत दिलचस्प होने के बावजूद वह उसे पढ़ न रहे थे। सारी खिड़कियाँ और दरवाज़े खुले थे। दरवाजे की तरफ पीठ किये वह गाउन पहने पाइप पीते पुस्तक की तरफ देख रहे थे। सपना बिना किसी खटके के बिना बुलाये कमरे में दाखिल हुई और चुपचाप उनकी कुर्सी की बाँह पर बैठ गई। सरदार साहब चौंके नहीं। उन्होंने पुस्तक रख दी और अर्थपूर्ण दृष्टि से उसकी तरफ देखा। सपना की सांस उनकी पलकों को कँपा रही थी। दो शरीर—और हाथों का स्पर्श—दो पंख कटे पक्षी अपने-अपने पिंजरे से स्वतंत्र हो कर एक-दूसरे को पहचानने की चेष्टा में थे।

'सीप।'

सन्नाटे में एक हिचकी-सी सुनाई दी।

'मैं तुम्हें बहुत चाहता हूँ—'

उनकी आवाज में ऐसा अहसास था तो उसने उससे कभी न महसूस किया था। अब वह दीवान पर लेटी उनकी बातों पर ग़ौर कर रही थी—वह बहुत कुछ कह रहे थे। सपना ने उनकी तरफ देखे बिना पूछा—

'आप शादी क्यों नहीं कर लेते ?'

यह बात वह कब से कहना चाह रही थी।

'किससे करूँ ?'

उन्होंने पूछा। सपना हाथों के बीच में चेहरा रखे औंधी लेटी कालीन पर नजरें गाड़े थी। वह कोई राय न देना चाहती थी। उसके मस्तिष्क में जहरा की बातें शोर मचा रही थीं—यह वक्त था, यह मौक़ा था। यद्यपि यह वह न था जिसको चाह और चाव उसे दीवानों की तरह खींच

लाये थे—फिर भी सरदार साहब कितने अच्छे थे !

'जवाब क्यों नहीं देतीं।'

सरदार साहब पुस्तक के पृष्ठ उलटते पूछ रहे थे।

'शादी किसी लड़की से ही तो होगी, मर्द से तो नहीं—'

'हा—हा—' वह हँसे। 'वह लड़की तुम भी तो हो सकती हो।'

'मै—?'

वह सिटपिटा गई। सरदार साहब उसे इतना सम्मान दे देंगे उसे आशा न थी। कल तक तो वह उससे इतने असम्बंधित-से थे। आज उन्होंने अचानक उसमें क्या देख लिया। नंगापन—? क्या सब मर्द मांस के भूखे होते हैं और गर्म खून के प्यासे? उस क्षण उस बाजार से आई हुई सपना को मर्द की जात से घिन आई और वह चुप सोचती रही। फिर उठकर चल दी।

'कहाँ चलीं ?'

'सोने—नींद आ रही है :'

उसने झूठमूठ जम्हाई ली।

'तुम मुझसे शादी करोगी ?'

सरदार साहब का यह वाक्य अकस्मात न था, परन्तु सपना ने इसे ऐसा ही समझा।

'आपने अच्छी तरह सोच लिया ?'

'इसमें सोचना क्या है—मैंने केवल निर्णय किया है। तुम बैठो तो सही—मैं इतने में ग़ौर कर लेता हूँअभी—अभी—'

वह चुटकी बजाते कह रहे थे। परन्तु उनके चेहरे पर संजीदगी थी। सपना मुस्कराई। उसे बेतुकी बातों से उनके दीवाना होने का संदेह होता था।

वह काफी देर सोचते रहे—वह उत्तर की प्रतीक्षा में बैठी पुस्तक देखने लगी।

'सपना—मैं शादी नहीं करूँगा।'

वह उड़नखटोले में उड़ती अचानक धरती पर आ रही। सरदार साहब का व्यक्तित्व जितना आज खुला पहले नहीं खुला था। उसने क्रोध से पुस्तक पटक दी, और चीखी—'मैंने कब कहा—?'

'और मैंने कब कहा—मैं कलाकार हूँ—प्रकृति का पुजारी—अपनी कमियों को रंगों, कोणों और लकीरों में छिपाता रहता हूँ—मैं तुमसे शादी नहीं कर सकता—किसी से भी नहीं कर सकता—'

'आप कैसी बातें करते हैं—?'

सपना ने उन्हें परेशान देखकर पूछा। परंतु वह बोलते चले गये।

'क्षण के स्पर्श को तुम खूब समझती होगी क्या होता है? भरपूर शरीर को मेरी उंगलियाँ अच्छी तरह चख लेती हैं। फिर मेरा मस्तिष्क इस मज़े को अस्तित्व देना चाहता है। मैं ब्रश पकड़ लेता हूँ—और तस्वीर बनने लगती है—झूठा अस्तित्व—अस्तित्व की परछाईं, टूटी और भोंडी, मैं अच्छा कलाकार भी नहीं—मैं कुछ भी नहीं—'

वह अन्तिम वाक्य तक परेशान हो गये थे।

'आप कैसी बातें कर रहे हैं?' सपना ने फिर दुहराया।

'तुम नहीं समझ सकतीं।'

सरदार साहब ने अपना सर कुर्सी की पीठ पर टिका दिया। वह छत को घूर रहे थे और उनकी आँखों में उदासी के सिवा कुछ न था।

'सपना, मैं तुम्हारी कदर करता हूँ—तुम बर्दाश्त करना जानती हो। तुम मेरी साथी के हैसियत से रह सकती हो, मुझे मालूम है, परन्तु मेरा सफर रेगिस्तान-सा है—क्या तुम ऐसा जीवन अपना सकोगी?'

सपना आश्चर्य से देखती रही। वह एक पल को चुप रहे और फिर कह दिया—'तुम चली जाओ।'

□□

सपना के लिये यह सोचने और निर्णय लेने का क्षण था। वह कुछ कहे बिना उनके पास से उठ कर चली गई। अब क्या करना चाहिये। यहाँ से जाना भी उतना ही कठिन था जितना इस जगह पर रुकना। बिस्तर में लेटकर वह बेचैन थी। वह किसी बिंदु पर पहुँचना चाहती थी, पहुँच न पाती थी।

'मुझे क्या चाहिये ?' उसने अपने-आप से प्रश्न किया।

एक साथी—एक मर्द ? नहीं, आयु बिताने के लिए कई चीजों की आवश्यकता है। धन भी तो चाहिये। मगर किसके लिए ? क्यों ? क्यों आखिर—?

यह सब सोचते-सोचते उसे जीवन में पहली बार एक और रास्ते का ख्याल आया, मौत—। और मौत को इनसान किसी भी समय गले लगा सकता है। और मरना तो जरा भी कठिन नहीं। चुपके से कहीं कूद जाओ। या विष खा लो।—यह कदम तो उसे बहुत पहले सोचकर उठा लेना चाहिये था।

कई कठिनाइयों के हल इनसान की अपनी मुट्ठी में बंद होते हैं, परन्तु वह मुट्ठी खोल कर देखने की हिम्मत नहीं करता, ताकि कहीं निराशा न हो। और इस प्रकार वह तमाम मुसीबतें और दुःख सह जाता है, जिनमें क़दम-क़दम पर मौत जाती है परन्तु नहीं आती।

सपना के सामने पहाड़ों की ऊँची चोटियाँ थीं और भविष्य की तरह अविश्वसनीयता की हद तक गहरी खाइयाँ—ये उसकी ज़िन्दगी का निर्णय एक सेकंड में कर सकते हैं। प्रकृति उसे अपनी गोद में लेकर हमेशा के लिए सुला देगी। वह यह सोच कर उठी और शाल कंधों पर डाल कर पिछले दरवाजे से बाहर चली गई।

हर तरफ उजाला फैला था। उसने आकाश की तरफ देखा। उसे यूँ लगा जैसे चाँद झुक आया है और धरती के मस्तक पर बिंदिया की तरह लगा है। वातावरण में कुहरा-सा फैला था। और दूर कहीं घने वृक्षों में कोई पक्षी बोल-बोल कर थक गया लगता था। बगल वाली सड़क की बत्तियाँ अभी तक टिमटिमा रही थीं। चाँदनी में रास्ता देखना आसान है। वह कुछ ही देर में ऊपर वाली सड़क पर पहुँच गई। वहाँ पहुँचने का अहसास उसे उस समय हुआ जब उसका टाँगों ने उसे आगे ले जाने से इनकार कर दिया। वह एक पत्थर पर बैठकर लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगी। यहाँ से अपना बंगला साफ दिखाई देता था। सरदार साहब के कमरे की बत्ती जल रही थी। 'वह जाग रहे हैं—उन्हें नींद क्यों नहीं आती ?' उसने सोचा और फिर अपने आपको तसल्ली दी। जागते हैं तो जागते रहें—

अब वह दूसरी चढ़ाई चढ़ने लगी। दिल की धड़कन कानों में यूँ सुनाई देती थी जैसे टीन की चादर पर कोई लकड़ी की मूसल मारे—ठक-ठक—ठक-ठक—। उसने चलते-चलते माथे को पोंछा। इनसान शायद लकड़ी का दिल रखता है और टीन का खोखला शरीर। इस खोखे से टकराता दिल अपनी कहे जाता है, अपनी सुने जाता है। किसी की नहीं सुनता, किसी की नहीं समझता—आखिर क्यों समझे ?

वह सोचते-सोचते रुक गई और धड़कते दिल पर हाथ रख लिया।

ओह !—इस टीन का शोर मुझे खत्म कर देगा। मैं अब तक क्या

केवल अपने लिये जीवित थी ?—अब अपने लिए मरने में क्या हरज है ? किसी को क्या ? किसी को भी तो अफसोस न होगा—

परन्तु उसका जी चाहता था मौत के बाद कोई उसकी लाश पर फूट-फूट कर रोये। कौन रोयेगा ? वह खुद क्यों न रोये।—और उसने अजीब तरह से सिसकियाँ ले-लेकर रोना प्रारम्भ कर दिया।

रो चुकने के बाद उसे ऐसा लगा जैसे उसे कोई क्रोध नहीं, कोई शिकायत नहीं। दिल पर जमी हुई धूल की भारी तह आँसुओं के एक रेले से बह चुकी है। न जाने क्यों उसे अब्बा-मियाँ की बात याद आई कि औरत को तो जीवन में कई बार मौत का मुँह देखना पड़ता है। यूँ मर-मरकर जीने में जीवन की अच्छाई है। जीवन की पुस्तक का हर अध्याय दिलचस्प और अनोखा होता है। असमय की मृत्यु इस पुस्तक को अधूरा छोड़ देती है। चेष्टा करो कि पुस्तक पूरी हो जाये। यह बात वह तारा को उदास देखकर कहा करते थे।

सपना ने नीचे गहरे अन्धेरे में डूबी हुई खाई में झाँका। उस का कमजोर दिल काँप गया।

'ऊँह—सोचों और यादों के मुँह बन्द कर दो। तुम कायर हो।' उसने खुद को समझाया।

वहीं खड़े-खड़े उसने चारों ओर नजर दौड़ाई।

सफेदी चाँदनी, इक्का-दुक्का सितारा और कहीं-कहीं बादल का टुकड़ा। बचपन में वह इन बादलों में तस्वीरें तलाश किया करती थी। यह सब कितना दिलचस्प था। अन्धेरे उजाले में कितना आकर्षण है। परन्तु वह किस मकसद से घर से चली थी ? उसे अपना सोचा हुआ पूरा करना चाहिये। वह आज तक कुछ भी नहीं कर सकी। अम्मा–अब्बा-मियाँ—घर—पति—जुदाई—यह क्या चक्कर है ? सरदार साहब—हाय, मैं उनसे क्या चाहती हूँ—कुछ नहीं—सब कठिन है।

और उसने अपने-आपको हवा में उछाल देना चाहा।

□□

सरदार साहब ने अपने चारों तरफ फैली हुई घुटन महसूस की। बाहर कोई चल-फिर रहा था। रात के इस पहर कौन हो सकता है। चौकीदार होगा। वह मालूम करने के लिए बाहर निकल आये। कोई नजर न आया। वह टहलने लगे।

सपना के कमरे की बत्ती बुझी हुई थी। शायद वह सो चुकी थी। उन्होंने सोचा। फिर दूसरे क्षण उन्हें ख्याल आया, क्यों न उसे आवाज दी जाये। परन्तु अंदर से कोई उत्तर न मिला। दरवाजे को धकेल कर देखा, बंद था। उनका दिल चाहता था कि अभी थोड़ी देर पहले उन दोनों के बीच जो निरर्थक-सी बात हुई है उस कमी को पूरा किया जाये। वह जितने दिन इकट्ठे हैं उनके दिलों में किसी प्रकार का फर्क या अफसोस नहीं होना चाहिये। सरदार साहब को यह ख्याल पता नहीं क्यों आ रहा था कि वह दो नदियाँ है—एक का पानी मैला है और दूसरी का साफ। वह मिल कर बहें तो दोनों अपना यथार्थ खो देंगी।

इनसान के मस्तिष्क की नदी का बहाव कभी तेज होता है कभी सुस्त। वह कभी छलक कर बहती है, कभी गहरी। उसकी तह में जाने क्या-कुछ होता है। किस दिल को साफ कह सकते हैं? कैसे कह सकते हैं? यहाँ तक कि अपने दिल के बारे में भी कुछ नहीं कहा जा सकता।

सपना से बात करने का ख्याल उन्हें बेतरह सता रहा था। परन्तु

उसका दरवाजा खटखटा कर उसे आराम की नींद से जगाना भी न चाहते थे। वह सोच रहे थे, कब सुबह होगी और कब वह आमने-सामने बैठकर उसके चेहरे को पढ़ सकेंगे और तब उसके दिल के क्रोध को धो सकेंगे।

चाँद अपना काम पूरा करके घाटियों के पीछे जा चुका था। कुहरे की विस्तृत चादर हर तरफ फैली थी। सीली हवा सीटियाँ बजाती वृक्षों से उलझती फिरती थी। कहीं कोई चिड़िया सुबह के स्वागत में चहचहा रही थी।

सरदार साहब को अपने पीछे से पांवों की हल्की आवाज़ सुनाई दी। पलट कर देखा। परछाई वहीं रुक गई।

'कौन ?'

चुप्पी।

'कौन हो तुम—?'

वह आगे बढ़े।

'बोलो—'

'मैं हूँ—'

सरदार साहब ने आवाज़ को पहचान लिया।

'अच्छा तुम—सपना—'

'जी—'

वह वहीं खड़ी-खड़ी धीमी आवाज़ में बोली।

'तुम रात भर कहाँ रही हो ?'

वह क्रोध में गरजे।

'किसके पास गई थी—?'

उन्होंने उसे बालों से पकड़ लिया और घसीटते हुये कमरे में ले गये। जैसे वह उनकी ब्याहता हो और अपने किसी प्रेमी के साथ रंगे हाथों पकड़ी गई हो।

कमरे में धकेल कर उन्होंने उसके मुँह पर कई थप्पड़ जड़ दिये।

'मैं तेरी तबियत को कई दिनों से समझ रहा हूँ—आखिर औरत हो, बेशर्म हो—'

वह अपनी कहे जाते थे और सुनने के लिए रुकते न थे।

'मैं कहीं नहीं—किसी के पास नहीं गई—'

वह रोते-रोते कठिनाई से कह सकी।

'कोई तेरे पास आ सकता है ?'

'आखिर कौन ?'

वह क्रोध में चिल्लाई।

'चौकीदार—बैरा—रसोइया—'

तड़ाख—

सपना ने अपने ऊपर झुके हुए चेहरे पर जोर का थप्पड़ मारा।

सरदार साहब बिलबिला उठे।

'मैं कहीं गई थी या कोई मेरे पास आया था—मुझसे कोई नहीं पूछ सकता।'

सरदार साहब ठंडे से होकर बैठ गये। वह निहायत शर्मिन्दा थे।

'परन्तु तुम मेरी पाबंद हो सपना।'

उन्होंने धीरे से कहा। सपना ने उसी सख्त आवाज़ में उत्तर दिया—

'आप रुपया खर्च करते हैं। मेरा शरीर आपका पाबंद है।—मगर आप—'

'चुप रहो—'

वह गरजे और दोनों हाथों से सर थामे वहाँ से उठ गये और अपने-आपको बिस्तर में गिरा दिया।

'रुपये की बात न करो—यह तो पिंजरे की सुनहरी छड़ें हैं। इसमें कैद पक्षी एक न एक दिन फड़फड़ाने लगता है।

सपना घुटनों में सर दिये रो रही थी।

'तुम सच्ची हो—मैं तुम्हें आजाद कर दूँगा।'

वह कुछ देर चुप रहने के बाद बोले—

'तुम्हारे लिये मेरा व्यवहार, मेरा घर बिल्कुल ठीक नहीं। मैं तुम्हें किसी बात से नहीं रोक सकता—मुझे क्या अधिकार है रोकने का—'

सपना ने उठ कर सरदार साहब के पाँव पकड़ लिये। उनकी दिल पिघला देने वाली बातचीत ने उसका सारा क्रोध खत्म कर दिया था। वह ऊँचाई से गिरते कांच की तरह उनके पाँवों में बिखर गई।

'मैं नहीं जाऊँगी—आप जो कुछ भी हैं, जैसे भी हैं—आप मुझे क्षमा कर दें।'

'अभी थोड़ी देर पहले तो तुम चली गई थीं।'

सरदार साहब ने उसे उठा कर अपने पास बिठा लिया। वह उसके साथ बिल्कुल नाराज़ न थे। कुछ देर बैठे रहे, फिर बेचैनी से टहलने लगे।

'आप खुल कर न तो खुद बात करते हैं न किसी को करने देते हैं। मैं मरने की खातिर गई थी—परन्तु अपने हाथों मरना बहुत कठिन है। मैं कमजोर दिल हूँ, लौट आई हूँ। अब जिऊँगी, प्रकृति को यही स्वीकार है—'

'तुमने ठीक निर्णय लिया था सपना—परन्तु तुम भी कायर निकलीं—'

वह उनकी टांगों से लिपट गई। सरदार साहब सोफे पर बैठ गये और उसके सर को, कंधों को सहलाने लगे।

'आप ने मुझे क्षमा कर दिया है न।—मैं बहुत बुरी हूँ—परन्तु मैं सोचती हूँ मेरी किसी को आवश्यकता नहीं। यदि है तो बस इतनी कि रुपया कमाऊँ और लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करूँ। सोचा, मुन्दरा मौसी की आवश्यकताएँ पूरी करते करते किसी की सच्ची आव-

श्यकता बन जाऊँगी। औरत बेचारी तो होती काम आने के लिए है, उसकी मिट्टी तभी ठिकाने लगती है। परन्तु आपने कहा तुम चौराहे की धूल हो, पाँव से उड़कर किसी के सर पर जा भी पड़ो तो कितनी देर? मैं मिट्टी हूँ, परन्तु आप इस मिट्टी से एक घरोंदा बना सकते हैं। यह मिट्टी अपने विश्वास और प्यार के रस में गुँध कर महत्वपूर्ण और उपयोगी हो सकती है—पर आप आज़माना नहीं चाहते। आप दुनिया से डरते हैं—आप क्यों डरते हैं?'

सपना ने अपना सर उनकी गोद में रख दिया—जैसे थक गई हो।

वह आँखें मूँदे चुप पड़ी रही। कितनी देर गुज़र गई। फिर एक हल्की सुबकी ने चुप्पी को तोड़ा। वह तड़प कर उठी—

'आप रो रहे हैं?'

'सपना—'

सरदार साहब ने इसके सिवा कुछ न कहा।

और सपना ने सोफे की बाँह पर बैठ कर उनका सर अपने सीने पर रख लिया। वह उसे यूँ सहला रही थी जैसे सरदार साहब छोटा-सा बीमार और बेसहारा बच्चा हों, खेलने और हँसने से असमर्थ, या कपड़े का गुड्डा हो और किसी नासमझ बच्ची ने उसे उधेड़ कर रख दिया हो। वह अपने ओठों में कह रही थी—

'कोई बात नहीं—कोई बात नहीं—'

तीसरा भाग

□

निर्वाण

□□

बैठने का कमरा मेहमानों की हाओ-हू से गूँज रहा था। न मालूम वे लोग ताश के पत्तों से कौन सा खेल खेल रहे थे। बाहर बर्फ गिर रही थी। सर्दी काफी थी। सरदार साहब के मेहमान चाय पर चाय मँगवाये जाते थे।

सपना सुबह से बिस्तर में बैठी थी। सरदार साहब थोड़ी-थोड़ी देर बाद सलाह मशवरे के लिये आते थे। नौकरानी खानम एक ही बात कहे जाती थी—

'तुम्हें किसने मुसीबत डाली बेगम, कि तुम इस ठंडे मौसम में यहाँ पड़ी हो।'

परन्तु सपना खुश थी। अकेलापन, शान्तिपूर्ण घर, उसे और क्या चाहिये था! निश्चिंतता और एक ठीक-सा सहारा, जो उसकी हर बात का ख्याल रखता। सरदार साहब ने तो उसे ज़हरा और मुन्दरा की चिंता से भी स्वतंत्र करा दिया था। अब मुन्दरा उसे वापस नहीं बुला सकती थी, क्योंकि उसे बता दिया गया था कि सपना अपने घर वालों के पास पहुँच गई है। यदि इन लोगों ने पीछा किया तो हानि उठायेंगे। कभी-कभी ज़हरा की सहानुभूतियाँ याद आती थीं तो जी तपड़ता था, परन्तु सुना था कि उसने अपने-आप को पूरी तरह संगीत में गुम कर दिया है और अब उसकी कला का नाम दूर-दूर तक फैलने लगा है।

सपना को आपा जहरा से मिलने की इच्छा रहती। सरदार साहब ने यह मुलाकात किसी और समय के लिये उठा रखी थी।

अब वह खानम को कैसे बताये कि वह इस बर्फ के नरक में प्रसन्न है। खानम तो बस बोलने की खातिर बोलती रहती और उसका दिल बहलाये रखती। अकेलेपन का अहसास कम से कम होता था। उसे खानम की पहाड़ी लहजे वाली बातें भली लगती थीं। मगर आज जब से बैठने के कमरे में आवाजें गूँजने लगी थीं, उन आवाजों में एक सुर था जो उसके दिल में उतरता जाता था। यह एक आवाज़, केवल एक आवाज़ जिसे उसका दिल पहचानता था। यह आवाज़ जंगल की हवा के धीमे झकोरे की तरह टहनियों-पत्तों को झुलाती हुई डोलती फिरती थी—जैसे उसके अपने मन की आवाज़ हो। यह उसके दिल में बरसों की शताब्दियों की कसमसाती सर उठाती मौजूद थी। जैसे बर्फ के नीचे कोई नर्म हरी-भरी कोयल बहार की प्रतीक्षा में दम साधे बैठी हो इससे उसे कितना लगाव था। यह आवाज़ न थी, कोई आकार-सा था, सम्पूर्ण नहीं परन्तु रहस्यात्मक—इसी रहस्यात्मकता में उलझी वह जीवन के पुरपेच रास्तों पर उड़ी चली जाती थी। पता नहीं मंजिल कहाँ थी। यह आकार शायद उसकी मंजिल थी, या केवल एक ख्याल।

सरदार साहब जब प्यार के साथ उसे सीप कहते तो कभी-कभी उसे सचमुच यूँ महसूस होता जैसे उसका दिल सीप की मुट्ठी मे बंद मोती है। इस मोती की आब कैसी होगी? कोई कद्र करने वाला ही जान सकता है। कद्र करने वालों के हाथों में घूमता सीप खुद अपनी कीमत नहीं जानता था। शायद उसकी कीमत दिल के खून में डूबी हुई इक आह थी।

कई बार चाय भिजवाने और खाना खिलवा चुकने के बाद भी सपना को तसल्ली न हुई थी। उसे ऐसा लगता था जैसे उसे बहुत सारे काम करने हैं, जो धरे के धरे रह गये थे। सरदार साहब ने उसकी बेहद

'क्या—?'

'आज की महफ़िल को गरमा दो !'

'क्या ?'

सपना ने एकदम अपने-आप को धरती में धँसते महसूस किया। जैसे उसने सँभलने के लिये किसी कमज़ोर टहनी पर हाथ डाला हो और वह झटके के साथ टूट गई हो उसने पूछा—

'आप का मतलब है मैं नाचूँ ?'

'हाँ !'

'क्यों ?'

'मैं चाहता हूँ !'

'क्यों—?'

'मेरी खुशी !'

'आपकी खुशी मेरी खुशी नहीं ?'

'सपना, तुम मेरी होने वाली बीवी हो। कहना मानना बीवी होने की पहली शर्त है। शायद यह बात केवल गृहस्थनों को ही मालूम होती है।'

सरदार साहब ने सपना की दुखती नब्ज़ को छेड़ा और वह तड़प उठी।

'मुझे आज ही मौसी के पास भेज दो—मैं यहाँ एक क्षण के लिये भी नहीं रुक सकती।'

और वह क्रोध में उठ कर अपनी चीजें समेटती बोलने लगी—'जिसे मैं घर समझी थी वह मेरा नहीं, मेरी कोई जगह नहीं। मैं एक आवारा आत्मा हूँ। दुनिया में कोई नाता सच्चा नहीं। कोई चीज भी बस में नहीं। यहाँ तक कि अपना-आप भी नहीं। फिर क्यों न इस कमज़ोर और बिना पतवार की नाव को समय के तेज धारे पर छोड़ दिया जाये !'

उसके आँसू बह निकले। वह कह रही थी—

'मुन्दरा मौसी के हाँ यह बहाव बड़ा तेज है। वहाँ सोचने के लिये रुकने की अनुमति नहीं। रुकना और सोचना निहायत कष्टदायी है।'

सरदार साहब चुप खड़े देख रहे थे। उन्होंने नर्म पड़ते हुये कहा—

'तुम्हारी इच्छा है सीप!'

सपना के हाथ रुक गये। कुछ देर के बाद वह सरदार साहब की तरफ देखे बिना बोली—

'जाइये—साजिंदों से कहिये तैयार हो जायें—मैं आ रही हूँ। मैं नाचूँगी—मुझे तो हर हाल में नाचना है। समय की ताल पर यहाँ-वहाँ—कहीं भी—मैं इनसान हूँ। मेरी भावनायें मेरे साज हैं। इनमें कभी मीठे सुर होवे हैं, कभी दुःख में डूबे। परन्तु कोई सुर बेताल नहीं चलता। दिल की धड़कने साथ रहती हैं।—चलिये मैं आ रही हूँ!'

सरदार साहब संतुष्ट होकर चले गये। उसने मुँह-हाथ धो कर कपड़े बदले, कंघी-चोटी की। तैयार हो चुकी तो सरदार साहब मित्रों की महफिल में ले गये। वह अपने-आप को भूल कर नाची। और मुस्करा-मुस्करा कर दाद वसूल की। सरदार साहब प्रसन्न थे। जब वह उसे कमरे में छोड़ने आये तो उससे लिपट गये—

'तुम कितनी अच्छी हो, सीप—तुम कितनी अच्छी हो'

☐☐

सुबह आँख खुली तो घर में कोई चहल-पहल न थी। सूर्य की किरणें चिमनी से अंदर झाँक रही थीं। शायद बाहर हवा चल रही थी। वह लिहाफ़ में दुबकी लेटी रही। उफ़, कितना थक गई थी। चलो सरदार साहब का दिल तो खुश हुआ। वह उनके मित्रों के चेहरों को भूल गई

जिस चेहरे के दर्शन की खातिर वह नाचने पर तैयार हुई थी, वह तो वहाँ उपस्थित न था। फिर वह कल का दिन किस आवाज पर कान धरे रही। आखिर वहम मेरा पीछा क्यों नहीं छोड़ता। मैं जीवन के हर मोड़ पर हर निराशा के बाद इस भ्रम का सहारा ले लेती हूँ—यह क्यों ?

उसने लेटे-लेटे खानम को आवाज दी।

'खानम—साहब कहाँ हैं—'

'चले गये !'

खानम ने बाहर से आवाज दी।

'कब—?'

'अभी थोड़ी देर पहले।'

सपना को आश्चर्य न हुआ। क्योंकि उनके अनिश्चित मूड से अब वह परिचित हो चुकी थी। कई बार ऐसा हुआ था। थोड़ी देर के लिये घर से बाहर निकले फिर वहाँ से किसी और तरफ चले गये। नौकर या जानने वाले के हाथ पत्र भिजवा दिया। आते भी तो बिना सूचना दिये। सपना को शुरू-शुरू में उलझन और परेशानी हुई थी परन्तु बाद में उसने समझ लिया। मर्द उड़ते पक्षी होते होंगे। अब वह नौकरों और उनके बच्चों से हँस-बोल कर समय गुजार लेती थी। यहाँ वह अपनी इच्छा से रही थी। यहाँ उसका अपना अलग घर था। कोई रोकने-टोकने वाला न था।

खानम कमरे में आई और उसे एक पत्र पकड़ाया।

'साहब यह दे गये थे—'

'ओ, खानम, मैं पूछने ही वाली थी कि कोई संदेश तो नहीं छोड़ गये।'

खानम चली गई और सपना ने पत्र खोलकर पढ़ना शुरू किया—

प्यारी सपना,

मैंने तुम्हारे बारे में निर्णय किया है। तुम मुन्दरा मौसी के पास

क्यों जाओ आखिर ? परन्तु यहाँ भी न रहो। केवल मुझसे दूर चली जाओ। मैं तुमसे दूर होते हुए भी सोचता हूँ, तुम मेरे निकट हो। सपना, तुम मुझ पर छाई हुई हो। और मुझे कुछ भी सोचने समझने नहीं देती यह अत्याचार है। तुम मुझे इतना क्यों जीत गई हो ? खुदा के लिये रुको और मुझे अधिक जानने की चेष्टा न करो। यहाँ तक कि मैं इसके लिये तैयार न हो जाऊँ। तुम्हारा मुन्दरा मौसी के पास जाना न मेरे लिए लाभदायक है न तुम्हारे लिए—बहुत सोच-विचार के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ।—तुम जानो या न जानो मैंने तुम्हारे अब्बा-मियाँ को तलाश करवाने की बहुत चेष्ठा की है, वह मिले नहीं—फिर तुम—तुम उनके लिये चिन्तित क्यों हो ?—मैंने तो सुना है तुम उनकी संतान ही नहीं हो। तुम्हारी माँ—लोग कहते हैं—यानी तुम्हारे बाप की पूना बीवी बाजारू थी—और तुम—? तुम्हारी प्रकृति बड़ी अजीब है। मुझे तुम्हारे बारे में नये सिरे से सोचना पड़ेगा।—और मैं सोच रहा हूँ। फिलहाल तुम चली जाओ। दूरी हमें इस योग्य अवश्य बना देगी कि हम कह सकें, हम जो कुछ हैं वही हैं।

संयोग से एक जगह तुम्हारी आवश्यकता आई है। अजीब बात है, कुछ लोग केवल काम आते रहने के लिये पैदा होते हैं और उनके काम कोई नहीं आता, बेचारे—। तुम चिन्ता न करो, मैं तुमसे भाग नहीं रहा। मैं ऐसा कर ही नहीं सकता। यह सब कुछ जो हो रहा है इसमें मेरी और तुम्हारी दोनों की अच्छाई है। समझीं। मैं परसों आऊँगा। तुम्हें चलने के लिए तैयार रहना चाहिये।

पत्र में इतनी बातें इसलिए लिख दी हैं कि तुम अपने-आप को सोच-समझ कर तैयार कर सको। बात-चीत करने से तुम गलत राय बना लेती हो। फिर एक ही समय में मुझे तुम्हें खुश भी रखना पड़ता है और शरारत भी होती रहती है। यह कितना कठिन काम है।

सीप, आओ ! और आकर मेरी आँखों को चूम लो कि इन आँखों

ने तुम्हें देखा और दिल ने तुम्हें परख लिया—मेरी आँखों को मुबारक-बाद दो। तुम इनको पढ़ना जान गई हो।—सपना, मैं तुझे चाहता हूँ। किस सीमा तक ? आओ हम फैसला करें, दूर-दूर बैठ कर—। फैसला करने में सहायता देना। सपना। सपना—! शायद—शायद—मुझे सहारा दो—

तुम्हारा केवल तुम्हारा

सपना ने काँपते हाथों से पत्र तह किया और लम्बी-लम्बी साँसें लेती कुछ देर चुप बैठी रही। जैसे खिलाड़ी मुकाबले की रेस में दौड़ने के लिये अपने शरीर और जान को तैयार करे। फिर उसने आश्चर्यचकित खड़ी खातम की तरफ देखा जैसे उसे पहचानने की चेष्टा कर रही हो।

'खानम—'

'जी—'

खानम एक कदम उसकी तरफ बढ़ आई।

'चली जाओ—'

खानम चल दी। पत्र के सम्बन्ध में जानने के लिये उसके दिल में कुरेद थी। सपना ने पीछे से पुकारा—

'रुको खानम—मिल तो लो।'

खानम चलते-चलते रुक गई। आश्चर्य और प्रसन्नता के मिले जुले भावों के साथ वह सपना के पास आई।

'आप—आप कहीं जा रही हैं ?—अभी ?

खानम ने बेचैनी से पूछा। सपना चुप थी। शायद खानम से गले मिलने के बारे में सोच रही थी।

'मिलाप की इच्छा में जो मजा है, वह मिलाप में कहाँ—जाओ खानम—दूरी अच्छी है। खुदा ने भी तो अपने और हमारे बीच चक्कर डाल कर फासला स्थापित किया है। निर्वाण का मजा इसी में है कि हम

अजाने रास्ते पर रहें। फिर अचानक मंजिल अपने सामने आ जाये—हा—हा।'

सपना ने पागलों की तरह ठहाका लगाया।

'बस यह आँख-मिचौली का खेल है खानम, चलते रहो—अपने आस-पास, कभी ज़माने के—यहाँ तक कि—फासला—फासला।'

वह निढाल सी होकर बिस्तर पर गिर गई।

□□

बेगम साहिबा के पाँव दाबते-दाबते उसे ऊँघ आ गई। वह गिरते-गिरते होश में आई। बाहर सुबह होने वाली थी। आँगन में लगी हुई अंगूर की बेल में मनचली चिड़ियाँ कभी-कभी अपनी आँख खुल जाने की सूचना देती थीं।

'अभी थोड़ी देर में वातावरण चहचहाहटों से भर जायेगा।'

उसने अपने पलंग पर लेटते-लेटते सोचा। बड़ी बेगम की तबीयत रात कई बार बिगड़ी। तमाम रात लोग जागते रहे। सपना तो बेगम की पट्टी के साथ पट्टी जोड़े पड़ी थी। जरा नींद का झोंका आता कि 'हाय' से आँख खुल जाती। अब वह एक ही करवट पड़ी थी। शायद आँख लग गई थी।

बेगम साहिबा दिल की पुरानी रोगी थीं। यह रोग कहीं जवानी में लगा था। बुढ़ापे के साथ दर्द भी बढ़ते गये। कुछ अकेलेपन के ख्याल से हौल आते। बस उनका जी चाहता हर समय कोई न कोई पास बैठा मीठी-मीठी बातों से जी बहलाया करे। पुस्तक पढ़-पढ़कर सुनाये। नहीं तो उन्हें अजीब वहम और भ्रम होने लगते, देस-परदेस नौकरी करते

लड़के को कुछ हो न जाये। अरे कहीं इधर-उधर दिल न फँसा बैठे। किसी को ब्याह कर घर में ले आया तो क्या होगा ? कहीं लड़की को उसका मियाँ न छोड़ दे—क्या पता बड़ी बहू ने मेरे लड़के को कुछ खिला दिया हो—जभी उसी का दम भरता है।

इसी प्रकार के संदेह और भ्रम सुन-सुन कर सपना के कान पक गये थे। बड़ी-बी की बातों पर ध्यान न दे और आगे से बढ़ावा न दिया जाये तो वह सर हो जातीं और फिर दिल का दौरा पड़ने का डर होता। कभी-कभी वह खुद ही कहतीं—

'मेरे सन्तान क्या हुई अचंभा हुआ। किसी समय दिल से चिन्तायें दूर नहीं होतीं।'

इन खामखाह की पालतू चिन्ताओं का उन्हें खुद भी हिसाब नहीं था। परन्तु क्या करतीं। और कुछ करने को था भी नहीं। जब तक मियाँ का साथ रहा वह तरह-तरह से दिल बहलाये और परचाये रखते थे। बच्चे कब तक निभाते, उनकी अपनी दिलचस्पियाँ और ज़िम्मेदारियाँ थीं—

'बहू बी आईं तो सब कुछ ही चौपट हो गया। बेटे साहब को उसके चोचलों से फ़ुर्सत कहाँ, और दूसरा बेटा—वह तो अलबेला है।'

बेगम साहिबा ने बातों-बातों में कुछ दिनों के अन्दर-अन्दर उसे अपने पूरे खानदान से परिचित करवा दिया था। उनके कितने बच्चे हैं और किस-किस मिज़ाज के हैं।

सपना को यहाँ आये हुए कई दिन गुज़रे थे, परन्तु इस दौरान उनका कोई बेटी या बेटा मिलने नहीं आया था। पत्र और सन्देश अवश्य आते।

'कोई इतना चाहने वाली माँ को यूँ छोड़ता है। वह दिल ही दिल में बड़ी-बी के लिये कुढ़तीं। उनकी बातों से पता चलता था कि वह उम्र भर बच्चों को इतना चाहती रही हैं कि अब वे तंग आ गये हैं। वह

जवान और धनी थे, अपने ऊपर अधिक पाबंदियाँ बर्दाश्त नहीं कर सकते।'

इस घर में सपना की हैसियत मेहमान की न थी। बल्कि बेगम साहिबा के व्यवहार और विश्वास से उसको ख्याल होता था कि वह इस घर की मशीनरी में एक नया पुर्ज़ा है। वह खुशी-खुशी हर काम में दिलचस्पी लेती। वैसे अपनी आदत के अनुसार अधिकतर चुप रहती। परन्तु यहाँ आ कर उसने जो शान्ति पाई वह उससे पहले केवल मां-बाप के यहाँ थी—और कहीं नहीं। बहुत से काम उसने अपनी इच्छा से अपने ज़िम्मे ले लिये थे। बेगम साहिबा उसके बारे में उसके मुँह से ही जान सकी थीं। वरना सरदार साहब ने कुछ नहीं बताया। आये और इतना कह कर चले गये—

'खाला, यह आप का दिल बहलाये रखेगी, अच्छी लड़की है।'

बड़ी-बी को यह साफ-सुथरी लड़की पहली नजर में प्रभावित कर गई। उन्होंने उसकी तरफ मुलायम नज़रों से देखा और मुस्करा दीं। सपना ने मुस्करा कर नज़रें झुका लीं। जैसे दोनों में समझौता हो गया हो।

अक्सर जब बेगम साहिबा बातें करते-करते आँखें मूँद लेतीं या बिजली की रोशनी उसकी आँखों को चमकाती तो सपना को कभी-कभी बरसात की भीगी हुई रात याद आने लगती जो पलक झपकते गुज़र गई। और अपने पीछे एक उमसी हुई सुबह और घुटा सा दिन छोड़ गई, जिसमें आकाश पर बादल टुकड़े-टुकड़े हो कर बिखरे थे। और कहीं वृक्षों में छिप कर बैन करती कोयल कूकती—

'कहाँ हो—कहाँ हो—'

शायद वह अपने प्रेमी को बुलाती थी।

□□

'माँ जी—'

सपना ने बालों में तेल रचाते बड़ी-बी को बुलाया।

'क्या बात है।' उन्होंने नर्म-नर्म हाथों के नशे में ऊँघते पूछा।

'जब से मैं आई हूँ, इस सामने वाले कमरे की झाड़-पोंछ नहीं हुई। बारिश हो रही है। क्या यह खाली पड़ा है। ताला तो बहुत बड़ा लटक रहा है।'

'लड़की, तुझे बड़ी कुरेद है इस कमरे की। असल में यह कमरा इनके अब्बा का था। उनकी मौत के बाद मैंने इसमें ताला डाल दिया। खुला रखूँ तो दिल पर बड़ा सदमा लगता है। कभी-कभी छोटा आ कर इसमें रह लेता है। वह भी किसी चीज़ को इधर से उधर नहीं करता। किसी ज़माने में यह कमरा घर का दिल होता था। अब तो कबाड़खाना है। मैं अपनी प्यारी चीज़ें इसमें डालती रहती हूँ। घर भर की तस्वीरें भी इसी में रखी हैं। मैं समझती हूँ जानदार की तस्वीर रखना और बनाना पाप है। सुना है जिस घर में ऐसी तस्वीरें हों उसमें रहमत का फ़रिश्ता नहीं आता। भला इनसान ऐसी हिम्मत ही क्यों करे। यदि हूबहू तस्वीर बनाता है तो उसे उसमें जान भी डालनी चाहिये। बच्चों ने और उनके बाप ने बहुत तस्वीरें खरीदीं और बहुत बनवाईं। मैंने दृश्यों की तस्वीर लगी रहने दीं, शेष सब उतार दीं—मेरी तस्वीरें तो मेरे बच्चे हैं, हँसते-बोलते, खुदा उन्हें स्वस्थ और सुरक्षित रखे। मुझे उनसे बस एक ही शिकायत है कि वे मेरे पास अधिक देर नहीं रहते।'

बड़ी-बी बताती चली गईं, 'हाँ तो तू इस कमरे की सफाई का कह

रही थी। आज ही करेंगे। मेरी तबीयत ठीक है। मुझे तुम पर विश्वास है, तू क्या करेगी तस्वीरों का। एक बार एक तस्वीर गुम हो गई। लड़के मेरे सर हो गये। भला मैं क्या जानूँ। अल्ला बख्शे, इस मामले में बाप भी ऐसा ही सरफिरा था सरदार साहब से तभी तो दोस्ती पक्की है इन सब की। एक बार। क्या हुआ कहीं विलायत से एक लेडी आई। उसे तुम्हारे सरदार साहब ही लाये थे। उसने दावा किया कि लोग तो देखी चीज़ों की तस्वीर बनाते हैं। मैं स्वप्नों तक को कागज़ पर कैद कर सकती हूँ।'

'स्वप्नों को?' सपना ने अपनी दिलचस्पी प्रकट की। वह बड़ी-बी के बाल ठीक करके सामने हो कर बैठ गई।

'अरे लड़की, उसे तो पैसे बनाने थे। ये हमारे बुद्धू मर्द बातों में आ गये। अब क्या था हर कोई देखे हुए स्वप्नों को दुहराने लगा उसके सामने। हमारे मियाँ साहब सब से बड़ी उम्र के और सब के अधिक खर्चीले। लेडी को उनके स्वप्न में ही खूबी नजर आई। उन्होंने सुनाया कि मैंने स्वप्न में स्वर्ग भी देखा और नरक भी—विस्तार से सब कुछ कहा। कुछ दिनों में वह कागज़ पर स्वर्ग-नरक दिखा कर दो हजार खरे करके चलती बनी। अब मियाँ साहब हैं कि आये-गये को दिखाते हैं।'

बेगम आप ही आप हँसीं।

'वह तस्वीर सबीना अपने घर ले गई है। मेरी बेटी को अपने घर के लिये इतना लालच है, तोबा ही भली। जो चीज पसंद आयेगी उठा ले जायेगी। बड़ा आयेगा वह चीज़ें छांटता फिरेगा। अरे भई, मैं कहती हूँ कुछ छोटे के लिए भी बच जाये। अभी तो वह बंजारा है। बदमाश—'बड़ी-बी ने निहायत प्यार से कहा। सपना ने उसके चेहरे पर ममता का नशा बिखरते देखा।

'बहुत कहती हूँ ब्याह कर ले। चल अपनी इच्छा से कर ले। एक अपनी पसंद की ला कर मैं भर पाई। परन्तु इस तरफ आये भी तो।

बस्ती-बस्ती पर्वत-पर्वत घूमता है। बंजारा कहीं का—'

सपना के दिल में इस अमीर और पढ़े-लिखे बंजारे को देखने की इच्छा पैदा हुई।

'कब आयेंगे ?' वह पूछे बिना न रह सकी।

'आ जायेगा अचानक किसी दिन। कहता है माँ मैं ब्याह कर लूँ तो विभाजित हो जाऊँगा। लो भला विभाजित होना क्या होता है।'

बेगम साहिबा कुछ याद करते हुए बोलीं—

'मैंने उसकी बात कर रखी है अपनी भतीजी से। बड़ी बहू इनके अब्बा की भांजी है। सोचती हूँ छोटी मेरे पास तो रहेगी। उसे मुझसे हमदर्दी और प्यार तो होगा। परन्तु क्या करूँ ? वह अलबेला हँसी-हँसी में दिन बिताये जाता है और कहता है :

'माँ तुझे अपने खून की बढ़ोतरी की इच्छा है और मुझे अपनी आत्मा की तलाश। भला पूछो आत्मा शरीर से बाहर कहाँ खो गई ? असल में कच्ची उम्र में कच्ची बातें मस्तिष्क को परेशान किये रखती हैं।'

अचानक उन्हें सपना के ध्यान से सुनने का ख्याल आया।

'ओ हो लड़की, तुझे भी बातों का चस्का है। देख कैसे ध्यान लगा कर सुन रही है।'

सपना चौंक कर बोली—

'माँ जी, वह सच ही कहते हैं। एक ऐसा समय आता है जब आत्मा गुम हो जाती है।'

'अरी दीवानी हुई है—हमारी तो कभी नहीं हुई।'

'किसी-किसी की होती है, सब की नहीं।'

'हें ?'

वह हड़बड़ाई। सपना उनकी 'हें' से बौखला गई।

'मेरा मतलब है—' फिर उसने बात पलट दी, मेरा मतलब है कि

निर्धनों की—निर्धनों की आत्मा आवारा होती है, आवारा—हूँ, बस ऐसे ही—आप मेरा मतलब समझती हैं न ? बस आवारगी में कभी खो जाती है। नहीं, यह भी नहीं—'

उससे कोई बात बन न पड़ती थी और वह इधर-उधर ऊटपटांग जोड़े जाती थी।

'दीवानी हुई है लड़की। खाना खा और जाकर सो रह। रात को जागते रहने से दमाग़ सो गया है तेरा।'

सपना उठ कर चली गई तो बेगम साहिबा उसके बारे में सोचने लगीं। यह बिखरी-बिखरी बातें करने वाली लड़की देखने में भी इतनी बुरी नहीं। कम बोलने वाली है परन्तु उसकी आँखें हर समय कुछ सोचती और खोजती रहती हैं। क्या उसकी आत्मा भी खो गई है ? जवान लड़के-लड़कियाँ अधिक देर कुँआरे रहें तो उनका यही परिणाम होगा। आत्मा क्या चीज है ? जवानी का पक्षी अकेले में फड़फड़ाये न तो क्या करे।' बड़ी-बी सोचती चली गईं।

हमारे तो पंख अभी पूरी तरह निकले न थे कि काट दिये गये। ए-हे, यह फड़फड़ाहट कैसी होती होगी। यह आत्मा की आवारगी कहाँ सैर कराती होगी ?

बड़ी-बी को इस अनचखे मेवे की क्षणिक सी इच्छा पैदा हुई। उसके पास तो संतुष्टि थी, केवल संतुष्टि। किसी काँटे की चुभन न थी, कोई कड़वी याद न थी। कोई ऐसा अनुभव न था जो चिकनी चीज बन कर उनकी रगों में खून के साथ-साथ दौड़ता फिरे और हर साँस एक गवाही दे। हाँ उनके पास एक गम था पति की मौत का, अपने विधवा होने का, परन्तु लोगों ने सहानुभूतियाँ और प्यार निछावर कर-कर के उसका मजा ही बदल दिया। निकट के लोग उसे बच्ची और कच्ची कोयल सी समझने लगे थे। हर समय खुश रखना, बहलाना-फुसलाना। यहाँ तक कि वह ग़म भी बस कहने को रह गया। हालांकि कभी-कभी जुदाई का

विचार अकेलेपन में बिजली की तरह लपक जाता, और वह कुछ देर पिछले अच्छे दिनों की याद में गुम हो जातीं—पर ज्यों ही उदासी छाने लगी बच्चों को तार दे दी। जिसके पास समय होता भागा चला आता। वैसे शुरू-शुरू में सब लोग जमा हो जाया करते थे, परन्तु अब उनमें से कोई एक आता, जितनी देर रह सका रहता और चला जाता। उसके जाने के बाद फिर वही अकेलापन, और घर की वीरानी !

बड़ी-बी अपने-आप से कह रही थी—

यह वीरानी और अकेलेपन का अहसास ही शायद आत्मा की आवारगी है। परन्तु यह तो बुढ़ापे का ग़म है। ठहरा-ठहरा और धुँधला-सा। जवानी का ग़म तो एक बाढ़ की तरह होता है जो पता नहीं कहाँ-कहाँ की खाक छनवाता होगा। कल की छोकरी ने कितने विश्वास के साथ वही बात कही, आत्मा आवारा हो जाती है। यही बात जब उसका बेटा कहा करता है तो उसकी आँखों में परछाईं-सी तैरने लगती है, जिसे वह पहचान नहीं सकती। कोई नाम नहीं दे सकती। यह परछाईं कोई स्वप्न है जिसका कोई यथार्थ नहीं है—

विचारों में खोई-खोई वह बड़बड़ाईं—

'मेरे बच्चे तू सलामत रह—तू स्वस्थ और सलामत रह मेरे बच्चे। बस मुझे तेरी उन्हीं आँखों का भरोसा नहीं—बाहर घूमता-फिरता है, क्या-क्या देखता है मैं क्या जानूँ ? ऐसे स्वप्न तो शायद हर कोई देखना चाहता है। हमें तो जीवन की व्यस्तताओं ने इतनी मुहलत ही न दी थी कि बैठकर हवाओं में छूट सकें। आम औरत को घर का आराम मिल जाये तो वह मुर्गी की तरह बच्चों में लगी जीवन गुज़ार लेती है। यदि ऐसा-वैसा क़दम उठा ले, तोबा-तोबा—'

उन्हें किसी प्रेम की बात याद आ गई। और वह लेटे-लेटे डोल गईं—

'प्रेम हर हालत में बुरी चीज़ है मेरे बेटे।' 'ये लौंडे-लौंडियाँ आखिर

क्यों उसके लिए दिल थामे फिरते हैं।'

वह अपने आप से प्रश्न करते-करते उठीं और कुल्ला कर दुआ करने में व्यस्त हो गईं।

खुदा ने उन्हें सुरक्षित रखा। कितनी बड़ी कृपा है उसकी, लगाव भी हुआ तो पति से। हर तरफ ठीक। फिर उन्होंने दो-चार आयतें पढ़ीं। अल्ला कैसे-कैसे बुरे-बुरे ख्याल आते थे। आने शुरू हुए तो आते ही चले गये। इस लड़की की भी कहीं बात कर देनी चाहिये। सरदार साहब आएँ तो पूछा जाये। क्या खबर कहीं कह रखी हो? न हुआ तो लड़कों की कमी नहीं।

उन्होंने सपना का ब्याह करने का इरादा किया। बस वह उसे अकेला नहीं छोड़ेंगी। और जो उनका बेटा आ गया—तो? लड़की जात घर में अधिक देर रही तो कई खराबियाँ पैदा हो सकती है। सरदार तो सरफिरा है, उसे यहाँ छोड़कर निश्चिन्त हो गया। इस लड़की की आँखों में प्रश्न और सोचें गड्ड-मड्ड हुई रहती हैं। कहीं उनका बेटा इन प्रश्नों का उत्तर तलाश करने बैठ गया तो? यद्यपि प्रेम-व्रेम कोई चीज नहीं, और जो कहीं हो जाये तो? ओय-होय-होय—

वह तिलमिला उठी और तुरन्त ही सजदे में चली गईं।

'अल्ला ऐसा मत करना—ऐसा कभी न करना!'

□□

दिन ढले जब सपना उनके पास आई तो वह अभी तक तस्बीह हिला रही थीं। उन्होंने सपना को यूँ देखा जैसे पहली बार देख रही हों और पहचानने की चेष्टा में हों। आंगन में दीवारों के साये

फैले थे। और सर्दियों की शाम पल-पल साँवली हुई जाती थी।

सपना ने कुर्सी पर बैठते हुए पूछा—'दिन तो गुजर गया। आपकी तबीयत अब कैसी है?'

'अच्छी हूँ।' बेगम साहिबा ने संक्षेप में कहा और तस्बीह रखकर पलंग पर आ लेटीं। वह चिन्तित दिखाई देती थीं।

'मैं ज़रा दुआ माँग रही थी। अल्ला मेरे बच्चों को हर मुसीबत से बचाये, ताकि मैं चैन की मौत मर सकूँ।'

अचानक पता नहीं उन्हें क्या ख्याल आया, उठीं और जाकर बग़ल वाले कमरे का ताला खोलकर अन्दर चली गईं। उसमें अनगिनत संदूक और अटैची केस भरे थे। इस कमरे को वह खुद खोला करती थीं। और अपने विश्वास के आदमी से अपने सामने साफ़ करवाया करतीं। हमेशा एक बक्स खोलकर बैठ जातीं और दिखा-दिखाकर बतातीं—

'यह मक्के-मदीने की तस्बीह है। यह रूमाल। यह खाक-पाक की पोटली। और आबे-ज़मज़म की कुप्पी, इत्र—'

सपना की उपस्थिति में तो यही एक संदूक हर बार खुला। बड़ी-बी उसको अपनी अमूल्य चीज मानती थीं। हर चीज को आँखों से लगातीं और चूमतीं। उन चीजों में से कुछ ने हज के दौरान उनके साथ-साथ काबे का चक्कर काटा था। वह खुदा के घर से आई थीं और पवित्र थीं। नौकरों में कोई बीमार हुआ, यह बक्स तुरन्त खुल जाता, और उनके लिए स्वास्थ्य का कारण बनता। इसमें ऐसी भी कुछ चीजें थीं।

परन्तु आज बत्ती जलाकर उनका हाथ एक बड़े संदूक को खींच रहा था और सपना इस प्रतीक्षा में थी कि वे उसे आवाज दें तो जाये। वे संदूक को कठिनाई से सरका पा रही थीं।

'मैं आऊँ माँ जी।' सपना से आखिर रहा न गया।

'हाँ आओ।'

वे हाँफते हुए बोलीं, 'अब जान जवाब दे गई है।'

खुद वे बड़ी पेटी का सहारा ले कर खड़ी हो गईं और चाभी सपना को पकड़ा कर खोलने का संकेत किया।

जिस्त की चादर का पुराना संदूक खुला और इत्र की पुरानी सुगंधियाँ जैसे स्वतंत्र हो गईं। फिर बेगम साहिबा ने उसे दूसरे कमरे में ले जा कर तख्त पर रखने को कहा। सपना उसे देख लेने के कुतूहल से इतना बोझ उठा कर ले गई। जाने इसमें क्या कुछ है वह जान लेने के लिए बेचैन थी।

'हाँ, यहां आराम से बैठ कर देखेंगे।'

वे संदूक की तरफ देखते हुए बोलीं।

'लड़की यह मेरी शादी का संदूक है। तुम कहोगी ऐसा पुराना! बैठ जाओ न—इधर आ कर बैठो।'

उन्होंने अपने पास बैठने का संकेत किया।

'सबीना मेरी बेटी तो अब किसी बात में दिलचस्पी नहीं लेती। उलटे जो चीज़ पसंद आई झट माँग ली। तुम्हीं बताओ, सारी चीजें तो नहीं दी जा सकतीं। लड़कों-लड़कियों की शादियाँ कर दो तो वे लालची और स्वार्थी हो जाते हैं। यह सब चीजें तो मेरे छोटे के हिस्से की हैं। यदि पहले मर गई तो—' वे उदास हो गईं और विषय बदल दिया—

'खैर तुम देखोगी, पिछले दिनों में काम कितना स्वच्छ और पक्का होता था।'

बातें करते-करते उन्होंने कुछ गहने, कुछ भारी जोड़े बाहर निकाल कर रख दिये। ऐसे कुछ कपड़े सपना ने अपनी माँ के पास भी देखे थे। अब्बा-मियाँ ने उसकी शादी के समय कहा था, यह सब तेरे हैं—परन्तु उन सब को शरीर से छुआ पाना भी भाग्य में न बदा था। कुछ ऐसे ही कपड़े मुन्दरा के यहाँ भी मिले। उनमें क्या छुपा था कि पहन कर शरीर बेचैन हो जाता कुछ करने के लिए, किसी का हो रहने के लिए। ये

कपड़े संबल के थे। ये जहरा ने दिये थे। सपना जब भी उन्हें पहनती एक अजीब-सी गंध उसके शरीर से लिपट जाती और इच्छा बन कर उसे परेशान किये रहती। और अब बड़ी बेगम साहिबा कुछ ऐसे ही कपड़े दिखा रही थीं जो कि उसके लिए न थे। सपना सोच रही थी, यह उनकी प्यारी छोटी बहू के लिए हैं। इनमें लिपट कर किसी की इच्छा दम न तोड़ेगी—एक घर होगा, उस घर के वासी संतुष्ट और निश्चत—एक-दूसरे की चाहत में खोये हुए—एक ही मंजिल—

बड़ी-बी चीजों को धीरे-धीरे सहज-सहज हाथ लगाती थीं। जैसे यह अरमानों के कोमल रत्न थे। ज़रा सख्त हाथ लगने से टूट जायेंगे।

'यह मुझे उन्होंने मुँह-दिखाई में दी थी।'

वह कर्ण-फूलों की डिबिया खोल कर सामने रखते हुए बोलीं, 'इनमें सच्चे लाल जड़े हैं—देखो—तुमने पहले कभी देखे हैं?'

'कभी नहीं।'

उसने बिना झिझके कहा। बेगम अपने काम में मग्न थीं।

'यह मैं अपनी छोटी बहू को दूँगी। जो मुझे मेरी सास ने चढ़ाये थे वह मैंने अपनी बड़ी बहू को दे दिए। यही तरीका है। तुम्हारे यहाँ कैसे होता है?' बेगम साहिबा ने ऐसे ही पूछा।

'कुछ भी नहीं!'

'अरे—यह कैसे हो सकता है?'

उन्होंने आश्चर्य प्रकट किया।

'तरीका सब धन से होता है। निर्धनों के तरीके तो बस यही हैं, खा लिया—जी लिया—मर गये—'

'अरे मरना भी कोई तरीका है।'

बेगम साहिबा ठहाका लगा कर हँसीं।

'खैर तू बातें दिलचस्प करती है। तू बोला कर न। खुश-खुश रहा कर। हर समय गुमसुम रहती है। क्यों भई? देख तू दुआ कर, मेरे

छोटे बेटे के सेहरे के फूल जल्दी खिलें मैं तेरे ब्याह का भी सरदार से पूछूँगी।'

उन्होंने आँखों के रास्ते सम्मति माँगी और मुस्कराईं।

'क्या सरदार साहब आप से कुछ कह गये हैं?' सपना ने पता करना चाहा।

'नहीं तो। हर संतान वाली जानती है, कब क्या करना चाहिये। और तुमने खुद ही तो बताया कि तुम्हारा दुनिया में कोई नहीं—कोई दूर की मौसी हैं और बस—परन्तु लड़की यह सोच-सोच कर मैं परेशान हुई जाती हूँ कि तेरी मौसी कैसी है जो तुझे इस उम्र में यूँ छोड़ रखा है—सरदार की शोहरत भी कुछ ऐसी-वैसी है।'

सपना कुछ न बोली।

'वैसे आदमी खरा है। मैं उसे बेटों की तरह समझती हूँ। उसके अब्बा मेरे मियाँ के बचपन के दोस्त थे। खैर छोड़ो इस बात को।'

उन्होंने संदूक की तरफ ध्यान दिया।

'मेरा दिल चाहता था कभी इन सब चीज़ों को धूप दिखाऊँ। सबीना अपने बच्चों में लगी रहती है। ज़ीनत का भी यही हाल है। ज़ीनत है तो हलीमन की बेटी, परन्तु हम उसे अपने घर का सदस्य ही समझते हैं। बड़ी सुलझी हुई लड़की है। उसका मियाँ ग़रीब उसे रोज़-रोज़ कैसे मेरे पास भेज दे। गुलाबदीन बेटे की बीवी पर मुझे विश्वास नहीं। उसकी नज़र ही खराब है। तुम जानो—दूध को, सोने को, स्वास्थ्य को नजर खा जाती है—और वह है भी ढीली।'

'मेरी नज़र तो न लगेगी।'सपना ने झिझकते हुए पूछा।

'हा—हा—' वे ज़ोर से हँसी।

'तुम्हारी आँखों में पवित्रता झलकती है। यह तुम्हारे अच्छे खून का असर है।—ये चीज़ें नयी रोशनी की लड़की पहनेगी थोड़ी, परन्तु मैं पहनवा कर देखूँगी चाहे वह बाद में तुड़वा ही दे।'

'उन्हें आप की खातिर सोचना चाहिये और पहनना चाहिये।'

'कौन किसी की खातिर सोचता है ?'

बैरा चाय रखने आ रहा था। बेगम साहिबा ने पाँव की चाप पाते ही डाँट दिया—'इधर मत आना।'

सपना का दिल कुढ़-सा गया। इन्सान ने इन्सान का विश्वास खो दिया है। विश्वास खो जाये तो बाकी क्या रह जाता है।

गुलाबदीन मिनमिनाता वापस चला गया।

'पहले चाय पी लीजिये न ?'

वह बैरा के पीछे लपकी।

'तू इन नौकरों की परवाह मत किया कर लड़की। जा खुद जाकर ले आ चाय।'

चाय की ट्रे तख्त पर रखे गुलाबदीन खड़ा सपना को घूर रहा था। वह लड़खड़ा कर सँभली और सख्त लहजे में कहा—'इधर लाओ, मुझे पकड़ाओ।'

'अच्छा जी।' गुलाबदीन के लहजे में अपमान भरा था। सपना ने उसके चेहरे पर प्रतिक्रिया जानने के लिए दृष्टि उठाई। परन्तु वह जा चुका था।

और सपना उसके बारे में सोचती चाय की ट्रे लेकर अन्दर आ गई।

गुलाबदीन अपने-आप को तमाम नौकरों का सरदार समझता था। खुदा ने शक्ल तो इतनी अच्छी न दी थी। पर होशियार और फुर्तीला था। काम करना और दूसरों से लेना खूब जानता था। बेगम साहबा ने उसे घर की जमादारी सौंप रखी थी क्योंकि वह वफ़ादार था। परन्तु सपना उसके बारे में वही राय न बना सकी जो घर की स्वामिनी की थी। वह यह जानती थी कि हर बड़े घर में एक न एक नौकर ऐसा अवश्य होता है जो घर की जड़ों में बैठा रहता है। जैसे सरदार साहब

के घर में शाइस्ता थी, या मुन्दरा के घर में बोंधू। घर वालों को पता तक नहीं चलता कि वे उसकी मुट्ठी में हैं।

जिस दिन से सपना इस घर में आई थी, सब कुछ ठीक-ठाक था। केवल गुलाबदीन की नजरें संदिग्ध थीं। जैसे वह उसके सम्बन्ध में जानता हो या जानना चाहता हो। सपना हमेशा उससे कतराती और वह निकट आने की चेष्टा करता।

□□

जुम्मा का दिन था। बेगम साहिबा नहा-धो कर नमाज अदा कर चुकीं। दुआ माँगते-माँगते हाथ पर नजर पड़ी। दुआ की बजाय अँगूठी के सम्बन्ध में सोचने लगीं।

'अच्छा वहीं पड़ी होगी जहाँ उतार कर रखा करती हूँ। कहीं स्नान-घर में न उतारी हो? पर मैं तो पहले ही उतार दिया करती हूँ। आज नहा कर पहनना भूल गई। खैर मिल जायेगी।'

जल्दी-जल्दी दुआ समाप्त की, और ऊँची आवाज़ में कहा 'देखो भई हमारी अँगूठी कहाँ है?'

फिर खुद गईं और अपने तकिये के नीचे देखा। सिंगार-मेज पर दराजों में तलाश किया। कहीं न मिली। स्नानघर में भी नहीं थी। यह अँगूठी वह मक्का से लाई थीं। इस पर विशेष ढंग से कलमा लिखा था। सम्मान स्वरूप वे उसे ऐसी-वैसी जगह न ले जातीं और उसको बहुत कम अपनी उँगली से अलग करतीं।

सब को इकट्ठा किया गया। शपथें दे कर पूछा गया। कोई न माना। घर भर को झाड़ा। हर कोना देखा गया। आखिर को मिली तो

अल्मारी में, सपना के कपड़ों के नीचे पड़ी थी। मारे परेशानी के उसके मुँह से अपनी सफ़ाई में एक शब्द न निकला। और गुलाबदीन की दृष्टि कहती थी—

'देखा न। हम तो पहले ही जानते थे।'

बेगम साहिबा ने सब को झिड़क कर कमरे से बाहर निकाल दिया।

'दूर हो जाओ सब मेरी नज़रों से।'

गुलाबदीन क्रोध और घृणा से देखता चला गया। तब बेगम साहिबा सपना से बोलीं—

'कोई बात नहीं, पहली ग़लती है।'

आज का स्वर सहानुभूतिपूर्ण था। परन्तु उसे अच्छा न लगा। उसने बेगम साहिबा को विश्वास दिलाने की पूरी चेष्टा की कि यह किसी नौकर की शरारत है, परन्तु वे निहायत नर्मी से कह रही थीं—

'कभी दिल में ख्याल आ भी जाये तो क्या हुआ, तू क्यों परेशान होती है।'

वे अब भी कृपालु थीं।

इस घटना से सपना का दिल बेगम साहिबा से यूँ कट गया जैसे वृक्ष से पत्ता—उसे मुन्दरा का घर बेहद याद आया। उस दिन वह बिलख-बिलख कर रोई जैसे माँ की गोद से गिर पड़ी हो, या जवानी के बीच में ही विधवा हो गई हो। वह अपने-आप से पूछती रही, क्या घर से छूटे हुओं का कभी कोई घर नहीं बनता ?

सरदार साहब के घर में वह रखैल थी। मुन्दरा के घर में कस्बी और अब बेगम साहिबा के घर में उसकी क्या हैसियत है ? उन्होंने उसे अपने घर में जगह दी है। लोग यूँ पलकों पर बिठा कर आँसू की तरह गिरा देते हैं—हम समय के रौंदे हुए राही—हम आँसू—कहाँ से आये हैं ? निर्माता ने जाने क्या, कैसे कहा कि प्रकृति की आँख हँसते-हँसते आँसुओं से भीग गई। हम उस व्यर्थ के ठहाके की पैदावार आँसू

हैं। निरर्थक, बेकार—शायद हम किसी के दिल का खून नहीं !

रात को उन्होंने बुला भेजा। वह गई तो देखते ही बोलीं—'फिर क्या हुआ लड़की ? सरदार साहब आयेंगे तो तेरी कहीं बात करने की सोच रही हूँ।'

वे बराबर दिलासा दिये जाती थीं। और सपना को उन पर क्रोध आ रहा था। वे घृणा के तीर प्यार की सान पर चढ़ा कर क्यों मारती हैं। वह तिलमिला कर बोली—

'आखिर आपको मेरी इतनी चिन्ता क्यों है ? मैंने अपनी शादी का निर्णय ले रखा है।'

'हैं लड़की, ऐसी मुँहफट !'

बेगम साहिबा के मीठे लहजे में कड़वाहट भर गई, 'किस से ? मैं भी तो सुनूँ। घुन्नी हो, बताया नहीं—'

'सरदार साहब से।'

सपना ने बात ऐसे अचानक उगली जैसे उसे मितली हो रही हो।

बेगम साहिबा एक ऊँ करके उसे घूरने लगीं। वह काँप रही थी।

'फिर तो तू आवारा है डाइन !'

उन्हें उस रात दिल का तेज दौरा पड़ा। सब के हाथ-पाँव फूल गये। सपना अपने-आप को अपराधी समझ रही थी और दुःखी थी। उसने ऐसी बात क्यों कह दी। गुलाबदीन उसे तसल्ली देते हुए कहता था, 'ये अमीर लोग ऐसे ही चोंचले करते है। इनके लिए क्या दिल मैला करना ?'

हलीमन और बावर्चिन पूछती थी—

बीबी तुमने क्या बात कह दी जो बेगम साहिबा तुम्हारा ही जिक्र किये जाती हैं।

बेगमा साहिबा जब होश में आतीं तो कहतीं—

'इसको यहां से निकाल दो—इसको यहां से भेज दो—यह मेरे बच्चे

को भी घेर लेगी ।

सपना उनके सामने जाती तो वे अपना संतुलन खो बैठतीं—

'यह बुरी आत्मा है—यह खुद कहती है मैं आवारा आत्मा हूँ ।'

और गुलाबदीन अजीब नशीली नजरों से सपना को देखता था ।

बेगम साहिबा सो गईं तो रात के पिछले पहर सब नौकर अपने-अपने ठिकानों पर चले गये । सपना ने चिटखनी चढ़ा ली थी । गुलाबदीन वापस मुड़ा ।

'मैंने सोचा बीबी अकेली घबरायेगी । मैं पास बैठता हूँ ।'

'घबराहट कैसी । तुम जाओ ।'

वह कहने के बावजूद न गया तो सपना को क्रोध आ गया ।

'जाता क्यों नहीं ।'

'चले जायेंगे ।'

वह खुले दरवाजे से लग कर खड़ा हो गया और लगाव भरी दृष्टि से सपना को घूरा ।

'निकल जाओ—दफ़ा हो जाओ यहाँ से ।'

वह चीखी । जिस लड़की की ऊँची आवाज तक न किसी ने सुनी थी वह यूँ चिल्लाई तो नौकर लोग एक बार फिर भागे चले आये । गुलाबदीन दौड़ता हुआ उनके पास से गुजर गया ।

'क्या हुआ ? क्या हुआ ?'

कुछ पूछते थे, कुछ व्यंग करते थे । बेगम साहिबा की भी आँख खुल गई । सुबह तक कानाफूसियाँ होंगी । सपना अपने कमरे में गई और कुंडी चढ़ा कर बिस्तर में लेट गई । जैसे कोई बात ही नहीं हुई हो और लोग पागल थे, बकवास करते थे ।

'मेरा दिल साफ़ है । मुझे किसी की क्या चिन्ता !'

खुद को समझाते-समझाते उसकी आँख लग गई ।

□□

दूसरे दिन सपना ने सरदार साहब के नाम लम्बा पत्र लिखा और निवेदन किया कि वे शीघ्रातिशीघ्र आयें। और उसे अपने साथ ले जायें। वरना वह खुद उनके गाँव वाले मकान पर पहुँच रही है। फिर जो हो सो हो।

सारा दिन उसका किसी से भी बात करने को जी न चाहा। उसे अपना कमरा भी काटने को दौड़ता था। क्या रह गया था इस घर में? कुछ भी नहीं। और था भी क्या? एक सेवा-भाव था जिसे भी बेगम-साहिबा ने ठुकरा दिया। सफाई में एक बात न सुनी और निर्णय दे दिया। गुलाबदीन को उलटा अवसर मिल गया था। वह शरारत पर शरारत किये जाता था और बेगम साहिबा उसके विरुद्ध कोई भी बात सुनने को तैयार न थीं।

'भई हमारा आजमाया हुआ नौकर है।' अब कोई क्या कहे।

आज वह बड़ी-बी के बुलावे के बावजूद भी उनके कमरे में न गई। पत्र लिखने के बाद उसे कुछ तसल्ली और ढारस हुई। शाम तक उसने घृणा और क्रोध पर काबू पा लिया। वह बेगम साहिबा का हाल पूछने गई तो मालिन उनके पाँव दबा रही थी। सपना को देखा तो बोली—

'बीबी, जोबना का जादू बावरा कर देता है। ऊँच-नीच पता नहीं चलती। गुलाबदीन है ही बदमाश। मगर तुम बेगम साहिबा से क्यों रूठी हो। बल्कि तुम्हें क्षमा माँगनी चाहिये। चलो माँग लो क्षमा, छोटी हो।'

'क्यों? किस बात की?'

'जो भी हुआ।'

'मेरा उनका कोई झगड़ा नहीं। बल्कि उनको सोचना चाहिये कि मुझ पर दोष लगाया और मुझे अपनी सफाई में कुछ कहने न दिया।'

'बीबी तमीज़ से बात करो।' मालिन ने कहा।

बेगम साहिबा टुकुर-टुकुर मुँह देखे जाती थीं, जैसे कोई अजीब बात हो रही हो जिसकी उन्हें बिल्कुल आशा न हो।

सपना का जी चाहता था कि इस घर से जाने से पूर्व वह बड़ी-बी से कुछ शिकायतें अवश्य करे। ताकि उनकी नज़र सही और गलत की पहचान कर सकें। आखिर वह ये तोहमतें अपने पर क्यों ले। उसने महसूस किया कि वह लोगों के हाथों में कठपुतली है। आखिर क्यों? क्या वह इतनी कमज़ोर है? वह अपने अकेलेपन से डरी हुई और भी कमज़ोर होती जा रही है। कोई भरोसे का साथी नहीं। बस इतनी सी बात! लोग शायद उसे इस घर की नौकरानी समझते हैं। वाह—

मालिन की बातों से वह यही सोच सकती थी। वहाँ अधिक कुछ कहे बिना वह वापस चली गई।

जाने क्या सोच कर कमरे में जाकर उसने अपना सबसे सुन्दर जोड़ा पहना। हार-सिंगार करते समय आईना देखते हुए वह सोच रही थी।

वह आज इन लोगों को बता देगी कि यथार्थ में वह क्या है? क्या समझा है इन्होंने।—और वाकई उसका यथार्थ है क्या? जड़ कहाँ है? बुनियाद कहाँ है? वह कहाँ से चली और कहाँ जा रही है? उसका आदि कहाँ और अन्त कहाँ?

उसका दिल डूब गया। वह क्या बतायेगी कि उसका प्रारंभ कहाँ से हुआ। यहाँ अवश्य घपला पड़ेगा। वह बुढ़िया को कैसे प्रभावित करेगी? प्रभावित करने की आवश्यकता ही क्या है?

बेगम साहिबा रात का खाना खा कर नमाज़ की तैयारी कर रही थी कि सपना पहुँची—

'माँ जी।'

उन्होंने मुड़ कर देखा।

'कौन है ?'

आँखें झपकाईं, जैसे पहचानने की चेष्टा कर रही हों।

'मैं हूँ, सपना।'

'हैं बड़ी बाँकी बनी है लड़की !' वह आश्चर्य में थीं।

'हा—हा,' सपना हँसी।

'माँ जी, मेरा ख्याल है कल चली जाऊँ, परन्तु जाने से पहले आपकी गलतफहमियाँ दूर करने आई हूँ। आपने मुझे जो कुछ भी समझा उसके लिये मैं अपने-आप को और सरदार साहब को दोषी समझती हूँ— मैं जानती हूँ उन्होंने यह खेल खेलने की आवश्यकता क्यों महसूस की ?'

वह खड़ी-खड़ी कह रही थी। और बेगम-साहिबा गाव तकिये का सहारा लिये बिस्तर पर बैठीं एकदम चीखीं—

'लड़की तू तो मुझे छलावा लगती है, छलावा। या तो मैं पागल हूँ या सरदार साहब का दिमाग फिर गया है—अरे ज़ीनत की माँ—ऐ हलीमन।'

वे अपनी पुरानी नौकरानी और मालिन को पुकारने लगीं जो कभी उनके बच्चों की आया थीं और अब रसोई में बैठी खाना खा रही थीं।

'इधर आना तो—देख तो !' वे कहती चली गईं।

'माँजी बुरा न मानें तो बैठ जाऊँ।'

सपना ने व्यंग करते हुये अनुमति माँगी।

'हाँ हाँ—लड़की।' वे अब बहुत नर्म पड़ गई थीं। सपना उनके पलंग की पायंती पर बैठ गई।

'तो जो कुछ बताने आई है पहले दिन ही कह देती।'

'माँ जी, आप सुनें तो सुनाने को बहुत कुछ है। न सुनें तो कुछ भी नहीं—'वह भूमिका बाँध रही थी कि बेगम साहिबा फिर ज़ीनत की माँ को पुकारने लगीं।

'ज़ीनत की माँ—ओ ज़ीनत की माँ, इधर मत आना।'

परन्तु बुढ़िया सटर-पटर करती हुई चली आई। बेगम साहिबा ने माथा पीटा।

'ऐ हे—इन नौकरों ने तो मुझे पागल कर दिया। मैंने तुझे कब बुलाया। मैं तो कह रही थी इधर मत आना।'

ज़ीनत की माँ ने उनकी बात को न समझा और आश्चर्य से बोली।

'बेगम साहबे, यह सपना है! अरे यह तो गिरगिट की तरह रंग बदलती है।' बड़ी-बी की तेज़ आँखों को देख कर हलीमन ने बात बदल दी।

'आपने खुद ही तो बुलाया था।'

'चल जा—बातें न बना।'

अचानक उन्हें सपना में दिलचस्पी पैदा हो गई, जैसे कोई बच्चा ठहरे हुए पानी में कंकरी मारे और लहरों के कंपन को हैरानी से देखे और सोचे, ऐसा क्यों हुआ ? आखिर कैसे हुआ ?

'हाँ तो फिर, तू क्या कह रही थी ?'

सपना इस ख्याल में थी कि वह अपनी कहानी कहाँ से प्रारम्भ करे। कौन सा भाग बड़ी-बी को अधिक प्रभावित करेगा ? कौन-कौन सी बातें छोड़ देनी चाहिये। उनकी जगह वह झूठ ही बोलेगी, क्योंकि झूठ सतही मस्तिष्क के लिये तसल्ली देने वाला होता है। उसके मस्तिष्क में बेगम साहिबा का यही रंग था कि धन के नशे में चूर औरत धीमे और सच्चे रंग की पहचान नहीं रखती। फिर उसने अपनी कहानी वहाँ से शुरू की जहाँ से उसने दुनिया को समझ की आँखों से देखना शुरू किया था। उसके पास परेशानियों से परे साफ दिल था, और सर पर सहारा था। आस-पास फैली हुई प्रकृति की सुन्दरता—चुभन और जलन का संदेह तक न था—यह सब क्या था ? एक सुन्दर स्वप्न।

वह तो खुद एक स्वप्न है। पता नहीं क्या सोच कर किसी ने मेरा नाम सपना रख छोड़ा है। वह जीवन भर स्वप्न देखती रही। कभी लम्बे, कभी छोटे, शायद जीवन भी एक स्वप्न ही है। फिर यह सुन्दर स्वप्न एकदम भयानक हो गया। लगातार बदलता रहा। समय के साथ इसकी भयानकता घटती-बढ़ती रही। स्वप्न का फैलाव बढ़ता रहा, बहाव तेज होता रहा। मैं उसकी लहरों में डोलती रही। मेरी झोली में अनुभवों के अंगारे हैं जिनसे मेरा जीवन सुलगता रहता है। इसके अतिरिक्त जीवन से और क्या प्राप्त हो सकता है ?'

बेगम साहिबा ध्यान से सुन रही थीं। सपना अचानक हँस पड़ी—

'माँ जी ! खुदा ने इच्छायें इन्सान की झोली में भर दीं और उनके पूरा होने का गुर अपने हाथ में रख लिया। प्यास और तलाश इन्सान का भाग्य बन गई।'

'लड़की, तू मुझे कोई रटी हुई किताबी कहानी सुना रही है।' बेगम साहिबा ने बीच में टोका, जैसे उन्हें विश्वास न हो रहा हो।

'जैसी कहानी तू सुना रही है, ऐसी तो किताबों में होती हैं।'

सपना कहते-कहते चुप हो गई। वह तो उनकी गलतफहमी दूर करने आई थी, अपना किस्सा ले बैठी। जी इतना भरा था कि सब कुछ कहने को दिल चाहता था।

'हाँ, जब मैं छोटी थी और अब्बा-मियाँ कोई कहानी सुनाते थे तो मुझे भी वह कहानी किताबी ही लगती थी। माँजी, जीवन तो खुद एक किताब है। हालात इसके पृष्ठ उलटते हैं। परन्तु इस किताब को सब नहीं पढ़ते। अकेलापन इसे पढ़ने का अवसर देता है। ऐसा अकेलापन और अँधेरा जिसमें बाहर से रोशनी और आशा की कोई किरण न आ सके। इन्सान दिल का दिया जला कर इसको पढ़ता है।'

उसके मस्तिष्क की नदी का बहाव बहुत तेज था। और जुबान साथ न देती थी। कोई न कोई बात मस्तिष्क से निकल जाती। इस दौरान

बेगम साहिबा ने कई बार टोका और वह चौंक-चौंक गई। अपनी कटी-फटी कहानी सुनाते-सुनाते वह अचानक चुप हो गई।

'लड़की, मुझे तुम्हारे मस्तिष्क पर संदेह होता है।' बड़ी-बी ने आँखें पूरी खोलकर कहा।

'मां जी, आप मुझ पर हर तरह से संदेह कर सकती हैं। आपके संदेह दूर करने के लिये मैंने अपने जीवन की घटनाएँ सुनाई हैं। यदि आप—आप—' वह हकला गई।

यदि आप वैसे ही नाराज़ हैं तो मैं क्षमा माँग लेती हूँ। किस बात की क्षमा ? इसका मुझे पता नहीं परन्तु मेरा दिल कहता है आप बुजुर्ग हैं, आपके सामने झुकने में शान्ति है।'

सपना ने बड़ी-बी के घुटने पकड़ लिये। उसका गला रुँध-सा गया। आँखें झुकी थीं।

'माँजी ! मैं चोर नहीं हूँ। आवारा नहीं हूँ। जो जीवन से यूँ घबराया हो वह चोर नहीं हो सकता। माँजी ! आप अच्छे और बुरे खून की बात करती हैं। दिल की बात कीजिए। उनकी नियतों में बुराई होती है जिनके दिल नहीं होते, दिल तो रोक देता है, हर कदम पर टोक देता है माँजी।'

और वह लगातार रोने लगी थी।

बड़ी बेगम ने उसे उठाया और रुँधी आवाज़ में कहा—'मुझे जीवन का इतना अनुभव नहीं। न रो, मत रो बेटी। खुदा सहायता करेगा।'

उनके हृदय में प्यार उमड़ आया था, और वे बेचैन सी सपना के सर पर, कंधों और कमर पर हाथ फेर रही थीं—

'यह गुलाबदीन तो लफंगा है। मुझे कहाँ से पता चल जाता। एक तो तेरा चुप रहना मुसीबत है। कोई खुलकर बात न करे तो कैसे समझ में आये ? तुम आजकल के जवानों को पहेलियाँ बुझवाने की आदत जाने क्यों पड़ गई है। हमें तो राय देने की अकल ही नहीं होती थी। तुम

कहना चाहती हो मगर डरते-डरते—मेरा छोटा बेटा सानी है न, वह भी ऐसे ही करता है—हाँ—तू तो इस अच्छे जोड़े में अच्छी लगती है। अच्छी तरह रहा कर न। यह मुँह बिसूर कर रहने से क्या मतलब। आ लेने दे सरदार साहब को, अजीब खलंडरा आदमी है। मेरा बच्चा भी कुछ उसी के क़दमों पर चलना चाहता है। वाह—क्या हुआ जो हमारे नबियों ने कनीज़ों से अक़्द किये ! और तुम—? मेरा मतलब है, तुम कनीज़ बिलकुल नहीं हो। लक्ष्मी घर चल कर आये तो उसको यूँ ठुकराते हैं। अच्छी औरत मर्द के लिए और अच्छा मर्द औरत के लिए जीते जी निर्वाण है।'

'इस गुलाबे की तो मैं अभी खबर लूंगी। आखिर इससे किसने कहा था !'

□□

उस रात गुलाबदीन की खासी झाड़-झपाड़ हुई। और वह दूसरी सुबह बीवी को लेकर गाँव चला गया। मालिक की डांट-डपट की हमेशा उस पर यही प्रतिक्रिया होती कि कुछ दिनों के लिए कहीं छुप जाता। अपने अनुसार वह घर वालों को मुसीबत में खड़ा कर जाता था। कम क्रोध आता तो बीवी को मार-पीट कर तबीयत हल्की कर ली। अब की उसने एक ऐसे व्यक्ति से हार खाई थी जो देखने में कमज़ोर लगता था।

अब रसोई का काम लगभग सपना के कंधों पर आ पड़ा। हलीमन ऊपर का काम कर देती थी। एक बार फिर सपना ने इस घर को अपना समझ लिया था। सरदार साहब आकर ले जायें तो दूसरी बात थी। सर्दी और अकेलेपन के कारण बेगम साहिबा रसोई में आ

बैठतीं। उन्हें एक दूसरे की मौजूदगी की आदत हो गई थी।

एक शाम बातों-बातों में गुलाबदीन का ज़िक्र छिड़ गया। बड़ी-बी ने घृणा प्रकट की तो सपना ने कहा—

'मैं समझती थी निर्धन लोग बहुत अच्छे होते हैं। अब मेरा ख्याल है कि निर्धनता भावनाओं को नहीं रोक सकती। भूख तो इनसान को कमजोर और ग़लीज़ बना देती है। दिलों की कड़वाहट सोच की बहती नदी में नहा कर दूर हो जाती है और मस्तिष्क की भट्टी उसे कुन्दन कर देती है।'

सरदार साहब ने अभी तक पत्र का उत्तर न दिया था। चिन्ता रहती थी। सपना को चुप वातावरण पसंद था। परन्तु इस घर में उकताहट की हद तक चुप्पी छाई रहती। नौकर-चाकर बहुत थे। उनके करने के लिए काम कम था। वे अपने धंधों में लगे रहते। चार आदमियों के लिये खाना तैयार करना हलीमन की उपस्थिति में कठिन न लगता। कभी बड़ी-बी की बासी बातें सुनने को मिलतीं। कभी कोई पुस्तक देख ली। कभी सोचते रहे। कभी गुनगुना लिया। हाँ, जिस दिन बेगम साहिबा के बेटे का पत्र आता, वह दिन और कई दिन बाद तक कुछ प्रसन्नता का वातावरण बना रहता। वे उसे पढ़-पढ़ कर सुनातीं। वह लिखता था—

'अम्मी जान, बस कुछ दिन का काम और रह गया। सेवा में जल्द ही उपस्थित हूँगा।'

मां बड़े प्यार से तमाम पत्रों को तकिये के नीचे रखे जाती। जरा तबीयत उदास हुई और निकाल कर दोबारा-तिबारा पढ़ लिए।

इस घर में मेहमान बहुत कम आते थे। आये भी तो एक-दो दिन के लिए। सबीना और बहू अधिक सर्दी के बहाने एक बार भी न आई थीं। कहीं किसी बच्चे को कुछ हो गया तो ससुराल वाले कहेंगे मैके गई थी, बीमार कर लाई। बहू सास की तबीयत ही न मिलती थी।

□□

'सपना ए सपना—' बेगम साहिबा हाथ में पत्र लिये रसोई की तरफ आईं।

'देख मेरे सानी ने क्या लिखा है।'

वह पीढ़े पर उसके पास ही बैठ गईं।

'सुनाइये—आपके पुत्र बातों के धनी हैं। कभी आते तो हैं नहीं। देखते हैं, कि जैसी बातें करते हैं वैसे हैं भी !'

सपना ने दिलचस्पी से कहा।

'आयेगा—इंशा अल्ला ज़रूर आयेगा। तू मेरे दिल से पूछ। संतान के दुःख तो कलेजा कबाब कर देते हैं।' वे रुआँसी हो गईं।

'देख तो सरदार खलंडरा अब उसके पास पहुँच गया है। मैंने तेरे बारे में उसे लिखा था न ? सानी लिखता है अब मैं सरदार साहब को साथ लेकर आऊँगा। वह काबू करेगा उसे, और कहता है—'

उन्होंने हँसते-हँसते पत्र उसके सामने किया।

'हमारी होने वाली भाभी के हाथ पीले होने के बजाय मैले हो रहे हैं। आप उससे काम क्यों करवाती हो अम्मीजान। सरदार साहब तो ऐसी शरारतें करते ही रहते हैं। यह आदमी शुरू से ही सरफिरा है। हम इसको कस के बाँधेंगे, मियाँजी के चक्कर थम जायेंगे और होश ठिकाने आ जायेंगे।'

सपना ने चूल्हे में आँच तेज़ करते हुए कहा—'शुक्र है किसी ने तो मेरे अस्तित्व को समझ लिया। और बिना देखे मान लिया।'

'अरे मानेगा कैसे नहीं।'

बेगम साहिबा संतुष्ट और प्रसन्न नज़र आती थीं।

'आप कमरे में चलियेगा। आज लकड़ियां कुछ गीली हैं? शायद, धुँआ दे रही हैं। आपकी साँस पर असर करेंगी।'

'नहीं, उधर मेरा दिल नहीं लगता। और आज तो विशेष कर बातें किये जाने को जी चाहता है। मगर तुम गुमसुम रहती हो। क्या मजाल जो मेरे बात किये बिना मुँह से कुछ बोले—लड़की तू तो पूछ कर मुस्कराती है।'

सपना बड़ी-बी की इस बात पर हँस पड़ी।

'हाँ यह आपने ठीक कहा। इन्सान हमेशा केवल अपने लिए नहीं मुस्कराता। मेरे पास कोई बात, कोई याद इतनी ताज़ा नहीं कि मैं उसके बारे में सोचूँ और मुस्करा दूँ। आप चाहती हैं तो मैं हर समय ठहाके लगाती रहा करूँगी। दूसरों के लिये हँसना, बोलना, जीना, मरना मेरा भाग्य है। अभी मुझमें इतनी योग्यता नहीं कि मैं लगातार मुस्कराने की आदी हो जाऊँ। चेष्टा करूँगी। मेरे मस्तिष्क में जो अच्छी यादें हैं मैं उन्हें कोई विशेष महत्व नहीं देती। ऐसा क्यों सोचती हूँ, मुझे खुद पता नहीं। यादों के फूल दुःखों की तहों में दबे-दबे इतने बासी और पुराने हो गये हैं कि अब विश्वास नहीं होता कि वे कभी फूल भी थे।' वह बोलती चली गई।

बड़ी-बी आश्चर्य से देखती रहीं।

'लड़की, तू कटी-कटी बातें न किया कर, आधी ज़ुबान से बातें करती है और आधी न जाने कहाँ गुम कर देती है।'

बड़ी-बी उठकर खिड़की से बाहर झाँकने लगीं।

□□

बच्चों का शोर सर्दियों की धूप की गर्मी को बढ़ा देता था। बेगम साहिबा को माली के आंगन में बड़ी चहल-पहल नज़र आई। हलीमन बच्चों में घिरी बैठी थी। और ज़ीनत बाल खोले धूप सेंक रही थी। बेगम साहिबा उसे देखते ही चौंकीं।

'अरे ज़ीनत आई है। मुझे पता तक नहीं!'

उन्हें दु:ख था कि ज़ीनत ने अपने आने की सूचना क्यों न दी। कुँआरेपन में वह सारा समय उनकी सेवा में लगी रहती थी। उन्होंने खुद अपने हाथों से उसे ब्याहा था और अब वह इस तरह बदल गई थी। उन्होंने बेचैन होकर आवाज़ दी और थोड़ी ही देर बाद उनका आँगन नन्हे-मुन्ने साफ-सुथरे बच्चों से भर गया।

बेगम साहिबा धूप में पलंग डाले बैठी थीं और बच्चों को प्यार कर रही थीं।

'सपना—ला तो इनको बिस्कुट देना।'

ज़ीनत की शिकायत करते हुए बोलीं—

'हम तो तुम्हारा हमेशा ख्याल रखेंगे। खुद देख, आई तो सूचित तक न किया। बुलवाया तो आई। अब यह ढंग है!'

'माँ जी! मैं क्या मेरी औकात क्या!' ज़ीनत का लहजा साफ था।

'बातें बनानी आ गई हैं लड़की तुझे।'

'बातें कहाँ—? मैंने सोचा रात भर के सफर के बाद नहा-धोकर सामने जाऊँगी। गंदा चेहरा लेकर चली आती! आपकी दुआ से तीन हैं। मुँह धोते, कपड़े बदलते कितनी देर लग गई। और आई कब हूँ? अभी

आठ बजे वाली मुसाफिर गाड़ी से तो उतरी हूँ ।'

सपना बच्चों को बिस्कुट दे-देकर अपने साथ परिचित करवा रही थी ।

'सुना है आपने गुलाबदीन को निकाल दिया, अच्छा किया ।'

'तुझे क्या खुशी है ?

'कभी-कभी उसका दिमाग़ खराब हो जाता है ।'

बेगम किसी सोच में गुम थीं ।

'दोष दरअसल उसकी बीवी का है । उसमें दिलचस्पी ही नहीं लेती । मर्द भी एक तरह से बच्चा होता है, देख-भाल चाहता है ।'

'एँ, तू तो बड़ी सयानी हो गई है ज़ीनो—सपना तू भी इधर आ जा । क्या बच्चों के साथ लगी है । यह ज़ीनत है, हलीमन की बेटी—अपने माली की लड़की ।'

उन्होंने ज़ीनत से केवल इतना कहा—

'यह सपना है ।'

फिर सुख-समाचार पूछने लगीं । मियाँ कैसा है ? सास का व्यवहार कैसा है ? छोटी ननदें लड़ती तो नहीं ?

सपना और ज़ीनत ने एक-दूसरी को देखा, थोड़ा-सा मुस्कराईं, और अपनी-अपनी दिलचस्पी की बातों में लग गईं ।

बच्चे उसके साथ घुलमिल न रहे थे । और वह उन्हें लालच दे रही थी ।

'देख मुन्नी ! मैं कल ही तुझे गुड़िया बना कर दूँगी । और मुन्ने, तुझे माल्टे के छिलके की तराजू बना दूँगी । मुन्नी, गुड़िया के कपड़े भी सीकर दूँगी ।'

बच्चे उसे अजनबी आँखों से देखते, शरीर चुराते माँ की तरफ सरक जाते । और सपना उनकी उपस्थिति में ऐसे महसूस करती थी जैसे रेगिस्तान में चलते चलते घास के मैदान में आ निकली हो जहाँ की

नर्म हरियाली आत्मा को शान्ति देती है।

ज़ीनत के बच्चे सुघड़ थे, या वे बड़ी बेगम और अजनबी वातावरण के डर से चुप थे। खाते समय भी माँ को तंग न किया।

ज़ीनत ने सारा दिन वहीं गुज़ारा। शाम को बच्चे सो गये तो कितनी देर तक बेगम साहिबा की पायंती पर बैठी पाँव दबाती रही। सपना वादे के अनुसार बच्ची के लिए गुड़िया बना रही थी। अब तक ज़ीनत और वह अजनबी न रही थी। बेगम साहिबा खर्राटे लेने लगीं, परंतु वे एक-दूसरी के बारे में जानने सुनने की चिन्ता में जाग रही थीं।

ज़ीनत इस घराने को एक सदस्य की हैसियत से जानती थी। और अब सपना से पूछ रही थी :

'सानी भाई को देखा ? कुछ वर्षों से जाने उन्हें क्या हो गया है। पहले ऐसे तो न थे। जब मैं छोटी थी तो कैसे चुपके-चुपके मेरी चोटी बाँध दिया करते थे। और फिर हुक्म देते—ज़ीनो—पानी पिलाओ। मैं बेचारी बेखबर दौड़ पड़ती और कुर्सी मेरे पीछे घिसटती, और खुद वह जोर का ठहाका लगा कर हँसते—'

ज़ीनत कुछ देर चुप रही। शायद वह पिछली यादों में खो गई थी। फिर बताया—

'बड़े भैया भी बहुत अच्छे हैं। शुरू से ही संजीदा रहने वाले हैं।'

वह बेगम साहिबा के बड़े बेटे अमीन की शादी का आँखों देखा हाल बताने लगी। परन्तु हर बार सानी भैया का जिक्र अवश्य आता। ज़ीनत को सानी के बदल जाने का दु:ख था। भला इतना हँसोड़ इनसान यूँ चुप-चुप रहने लगे ! क्यों ? उसने बताया—

'शायद खाँ बहादुर के देहांत के बाद जिम्मेदारी का अधिक अहसास करने लगे हैं। नौकरी बाहर को हो गई तो नज़र आने से भी गये। अब तो कभी उनकी शादी पर ही सामना होगा।' ज़ीनत ने आह भरी।

रात आधी से अधिक गुजर चुकी थी। सपना सरकते-सरकते पूरी तरह लिहाफ ओढ़े ऊंघ रही थी। ज़ीनत उठ कर चली गई।

□□

जब हलीमन के यहाँ ज़ीनत पैदा होने वाली थी तो बेगम खासी परेशान रहीं। जन्म के बाद तक उन्होंने कोई ख्याल न किया। कुछ बड़ी हुई तो उसका नाजुक और प्यारा-प्यारा नाक-नक्शा अपने-आप आकर्षित करने लगा। बेगम के बच्चों को भी एक खिलौना मिल गया था। सारा दिन उसे घसीटते फिरते। बेगम कहतीं—'हलीमन, इसे साफ-सुथरी रखा करो।'

धीरे-धीरे उन्हें लड़की से प्रेम होता गया। खाँ साहब निहायत प्यार भरी नजरों से देखते जैसे उनके आंगन वाली क्यारी में वह भी एक पौधा हो। वह उनके बच्चों में मिली जुली जवान हो गई।

जवानी अपने साथ हज़ार रंग ले आती है। सानी और ज़ीनत हँसते-खेलते उस आयु को पहुँच गये जब बात दिल व आँखों से हो तो मज़ा आता है। वह खोया-खोया रहने लगा। खुद ही ज़ीनत से दूर रहने की चेष्टा करता। न नज़र आती तो आँहें भरता—दिल का संदेश दिल ही ध्यान से सुनता है। ज़ीनत को ख्याल पैदा हुआ तो फिर होता ही चला गया। अब दोनों को किसी तीसरे की उपस्थिति खलती थी। ज़रा अकेलापन देखा तो एक-दूसरे को जी भर देखते रहे। धीरे से छू लिया। वह नटखट लड़का जो बात-बात पर धप जमा दिया करता था और अवसर पाते ही चोटी बाँध देता था, अब ऐसे हाथ लगाता जैसे ज़ीनत शबनम की बूँद हो।

सहानुभूति न दिखाई। और यह भी न कहा कि लड़की तूने इतना बड़ा घर देखा, बुरा किया।

'यह सब एकदम चुप क्यों साध बैठे हैं।' उसके दिल पर एक नहीं कई बाण चलते थे। हाय वह खाँ बहादुर का प्यार से चपत लगाना और पूछना बेगम बच्चे तुम्हें तंग तो नहीं करते। कोई कष्ट हो तो मुझे बताया करो। हम तो तुम्हें अपनी बेटी समझते हैं। वह सोच-सोच कर उलझती। बातों-बातों में बेटी कह देना आसान है, बहू बना कर घर में रखना कठिन है। दुनिया नाक न काट लेगी। हाय वे क्या दिन थे, वे मिल कर आधी-आधी रात तक आँख-मिचौनी खेला करते थे। उनके शोर से हवेली गूँजा करती थी। इसी तरह से खेल-खेल में ज़ीनत और सानी ने एक-दूसरे की उपस्थिति को आवश्यक मान लिया। उन्हें खुद पता न चल सका, और भावनाओं का चंचल पक्षी डाली-डाली फुदकता अन्तिम स्थान पर जा पहुँचा। अब उसके आगे खुला वातावरण था। वे उड़ने के लिये और अपना घोंसला बनाने के बारे में सोचने लगे। मगर कुछ दिनों से न केवल उनका घोंसला बनने से पहले उजड़ रहा था बल्कि यह भरा-पुरा घर अचानक वीरान दिखाई देने लगा था। और इस मुसीबत की जड़ ज़ीनत थी। उसे पूरा अहसास था और अमीन भाई ने उसके हक में कुछ भी बयान न दिया। हालाँकि हमेशा उसी का पक्ष लेते थे। वह अपने ऊपर की मंजिल वाले कमरे से बहुत कम नीचे आते वहीं बैठे रहते, जैसे लड़कियाँ उदास बैठती हैं। वह दूर-दूर रहते थे। उनके कमरे की खुली खिड़की में पर्दे के पीछे कभी-कभी उनकी उपस्थिति का अहसास होता था। जीनत बेकारों की तरह अपने क्वार्टर के दरवाजे में खड़ी होती तो उसे ख्याल आता—अमीन भाई ऊपर खड़े इधर ही देख रहे हैं, अल्ला क्या देखते हैं इधर। वह अपने आप से पूछती। उनकी शादी के दिन निकट आ रहे थे। उसका जी कुढ़ता। जिस घर में वह पली-बढ़ी उसकी पहली खुशी देखने से मना कर दी गई। और सानी को देखो

क्या मजाल कोई संदेश भेजा हो। उससे दो बातें करने को जी किस कदर तड़पता था।

□□

'अमीन ! अमीन मियाँ !'

रात के सन्नाटे में आवाज़ फैली। यह खाँ बहादुर थे। बँगले की तमाम बत्तियाँ जल रही थीं। नौकर और घर के लोग गिरते-पड़ते ऊपर की मंजिल पर पहुँचे। खाँ बहादुर अमीन मियाँ के सिरहाने उसका हाथ पकड़े सख्त परेशान खड़े थे। बेगम बेटे का शरीर सहलाती कराह रही थी। सबीना थर-थर काँप रही थी।

'अरे कोई डाक्टर को बुलाओ।'

खाँ बहादुर ने नौकरों को कमरे से निकल जाने का हुक्म दिया। बीवी को तसल्ली दे कर पलंग पर से उठा दिया।

'हाय, हुआ क्या है मेरे बच्चे को ?'

'होना क्या था ? अभी पता चलता है।' वह अमीन मियाँ की जेबों की तलाशी लेते हुए बोले।

तकिये के नीचे देखा। चादर उठा कर देखा। अमीन मियाँ को करवटें दे-दे कर देखा, कुछ हाथ न आया। इस दौरान सबीना और बेगम साहिबा बेकाबू हुई जाती थीं। और चुपके-चुपके आँसू बहाये जा रही थीं। अचानक खाँ बहादुर की नजर मेज पर पड़े हुए शमादान पर पड़ी। उसके नीचे दबा कर रखा हुआ कागज नजर आया। उठाया तो बेटी और बीवी दोनों उनकी तरफ बढ़ीं। यह पत्र अमीन मियाँ ने रात के ग्यारह बजे समाप्त करके नीचे अपने हस्ताक्षर किये थे—

'अम्मी और अब्बा जान,

आपने मेरे जीवन का फैसला करते समय यह भी सोचा था कि हर व्यक्ति अपने जीवन का आप मालिक होता है। वह अपने बारे में खुद सोचे, यही उसका अधिकार है। आपने मुझे यह अधिकार नहीं दिया। परन्तु मैं मरने से पहले आप पर स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि अम्मी जान ने हमेशा मुझे कुछ कह देने से पहले ही टोक दिया। मेरे पास भी दिल है और भावनायें भी। जहाँ पर आपने मेरी शादी तय की है मैं यह नहीं कहूँगा वह लड़की बुरी है, परंतु अब्बाजान, मै जिस तस्वीर को छाती से लगाये-लगाये बड़ा हुआ हूँ उसका नाम सुनकर ही आप खुदा का शुक्र अदा करेंगे कि अच्छा हुआ मर गया—उसका नाम ज़ीनत है अम्मीजान, ज़ीनत—निर्धन लड़की है। मुझे पता था कि वह मुझे नहीं मिल सकेगी। जब निराशा हद से बढ़ी तो मैंने विष खा लेने का निर्णय लिया—अब सानी को अपने भाग्य का फैसला करने में कठिनाई पेश नहीं आयेगी।

खुदा हाफिज।'

पत्र पढ़ चुकने के बाद मियाँ-बीवी ने एक-दूसरे की तरफ अर्थपूर्ण नजरों से देखा। इतने में सानी मियाँ डाक्टर को लेकर पहुँच गये। सबीना और बेगम साहिबा दूसरे कमरे में चली गई। खाँ बहादुर ने पत्र तह करके जेब में रख लिया। उनकी अपनी हालत खराब हो रही थी। बदन काँप रहा था। ठंडा मौसम होने के बावजूद चेहरे पर पसीने की बूँदें चमक रही थीं। उन्होंने अपने-आप को कुर्सी में डाल दिया। और इच्छा भरी नजरों से बेटों को देखते-देखते जाने उन्हें क्या हुआ सर कुर्सी की पीठ पर लुढक गया।

डाक्टर और सानी अमीन मियाँ की तरफ थे। अच्छी तरह परीक्षण करने के बाद डाक्टर ने सानी को तसल्ली देते हुए कहा—

'आपके भाई इंशाअल्ला ठीक हो जायेंगे। समय पर पता चल गया।

खुदा का शुक्र अदा करें। मैंने इंजेक्शन लगा दिये हैं। परंतु बेहतर है आप इनका पेट धुलवा लें ताकि विष और असर न करे—'

फिर वह खां बहादुर की तरफ मुड़े।

'मुबारक हो खाँ बहादुर साहब, आपका बेटा—' परन्तु डाक्टर का मुँह खुला का खुला रह गया। सानी के मुँह से अजीब आवाज निकली और वह बाप की तरह दौड़ा। और तब उसे पता चला कि उसका बाप जाने कब चुपचाप उन्हें खुदा हाफिज कह कर इस दुनिया से रुखसत हो गया और पता न चल सका। उसने बेचैन होकर माँ और सबीना को पुकारा—

'डाक्टर साहब, यह क्या हो गया, मेरे अब्बा को क्या हो गया—'

देखते ही देखते चीखें उठ पड़ीं। अमीन मियाँ की किसी को होश न रही। सब घर के मालिक को पुकार-पुकार कर रो रहे थे। जीनत और हलीमन भी रोती धोती आईं, परन्तु बेगम साहिबा ने दुत्कार दिया :

'जाओ दूर हो जाओ, कलमुँहियो—नजरों से दूर हो जाओ।'

अमीन मियाँ ने मरने का प्रोग्राम बना कर घर के सबसे बड़े आदमी को मार दिया था और खुद अस्पताल में जाकर बिल्कुल ठीक हो गये। होश आने पर यही कहते थे—

'इस जीने का क्या लाभ। मुझे मर जाने दिया होता।'

घर वालों ने कई दिनों तक उनसे खाँ बहादुर की मौत छुपाये रखी। घर में आने वालों का ताँता बँधा रहता। बेगम साहिबा का तमाम दिन रोते-रोते गुजरता। उन्हें पति से कितना लगाव था, यह अहसास उन्हें शायद अब भी न होता था। वह तो उनकी हर इच्छा के सामने झुकना सीखी थी। विद्रोह की गुंजाइश उनमें न थी। खाँ बहादुर ज्यादतियाँ करते, उन्हें क्रोध न आता। हमेशा वह कहा करतीं—

'भई क्या है ? मर्द मर्द ही होता है।'

खुद मजे से बच्चों में मग्न रहती। वह केवल कहना मानना सीखी थीं। और ऐसा व्यक्ति विद्रोह के नाम से ही डरता है। परन्तु अब यही आदत घर की तबाही का कारण बन रही थी।

□□

सानी मियाँ दुनिया में आने वाले थे। उनके बच्चों की पुरानी आया हैजे का शिकार होकर मर गई। नई आया के लिये दौड़-धूप शुरू हुई। खाँ बहादुर की बहन अपनी आया लेकर आईं। बेगम साहिबा को हलीमन बहुत पसंद आई और उसे अपनी ननद से मांग लिया।

हलीमन की कथा ने उनके दिल में कुछ ऐसा प्रभाव किया कि उन्हें विश्वास हो गया कि हलीमन जैसी औरत जीवन में कभी ऐसा-वैसा कदम नहीं उठा सकती। रोटी के बंदे को भावनाओं से क्या? शक्ल साँवली और भोली-भाली थी। आँखों से मुलामियत टपकती थी। भाग्य अच्छे न थे। किसान की बेटी थी। चौदह वर्ष की आयु में शादी हुई, ससुराल शहर में थी। एक खोली, उसी में सास-ससुर, तीन ननदें, उसका मियाँ और वह, परन्तु इसके बावजूद वह ससुराल के घर में मग्न हो गई। जैसे यही उसकी मंजिल थी। मियाँ सुबह-सुबह उठ कर कारखाने में काम करने चला जाता और तारों की छाँव में वापस आता। केवल शादी के दो दिन घर पर रहा और इस बीच में वह इतना लजाई रही कि वे न तो आपस में कोई बातचीत कर सके, न नजर भर देख सके। हलीमन का दिल कभी-कभी कितना तड़पता था कि कभी अकेलेपन में एक-दूसरे की आँखों में झाँकें। वह कोई अदा कोई नखरा दिखाये। परन्तु इतने बड़े शहर में अकेलापन कहाँ। घर के बुजुर्ग इससे अधिक क्या कर सकते

थे कि बहू-बेटे के ख्याल से रात दम साध कर गुजार दें, चाहे खाँसी दम उखाड़ कर रख दे।

छुट्टी के दिन हलीमन का पति घर पर होता तो वह सास-ननदों की शर्म के मारे सिमटी-सिमटी शर्माई फिरती रहती, और घूँघट की ओट में दिल की प्यास लिये आँखें बेचैन रहतीं।

उसी वर्ष के अन्त में हलीमन के यहाँ मुर्दा लड़का पैदा हुआ। बच्चे ने दुनिया में आकर एक साँस भी न ली। परन्तु हलीमन पता नहीं क्या याद कर-कर के रोती रहती, जैसे वह अकेली हो गई हो, बेसहारा हो गई हो।

बच्चे की मौत के बाद शहर में हैजा फैल गया। हलीमन की सास बीमार हुई तो उसका ख्याल था, संभव है यह ताला टूट जाये। वह किसी हद तक स्वतंत्र हो जायेगी। परन्तु सुबह तक बुढ़िया की हालत सँभल गई। घर के सदस्यों के सुरक्षा के साधन किये गये। हलीमन का पति अक्सर घर से बाहर रहता था। जाने उसने अंट-शंट क्या खाया कि एक दिन छुट्टी के पहले ही घर आ गया। तबीयत खराब थी। दवा-दारू हुआ। बहुत दौड़-धूप की गई। परन्तु वह ठीक नहीं ही हो सका।

सवा-साल में ही हलीमन विधवा हो गई। अब ससुराल में क्या रखा था। मैके आई तो उसके लिए माँ की आँखों में ममता न थी जो शादी से पहले हुआ करती थी। बल्कि वह हर समय कहती—

'चुड़ैल है, डायन है, पति भी खा लिया, संतान भी खा ली।'

उसको अपनी माँ वही ताने देती थी जो सास ननदें दिया करती थीं। अब वह रोटी खाती तो उसे चुभती। मैके पर उसका कोई अधिकार नहीं। यह अधिकार तो उसी दिन खत्म हो गया जब उसका ब्याह हुआ था। निकाह के दो बोल भर पढ़ने से पुराने रिश्ते कमजोर पड़ गये थे।

मैके वालों के व्यवहार से वह तंग आकर फिर ससुराल आ गई।

कि परन्तु यहाँ वह किस हैसियत से रह सकती है ? उनका तो अपना घर बेटियों से भरा हुआ था। और इन बहनों का इकलौता भाई जो पता नहीं बहनों के लिये क्या-क्या करता उसके आ जाने से मारा गया। उसने ससुर से कहा—

'मारो या कुछ करो, अब माँ के पास न जाऊँगी।'

ससुर के दिल में दया आई, और उसने उसे अपने कारखाना-मालिक के यहाँ आया रखवा दिया। वह शहर में आने के चौथे दिन नौकरी पर चली गई। रोटी का प्रबंध बन गया और गोद खिलाने को बच्चा। वह सारा दिन मीठे सुरों में ललवा को लोरियाँ सुनाती, उसकी एक-एक हरकत को देखती और उसे समय गुजरने का पता भी न चलता। हलीमन संतुष्ट और व्यस्त थी। ललवा उससे हिल-मिल गया था।

तनख्वाह का अधिक भाग ससुर को दे आती, कि वही उसका सहारा था। अपने माँ-बाप से उसे चिढ़ सी हो गई थी। भला कोई यूँ भी बदलता है। यहाँ तक कि माँ भी।

एक दिन वह ललवा को गोद में लिये बैठी किसी सोच में गुम थी कि मालकिन ने बुलवा भेजा और हुक्म दिया—

'तैयार हो जाओ। हम अपने भाई के घर जा रहे हैं। भाभी की तबीयत ठीक नहीं। जाने मुझे कितने दिन लग जायें। इसलिए ललवा को साथ ले जाऊँगी।'

अन्धा क्या चाहे, दो आँखें। हलीमन की जवान आत्मा फड़क उठी। और दूसरी सुबह वह गाड़ी में सवार थी। ख्यालों में उड़ी जा रही थी। और शौक के मारे वह अपने रिश्तेदारों से भी मिलने न गई। बस संदेश भिजवा दिया—'जा रही हूँ।'

नये घर में उसे नये जन्मे बच्चे की संभाल मिल गई। यद्यपि छातियों में दूध नहीं था नये जन्मे बच्चे की जिम्मेदारी वह दोनों बेगमों के कहने से टाल न सकी। वे कहती थीं, देखो ललवा तो सयाना है, तू

इस बच्चे का ख्याल रख और यहीं रह जा, तेरा हर तरह ख्याल रखा जायेगा। थोड़ी सी सोच के बाद हलीमन मान गई और वह ललवा को लेकर चली गई। 'ललवा उसके लिए पछाड़ें मार-मार कर रोया होगा।' वह कितने दिनों तक सोचती रही। और इसी सोच ने उसके मस्तिष्क में एक और ख्याल को जन्म दिया कि वह इस्तेमाल हो रही है। उसकी ममता के दाम लग रहे हैं। वह बिक रही है। और बिकाऊ चीज़ के लिए आवश्यक नहीं कि वह हमेशा खरी रहे—जाने क्या हो जाये! क्या होने वाला था!

□□

हलीमन संतुष्ट जीवन का डेढ़ वर्ष गुज़ारने के बाद निखर आई थी। और यहाँ नये घर में आने के बाद नये बच्चे को गोद में लेने से उसे ऐसा महसूस होता था कि उसकी रगों में भी नया खून दौड़ने लगा है। घर का मालिक जिसे सब खाँ बहादुर कहते थे अपने बहनोई कारखाना-मालिक जैसा तो न था। वह बेचारा कारोबारी आदमी दिन-रात व्यस्त रहता। अक्सर जब घर पर होता तो ललवा को और हलीमन को छेड़ता—

'ललवा हम तुम्हारी आया को मार देंगे।'

इस पर ललवा उन्हें काटने को दौड़ता तो वह तालियाँ बजाकर हँसता। वह बहुत नर्म दिल आदमी था। उसके विपरीत खाँ बहादुर अजीब दिलकश से मर्द थे। कभी-कभी ऐसी गर्म नज़र डालते कि हली-मन पाँव के तलवों तक जल उठती।

इनकी बेगम पति का मान करने वाली और उसका कहना मानने

वाली औरत थी। धार्मिक-रुचि वाली, अपने बच्चों और घर में मग्न रहने वाली। मियाँ शौकीन मिज़ाज, अच्छे-खासे जमींदार थे। जीवन निश्चिंतता से गुजरता था।

खाँ बहादुर घर पर होते तो भी बेगम साहिबा अपने कामों को न छोड़तीं। कभी उन्हें हँस-हँसकर पति से बातें करते नहीं देखा। हमेशा सर झुका नजर आया। अधिक से अधिक हुआ तो बच्चों की बातें और उनकी शरारतों के किस्से ले बैठीं। वह भी ऐसे लहजे में जैसे शिकायत कर रही हों। बाहर से आये तो उनके जूते और कपड़े बदलवा दिये। बेहतरीन खाने पकवा कर भिजवा दिये। वह इसी में बहुत खुश रहती थीं।

इस घर में आकर हलीमन ने पहले से भी अधिक स्वतंत्रता महसूस की। बेगम अपने बच्चे की खातिर उसे हर समय साफ-सुथरा रहने के लिए कहती थीं। अब वह अपनी साँवरी रंगत पर हल्का-हल्का सिंगार किये यूँ फिरती रहती जैसे शाम के साये फैल रहे हों और उसका पति घर आने वाला हो। उसकी आँखें अकारण किसी की प्रतीक्षित रहतीं और वह बहाने से मर्दों के कमरे की तरफ निकल जाती। और कभी मुन्ने को ऊँचे सुरों में लोरियाँ सुनाती। बेगम साहिबा किसी काम से सर उठा कर कहतीं—

'ऐ हलीमन, धीरे से।'

खाँ बहादुर घर में फिरते तो उसे यूँ लगता जैसे उनका हर कदम उसके दिल पर पड़ रहा है। वह लायब्रेरी में बैठ कर पढ़ते तो खामोशी में हर साँस के साथ उसे दिल की धड़कन सुनाई देती, और हलीमन दोपहर में इधर-उधर मंडराती फिरती। और मुन्ने को सुना-सुना कर बातें करती और लोरियाँ गाती—

'तेरा बाबा, तू छलिया रे
मैं झूलना झुलाऊँ

तेरी मैया तो—

मैं भूलना भुलाऊँ—'

एक दिन वह अपनी धुन में गा रही थी।

'खड़ाक—', दरवाज़ा उसके मुँह पर खुला और खाँ बहादुर का क्रोध से भरा चेहरा सामने आया।

'क्या बक-बक लगा रखी है, चली जाओ यहाँ से।' वह गरज कर बोले।

'बक-बक काहे की सरकार। यह मुन्ना है।'

और हलीमन ने मुन्ना आगे बढ़ा दिया।

'हाँ-हाँ ठीक है, जाओ।'

'ले लीजिये न! सरकार यह मुन्ना है, आपका मुन्ना।'

हलीमन ने ऐसे कहा, जैसे उन्हें कोई भूली-बिसरी बात याद दिला रही हो।

'मैं क्या करूँ इसे।' वह दरवाजे के बीचों बीच खड़े कह रहे थे।

'प्यार कर लीजिये।' हलीमन ने हिम्मत से कहा और कटीली नज़रों से देखा। खाँ बहादुर इनकार न कर सके और बच्चे को पकड़ लिया। वह बच्चे को ध्यान से देखते यूँ चूमने लगे जैसे कहीं दूर से सफर से लौट रहे हों और अपने पहलौठी के बेटे को पहली बार देख रहे हों। उन्हें उस समय अहसास हुआ कि प्यार ऐसी चिंगारी है जो हवा चाहती है।

'हलीमन!' उन्होंने उसकी आँखों में क्या देखा कि तुरन्त बात पलट दी।

'तू बच्चे को समय पर दूध पिलाया करती है?'

'सरकार बच्चा पहली बार तो नहीं पाल रही। हाय मेरा ललवा।'

वह वहीं खड़े-खड़े ललवा को याद करके उदास हो गई। फिर भीगी आँखें उठाई और झुका लीं।

'ललवा से मुझे कितना प्यार था—साहब ! आप समझते होंगे हम निर्धन लोग ममता बेचते हैं। परन्तु यह न तो बिकने की चीज़ है न खरीदी जाने की जैसे प्यार।'

'ओह हलीमन, तू तो बहुत समझदार है। अच्छा-अच्छा, यह लो, पकड़ो इसे।'

खाँ बहादुर ने अचानक मुन्ना को वापस कर दिया। वह हैरानी से अपने सामने खड़ी औरत को देख रहे थे।

समाज का एक असाधारण व्यक्ति एक निहायत ही साधारण औरत के बारे में क्षण भर सोचता रहा।

औरत एक ऐसे फल का नाम है जिसकी करोड़ों किस्में है। हर दाना अपना अलग अस्तित्व और महत्व रखता है। हर दाना अपनी किस्म आप है।

उनको अपनी तरफ यूँ देखते जान कर हलीमन को हँसी आ गई। और उसकी गालों के गुलाब खिल उठे।

□□

खाँ बहादुर ज़मीनों का प्रबंध करके लौटे तो घर के वातावरण को बदला हुआ सा पाया। बेगम परेशान दिखाई देती थीं जैसे कोई भयानक सूचना देने से पहले परेशान हों। परन्तु कोई ऐसा अवसर न मिल पा रहा था कि विस्तार से बातचीत हो सके। वे कई दिनों बाद लौटे थे। मित्रों और मिलने वालों का ताँता बँधा था। हलीमन जो बड़े जोश में बहाने से खाँ बहादुर की उपस्थिति में बेगम साहिबा के पास आया करती थी अब सुस्त पड़ गई थी। बिल्कुल चुप, आँखें झुकी हुईं। वह

मुन्ने को बोझ की तरह उठाये फिरती थी।

मित्रों ने कहा कि शिकार का मौसम है तो उनकी तबीयत मचल उठी। बेगम को संदेश भिजवाया कि उनके शिकार के कपड़े निकाल कर तैयार कर दें। वह फिर जा रहे थे। बेगम के पाँवों के नीचे से जमीन खिसक गई। यदि थोड़ी देर को अंदर आयें तो वह सब कुछ कह देगी, उन्होंने सोच लिया। यह मुसीबत वह कई दिनों से अपनी जान पर उठाये हुये थी। कोई तो रहस्य बाँटने वाला हो। कोई तो मशविरा दे।

खाँ बहादुर खुदा हाफिज कहने के लिए आये। बेगम ने शिकायत से कहा—

'कुछ पता भी है घर में क्या हो रहा है?'

खाँ बहादुर चौंक गये। बीवी के तेवर बता रहे थे कोई बात बच्चों की शरारतों से बढ़कर है।

'तुम ही बता दो। घर की खबर औरतों को ही होती है।'

वे आगे-आगे चलती उन्हें कमरे में ले गईं और कुछ कहने से पहले ही निढाल-सी पलंग पर गिर पड़ीं।

'बेगम सँभलो। क्या बात है आखिर? खुदा के लिए जल्दी कहो।'

बीवी ने हाँफते-काँपते दु:ख भरी बात बताई। खाँ बहादुर सर पकड़ कर बैठ गये। वे कह रही थीं—

'यह सब आपकी लापरवाहियों का परिणाम है। आगे को संतान जवान होगी। जाने क्या-क्या गुल खिलेंगे।'

खाँ बहादुर सिटपिटा कर रह गये। बीवी इस तनतने से बोल भी सकती है, उन्हें ख्याल न था।

'मेरे सर क्यों होती है, जैसे यह मैंने किया है।'

'ओहो। मैं कब कहती हूँ। मैं तो इतना बताना चाहती थी कि इतनी लापरवाही भी अच्छी नहीं।'

बेगम ने नर्म पड़ते हुए कहा।

'मुझसे हमेशा परे तुम रहीं, मैं तो नहीं रहा।'

'लो भला, उलटा मुझी पर दोष देते हैं। मैं तो केवल आपका मशविरा चाहती थी। कहिये तो बुलाऊँ उसे, जरा आपके सामने बात हो जाये।'

खाँ बहादुर उठ कर खड़े हुये।

'अच्छा जल्दी बुलाओ, मुझे जाना है। मित्र लोग प्रतीक्षा कर रहे होंगे। खुद ही पूछ लिया होता।'

'आपकी उपस्थिति में पूछा जाये तो बेहतर न होगा?'

'यूँ कहो, मुझसे पुछवाओगी।'

'हरज ही क्या है'

'यह बेगम, तुम्हें आज हो क्या गया है?'

'थोड़ी देर को आप रुक जायें तो कौन सी ऐसी बात है।'

वे कुर्सी पर बैठते हुए बोले

'अब तुम हर व्यक्ति के सामने ऐसा करने पर तुली हो तो लो बैठ गये हैं। बुलाओ उसे।'

बेगम उठते-उठते बोलीं—

'मेरे सामने कम्बख्त रोये जाती है। कोई बात नहीं करती। उधर नौकरों में कई दिनों से खुसर-पुसर हो रही है। बताइये, मैं क्या करूँ। मेरी जान मुसीबत में है। अच्छी-खासी समझदार औरत जाने किसकी बातों में आ गई। औरत की जात है बुरी।'

फिर कहा:

'मैंने सोचा था आपके सामने डर के मारे उस मरदूद का नाम ले देगी जिसने—अकेली औरत का दोष तो नहीं। यह अलग बात है कि अल्ला भी औरत ही को पकड़ता है।'

वे अपनी कहती चली गईं। खाँ बहादुर घुटने पर दाहिना पाँव रखे आराम से बैठे थे।

और उस रात उन्होंने बेगम को खुश करने की खातिर शिकार पर जाने का कार्यक्रम स्थगित कर दिया।

□□

सुबह नाश्ते के बाद बच्चों को इधर-उधर खिसका दिया गया और हलीमन खाँ बहादुर के दरबार में उपस्थित हुई। वह धीरे-धीरे कदम रखते आई। मोटी चादर का पल्लू आँखों तक झुक आया था। वह सर झुकाये खड़ी थी। खाँ साहब ने उसे बुलाया।

'हलीमन।'

'जी—'

'हलीमन! हम यह देखना चाहते हैं तुम में कितना हौसला है?'

'आप सीधे से पूछिये न।'

बेगम बीच में बोल पड़ीं।

'तुमने ऐसा क्यों किया हलीमन?'

खाँ बहादुर ने 'क्यों' पर ज़ोर दिया।

हलीमन सिसकियाँ भरने लगी।

'बोलो हलीमन!'

'मुझसे क्या पूछते हैं?' हलीमन कठिनाई से कह सकी। बेगम चीख़ी :

'किसका है?'

हलीमन ने नज़रें उठा कर पहले बेगम को, फिर खाँ बहादुर को देखा।

खाँ बहादुर जाने किस सोच में गुम कह रहे थे, 'हाँ—हाँ—

कहो—बताओ—'

हलीमन कुछ देर बुत बनी खड़ी रही। फिर उस बुत के अंदर से आवाज़ आई। जैसे कोई और बोल रहा हो।

'दयालु इतना बड़ा, महान है कि देकर चुप साध ली है। मैं इतनी गई-गुजरी हूँ कि ले कर उसका नाम नहीं जपती—जल की प्यासी धरती से पानी का पता क्यों पूछते हो? वह बेचारी उसके संग उड़ती है न बहती है।' हलीमन ने दो-चार उखड़ी-उखड़ी बातें कहीं और तेज़ी से बाहर निकल गई।

खाँ बहादुर छड़ी से बूट की नोक बजाते बैठे रहे। बेगम साहिबा ने खड़े-खड़े पति की कुर्सी का सहारा लेकर ठंडी साँस ली,

'अब क्या करना चाहिये?'

'जो तुम ठीक समझो।'

'वापस भेज दें?'

'उससे पूछ लो!'

खाँ साहब उठे, खुदा-हाफ़िज़ कहा और अपने कमरे की तरफ चले गये।

बेगम कितनी देर तक ख्यालों में उलझी रहीं। फिर किसी अन्दर की आवाज़ ने उन्हें चौंका कर रख दिया—

'तो फिर क्या करना चाहिये, क्या होना चाहिये?' उन्होंने अपने-आपसे कई बार प्रश्न किया।

हलीमन आँगन की दीवार से लगी रो-रोकर परेशान हो रही थी। मुन्ना उसकी कमीज़ का छोर खींचता चीख रहा था—वह कितना बेचैन था।

बेगम साहिबा ने वहीं बैठे-बैठे निर्णय लिया कि वह हलीमन का कोई शीघ्र ही प्रबन्ध करेंगी। उसके लिये अपने जवान साली का रिश्ता कई दिनों से उनके मस्तिष्क में था।

□□

रात शान्त थी। मेहमान सो चुके थे। नौकर काम समाप्त करके जा चुके थे। बेगम साहिबा को बेटों से बात करने का इससे अच्छा अवसर न मिल सकता था। वे बिना आहट किये ऊपर की मंज़िल पर चली गईं। दोनों बेटों के कमरों की बत्तियाँ जल रही थीं। अमीन के कमरे का दरवाजा खुला था! पर्दा हवा के साथ धीरे-धीरे हिल रहा था,

अमीन अपने बिस्तर में लेटे कोई किताब देख रहे थे। कमरे में दो बल्ब जल रहे थे। परन्तु उन्होंने पलंग के पास रखा शमादान जला रखा था। किताब की तरफ ध्यान कम था। आँखें कमरे में भटक रही थीं। छत से दीवारों पर, दीवारों से चीज़ों पर, वहाँ से किताबों की तरफ— और कभी कालीन पर तस्वीरें और स्केच बिखेरे बैठे छोटे भाई को देखने लगते।

बेगम साहिबा को यह जान कर प्रसन्नता हुई कि दोनों भाई संयोग से एक स्थान पर उपस्थित थे और अभी सोये न थे, यद्यपि रात का दूसरा पहर शुरू हो चुका था।

'अमीन! कैसी तबीयत है बेटे?'

वे पर्दा उठा कर कमरे में आईं। बेटे उनके आने पर चौंके। अमीन ने जल्दी से किताब एक तरफ़ रख दी। उठने की चेष्टा की, परन्तु माँ ने मना कर दिया और उसके पास बैठ गईं।

'कैसे आना हुआ अम्मी जान?' यह प्रश्न छोटे बेटे ने किया।

अमीन नज़रें झुकाये चुप थे। बेगम साहिबा की साँस फूल रही थी। शायद दबे पाँव सीढ़ियाँ चढ़ कर आने से या विचारों की हलचल से।

कुछ देर वे अपनी साँस पर काबू पाने की चेष्टा करती रहीं। सानी जल्दी जल्दी काग़ज़ समेटने में व्यस्त थे। माँ ने बात करने के लिए गला साफ किया तो बोले—

'अम्मी जान! भाई जान आज बिल्कुल ठीक हैं। कोई इन से पूछे इन्हें सूझी क्या ?'

बेगम साहिबा ने अमीन का आत्महत्या से पहले का लिखा हुआ पत्र पति की जेब से निकाल लिया था। वे न चाहती थीं कि बड़े भाई के लिए छोटे के दिल में ग़लत विचार पैदा हों। सानी अमीन की आत्म-हत्या के कारण से बिल्कुल बेखबर थे। उन्होंने भाई से इसलिए न पूछा कि फ़िज़ूल उलझेंगे। दूसरे बाप की अचानक मौत ने सबको परेशान करके रख दिया था। लोगों के आने से ही फ़ुर्सत न मिलती थी। अपनों का हाल-चाल कब पूछा जाता।

उन्हें मरे पन्द्रह दिन हो चुके थे। अमीन अब स्वस्थ थे, फिर भी कमज़ोरी काफी थी। वे तमाम समय अपने कमरे में रहते। फिर भी निकट के रिश्तेदार सहानुभूति दिखाने के लिए ऊपर पहुँच जाते। लोगों के हंगामें में वे एक-दूसरे के लिए अजनबी से हो गये थे।

आज सानी बड़े भाई से विस्तार से बात करने के बारे में सोच रहा था कि अम्मा चली आईं।

'देखो मैं तुमसे आवश्यक बातें करने आई हूँ।'

दोनों भाइयों के मस्तिष्क में एक ही ख्याल उभरा, कि कुछ जायदाद के बारे में बताना होगा।

'आप जो कुछ कहने के लिए आई हैं वह किसी और समय के लिए उठा रखिये।'

माँ ने सानी की बात काट दी।

'मेरे सब्र ने ही मुझे यह दिन दिखाया। अब मुझे कहने दो। पिछले बीस वर्षों से मैं जो दर्द अपना समझ कर छुपाये फिरती हूँ वह मेरा

अकेली का न था, तुम सब का था।'

वे कुछ देर के लिये चुप हो गईं।

'कहिये।' अमीन रूठे-रूठे से थे, 'मैं सब कुछ सुनने के लिए तैयार हूँ।'

बेगम साहिबा ने कहा :

'तो सुनो! तुम दोनों में से कौन अपनी बहन सबीना से शादी कर सकता है?'

उन्होने बारी-बारी से बेटों की तरफ देखा जिनके मुँह आश्चर्य से खुले थे और फटी-फटी आँखें उन पर गड़ी थीं।

'अम्मी, आप होश में हैं।' सानी ने कहा।

'अब्बा के गम ने आपको परेशान कर रखा है। जाइये आराम कीजिये। आपको शान्ति की आवश्यकता है।' अमीन के लहजे में सहानुभूति की बजाय व्यंग था।

'मैं खूब जानती हूँ कि किस चीज़ ने तुम दोनों को पागल बना रखा है। यह तुम्हारे बाप के जीवन का रहस्य था। परन्तु मैंने उन पर भी प्रकट नहीं होने दिया कि मैं इससे परिचित हूँ।'

सानी माँ के पास आ कर बैठ गये। और उन्होंने महसूस किया कि माँ काँप रही है, सर्दी के कारण नहीं बल्कि कुछ सोच-सोच कर।

'मैंने तुम्हारे बाप के दिल को अपना दिल जाना—और बहुत सोच-विचार के बाद निर्णय लिया कि हलीमन के पेट में जो बच्चा पल रहा है, वह दर-दर की ठोकरें क्यों खाये—हलीमन दोषी है परन्तु अकेली तो नहीं—गुनाह के अँधेरे रास्ते में कोई तो उसका हाथ पकड़ कर चला होगा—वह कौन था?'

'मैं चाहती थी कि मैं उन्हें लज्जित न होने दूँ, परन्तु दिल के किसी कोने से आवाज़ आती थी कि वह प्यार की वह मार मारे कि वे जीवन भर फिर सर न उठा सकें।'

दोनों भाई आश्चर्य से बैठे सुन रहे थे। माँ को वे यूँ देख रहे थे जैसे वह कोई जादूगरनी हो।

'ज़ीनत तुम्हारी बहन है बच्चो—बस मुझे यही स्पष्ट करना था।'

सानी तड़प कर दूर जा खड़े हुये। अमीन ने अपना सर तकिये पर गिरा दिया और धीरे से कहा :

'अम्मी जान ! आपने जो भी किया, बुरा किया ! बहुत बुरा किया !'

वे आँखें पोंछती बोलीं :

'प्यार के लिये, केवल प्यार के लिये।'

सानी कुछ कहे बिना अपने कमरे में चले गये। अमीन छत को घूरते बहुत परेशान दिखाई देते थे।

'आपने यह रहस्य छुपा कर इन्सान के रिश्तों का भरम खो दिया अम्मी जान। मैं शर्मिन्दा हूँ मैं अपने-आप से लज्जित हूँ, अम्मी जान !'

इसके बाद अमीन ने माँ से कोई बात न की। बेगम साहिबा काफी देर तक आहें भरती बैठी रहीं। वह तो अपनी प्रशंसा सुनने आई थीं, परन्तु बेटों ने उन्हें बेहद निराश करके छोड़ दिया। वे उठते-उठते कह गईं :

'अपनी शादी के बारे में सोच कर मुझे बता देना।'

□□

खाँ बहादुर की मृत्यु का शोक खत्म होने के बाद अमीन और सबीना की एक साथ शादियाँ कर दी गईं। सानी को अच्छी नौकरी मिल गई।

घर बिखर-सा गया। ज़ीनत के लिए अच्छा वर देख कर उसे भी रुख़-सत किया। बेगम साहिबा अब अपने-आपको बिल्कुल अकेला और बेकार समझती थीं। उनके सीने में कोई रहस्य न था जिसकी सुरक्षा में वे मगन रह सकें। बच्चे उन पर पहले की तरह विश्वास न करते थे। समय गुजरने के साथ वे वहमी और संदिग्ध दृष्टि वाली होती गईं।

छोटे बेटे की चिन्ता के सिवा कोई ग़म न था। केवल यही एक कर्तव्य रह गया जो अदा होने में न आता था। वरना वे तो हज से भी हो आई थीं। सानी का अधिक समय नौकरी की व्यस्तताओं में गुज़रता था। दूसरे उन्हें साधारण से साधारण बात को रहस्य बना देने वाली माँ पर भरोसा न था। यहाँ आते तो पराये-पराये महसूस करते। चुलबुली तबीयत ने ऐसा पलटा खाया कि हर समय संजीदा और चुप रहने लगे। एक तरह से बाप का स्थान उन्होंने संभाल लिया था। घर के लिए सब कुछ करना अपनी जिम्मेदारी समझते परन्तु दूर रह कर—बाहर रहते तो माँ को प्यार भरे लम्बे पत्र लिखना न भूलते।

'अम्मी जान, आपके मशविरों से अधिक मुझे आपकी दुआओं की आवश्यकता है।'

'अम्मी जान, आपके ठंडे साये से दूर आपकी दुआओं का इच्छुक हूँ।'

और यदि माँ कहती इस ठंडे साये में बैठकर कुछ दिन आराम कर लो तो उत्तर देते :

'नहीं माँ, मुझे इतना आराम भी नहीं चाहिये। जाने मैं क्या चाहता हूँ।'

बाप के गुनाह से सहमा हुआ नौजवान अपनी भावनाओं से डरा हुआ था। हर कदम फूँक कर रखता। हर वह लड़की जिसकी तरफ़ थोड़ा सा दिल खिंचता उस पर बहन होने का संदेह होने लगता।

'हो सकता है यह खून का आकर्षण हो! हो सकता है यह लड़की

शौक़ीन-मिज़ाज बाप का गुनाह हो।'

वह लड़कियों से कतराते थे। खानदान में बीसियों जवान लड़कियाँ थीं और उनके माँ-बाप एक 'हाँ' की प्रतीक्षा में थे परंतु कोई भी मन को न भाती थी। माँ बहुतेरा तड़प-तड़प कर कहतीं, 'तुम्हारी टालमटोल में देखी-भाली तमाम लड़कियाँ खत्म हो जायेंगी। फिर कोई बाहर की उठा लाना। न मालूम कैसी हो? मैं तो मुँह न लगाऊँगी। तुफ़—मेरी अपनी भतीजी है, इतनी अच्छी है।'

वे नाराजगी प्रकट करतीं।

और जब से उसने शादी से बिल्कुल ही इनकार कर दिया तो माँ को ढीली पड़ते भी बन पड़ा।

'अच्छा जा, तू खुद करले, किसी से करले। मैं तो बड़ी-बड़ी बातें बर्दाश्त कर लेने वाली हूँ, बहू तो मामूली चीज़ है।'

परन्तु सानी टस से मस न हुए थे। उन्हें न मालूम क्या चुभ गया था। जब भी इस विषय पर बात होती उठकर चले जाते। अधिक हुआ तो इतना कहा :

'अम्मी जान! आप क्यों बार-बार कुरेदती हैं। मेरा साथी किसी दिन अचानक मेरे सामने आ जायेगा। मैं निराश नहीं। मेरी आत्मा उसकी तलाश में आवारा है।'

बेटे से इस तरह की बातें सुनकर वे अचंभे में पड़ जातीं।

इस लड़के का दिमाग खराब है। नई रोशनी के जवान हर जगह अपनी इच्छा चलाते हैं। अल्ला उन्हें सही रास्ते पर लायें।

सानी मियाँ को सही रास्ते पर लाने के लिए उन्होंने कितनी दुआएँ की थीं। वे अपनी ममता के हाथों विवश होकर कहतीं :

'खुदाया, मेरी नहीं तो इसके दिल की पुकार सुन ले।'

अब सपना के घर में मौजूद होने से बेगम साहिबा के मस्तिष्क में एक बार फिर पुरानी यादें ताज़ा हो गईं।

कहीं हलीमन वाला किस्सा फिर न हो जाये—पर हलीमन तो नौकरानी थी। और ज़ीनत बहन थी। सपना औरत है और जवान है। ऐसे वहम उन्हें हर समय घेरे रहते। यही कारण था कि उन्होंने उठते-बैठते जानबूझ कर अपने घर का पूरा इतिहास और उलझनें सपना को समझा दीं। उन्हें विश्वास था यह लड़की समझदार है, खुद ही संभल जायेगी।

जो घटनायें बेगम साहिबा ने बतानी ठीक न समझीं, उन पर विस्तार से ज़ीनत ने बता दिया। अब सपना को इतना कुछ मालूम था जैसे वह इसी घर में पली-बढ़ी हो। और हर घटना उसकी आँखों के सामने पेश आई हो। जिनके बारे में इतना कुछ मालूम था, उन्हें देखने को जी चाहता था।

कैसे नर्मदिल लोग थे ये सब!

□□

आज रूठे हुये सूर्य ने कई दिनों के बाद मुँह दिखाया। वरना सर्दी ने बूढ़ी हड्डियों को जमा कर रख दिया था। बेगम साहिबा नहा-धोकर आंगन में बिछे हुए पलंग पर बैठी थीं। चेहरे से ताज़गी झलकती थी और आँखों से खुशी।

वे जहाँ बैठतीं अपने आसपास एक दुनिया बसा कर बैठतीं। बिस्तर तकिये; गाव-तकिये, गिलास, दो-चार दवाओं की शीशियाँ, कंघी-ब्रुश, तस्बीह, किताब, एक-एक करके चीजें मँगवायी जातीं। इन सब में अपने-आपको घिरा हुआ पाकर उन्हें अपने ठोस अस्तित्व के होने का विश्वास होता। और आज तो ज़ीनत जा रही थी। बेगम साहिबा ज़ीनत से हमेशा प्यार करती रही थीं, कि वह बेगुनाह और मासूम थी। फिर

हलीमन भी उनके पास गुलामों की तरह हो रही। एक को छोड़ कर फिर कभी शिकायत का अवसर न दिया।

ज़ीनत को ससुराल भेजने के सिलसिले में उन्होंने खासा प्रबंध किया था। बच्चों के लिए खिलौने-कपड़े, उसके लिए जोड़ा, चूड़ियाँ—मेंहदी आदि अपने सामने फैलाये, एक-एक चीज उठा कर दिखा रही थीं।

'आखिर इस घर पर इसका भी अधिकार है। यहीं तो पली-बढ़ी मेरे बच्चों के साथ।'

'क्यों नहीं, क्यों नहीं।' सपना ने बिना सोचे कहा।

बेगम अपनी बात कह रही थीं।

'हाँ—हाँ—नमकहलाल को नमकहलाल रखना भी हमारा कर्त्तव्य है।'

इतने में ज़ीनत बच्चों को लिये आ गई। हलीमन साथ थी। पहले की तरह ही वह आते ही बेगम साहिबा के कदमों में बैठ गई। सपना ने देखा ज़ीनत का चेहरा उतरा हुआ है और आँखें धुली-धुली हैं। खिलौने-कपड़े देखकर माँ-बेटी मुस्करा दीं।

हलीमन ने ज़ीनत की तरफ संकेत करते हुए कहा :

'लो बेगम साहिबा—यह सुबह से रोये जाती है। हर कोई ससुराल जाता है। ऐसी तो कोई नई बात नहीं। एक हम हैं भूले से कभी मैके का ख्याल भी नहीं आया।

बेगम हाथ के इशारे से उसे दूर हटाते हुये बोलीं :

'अरी जा, तेरा क्या है, तू तो है ही कठोर! तुझे तो अपना ख्याल नहीं आता कभी।'

हलीमन अपने टूटे-फूटे दाँत दिखाती हँस पड़ी :

'आप जो उम्र भर ख्याल करती रहीं—आप न होतीं तो न मालूम मैं कहाँ धक्के खा रही होती।'

बेगम ने तनतने से कहा—

'अरी तू अपने खसम को दुआएँ दे। वह भला मानस है।'

'वह भी आपके कारण।'

एक उम्र से एक दूसरी को जानने वाली दो बूढ़ियाँ आपस में नोंक-झोंक कर रही थीं। ज़ीनत और उदास हो गई। उसने माँ की तरफ विषैली दृष्टि डाली। हलीमन से न रहा गया—

'मुझे क्या देखती है। तू मेरी क्या लगती है? मैंने तुझे इन्हें सौंप दिया था। ये जानें इनका काम।'

'ससुराल जाते ठहाके तो न लगायेगी। हलीमन, तेरा दिमाग क्यों ख़राब हो गया है।'

बेगम ने कपड़े-लत्ते ज़ीनत के सामने डाल दिये। हलीमन अपनी धुन में बोलती गई:

'हाँ बहन, हम कसूरवार हुए जो इसे पैदा कर बैठे।'

'अरी तू पैदा करने वाली कौन? पैदा करने वाला तो ख़ुदा है। वह पैदा करने के लिये कई बहाने बना देता है।'

चीज़ें ज़ीनत के हवाले करके तकिये के सहारे बैठ गईं। सपना उनके सर में तेल रचाने लगी। चारों औरतें काफी देर तक चुप रहीं। ज़ीनत के बच्चों की खेल-कूद और छीना-झपटी के कारण रौनक़ थी। आखिर ज़ीनत अपने पर काबू पाते हुए बोली:

'मैं तो इसलिये उदास हूँ कि इतनी मुद्दत के बाद आई भी तो किसी को न मिल सकी। अर्मान भाई, सानी भाई, ये सब क्या हो गये? आपका ख्याल भी नहीं उन्हें? सबीना आपा तो खैर पराये बस में हैं।'

ज़ीनत की बात सुनते-सुनते बेगम साहिबा की आँखें मुँद गईं। फिर अचानक खोलीं और कहा—

'मर्द हैं, उनको कौन पकड़े। जो जी में आता है करते हैं। जहाँ दिल चाहता है जाते हैं—मुझे तो साथी की चिन्ता है—जाने कैसी लड़की के साथ खुश रहेगा—तू बता तेरा मियाँ तो अब खुश होगा न?

बादे के अनुसार वापस जा रही हो—'

वह हलीमन से बोलीं—

'याद है हलीमन ? शुरू-शुरू में यह कैसे आज नहीं कल, कल नहीं परसों किया करती थी ।'

हलीमन ने हाँ में हाँ मिलाई ।

'बेगम साहिबा, धीरे-धीरे सब ठीक हो जाता है । गरीब औरत तो मिट्टी होती है । बैठेगी न तो क्या करेगी । गूंध-गांध कर जो चाहे बना लो ।'

□□

जीनत के बच्चे खाना खाने में लगे थे । वह खुद कमरा-कमरा घूमती फिरती थी । उसकी आँखों में प्यास थी, होंठों पर चुप्पी की मुहर, दिल जानता था ।

'यह अमीन भाई का कमरा है, यह सानी मियाँ का, यहाँ सबीना रहा करती थी ।'

सपना बरामदे में खड़ी उसे देख रही थी । जीनत बेगम साहिबा के पास आई ।

'अम्मा जान, जरा चाबी देंगी ? जाते-जाते मैं बड़ी सरकार का कमरा तो अवश्य देखूँगी, हाँ, अम्मा जान ।'

'छोड़ो लड़की ।' बेगम बोलीं ।

'क्या रखा है यहाँ । तू तो पागल है । बता यदि इस चैत में सानी ब्याह करे तो तू आ सकेगी ?'

वे चाबी वाली बात टाल गईं ।

'आऊँगी क्यों नहीं।'

'जरा चाबी दे दीजिये।'

अब ज़ीनत की बजाय हलीमन ने चाबी मांगी।

'आराम कर। तुझे क्या लेना है उधर से। तेरा जैसा ढीठ भी मैंने आज तक नहीं देखा।'

हलीमन हवा में घूरने लगी।

'ज़रा आँख मिलाकर बात कर।'

बेगम साहिबा ने हलीमन को तीखी नज़र से देखते हुए कहा। हलीमन खिलखिला कर हँस पड़ी।

सपना ज़ीनत के लड़के से पूछ रही थी :

'मुन्ने आओगे न ! अपने मामू के ब्याह पर आओगे न ?'

'ऐ कौन मामू ? किसके मामू ?'

बेगम क्रोध से दहाड़ीं।

'मेरे मामू।'

जीनत की लड़की ने भोलेपन से कहा। और खड़ी होकर आकाश की तरफ हाथ उठा दिये।

'वह इतने बड़े हैं—इतने—इतने—' उसने एड़ियाँ उठा कर हाथ उठाये।

'वह आकाश जितने बड़े हैं। आकाश पर रहते हैं। हैं न, नानी अम्मा ?'

उसने अपनी नानी से गवाही माँगी।

'हाँ-हाँ—चंदा मामू, बेटे चंदा मामू।'

हलीमन ने बात छुपाना चाही।

'हाँ, चंदा मामू भी उनका नाम है।' मुन्नी ने सबकी तरफ देखते हुए कहा।

'उनका नाम मीन भी है—उनका नाम सानी भी है।'

जीनत पीली पड़ गई। बेगम चौंकीं—

'अरे !'

'बच्चे बच्चे ही होते हैं।'

हलीमन ने जैसे अपने आप को बताया।

'खैर जीनत, तेरे बच्चे होशियार हैं—अरे तू खाना क्यों नहीं खाती। सपना—खिलाना इसे भी। तुम लोग क्या करते हो ?'

'ले हलीमन, सारे कपड़े चीज़ें बक्स में बंद कर दे। कोई चीज़ बाहर न रह जाये। सजीना का घर तेरे रास्ते में पड़ता है। मियाँ से आज्ञा ले आती तो मिलती जाती उसे—अरे तू जी छोटा किये खड़ी है।'

बेगम को बोलते-बोलते ज़ीनत की हालत का पता चला।

'तेरा अब तक वहाँ दिल नहीं लगता।'

ज़ीनत ने कुछ न कहा। सपना सोच रही थी :

'जो शुरू से बेघर हों उनका दिल कहीं नहीं लगता। बेचारी ज़ीनत !'

उसका जी चाहा कि ज़ीनत से लिपट जाये और उसे बताये—

'ज़ीनत, आदम और हौवा की गलती की सज़ा हम करोड़ों बार भुगत चुके हैं। जाने क्षमा कब मिलेगी ? हम भुगत रहे हैं और हमें बनाने वाले की नज़र हमीं पर है। यह क्या कम है—क्या पता—क्या पता यह नज़र कभी हम पर कृपा कर दे।'

परन्तु सपना कह सकी तो इतना

'जीनत—आओ खाना खा लो—तुम्हें जाने में देर हो जायेगी।'

ज़ीनत ने जल्दी-जल्दी थोड़ा-सा खाना खाया। खाने की तरफ दिल न लगा ता बेगम साहिबा के पास विदा लेने चली गई। उन्होंने प्यार से सर पर हाथ फेरा, बच्चों को पुचकारा और चुप रहीं। वे उदास दिखती थीं, या उन्हें बीते दिन याद आ रहे थे।

सपना गले मिलने के बाद तक आँखें झुकाये रही, यहाँ तक कि ज़ीनत

खुदा-हाफिज कह कर चली गई।

'ज़ीनत ! जुदाई के क्षण को आँख उठा कर कौन देख सका।'

सपना खुद को समझाती काम-काज में लग गई। वह बहुत उदास थी।

□□

ज़ीनत से मुलाकात ने सपना के खयालों को नई दिशा दी थी। जीवन के कितने रंग हैं, इसमें कितने मोड़ आते हैं। वह अपने बारे में तरह-तरह से सोचती। यहाँ जीवन का सिर था न पैर, खिलौने की तरह लोगों के हाथों में पड़ी थी। उसे बहुत उकताहट महसूस होती। वह चाहती ज़ीनत की तरह उसका भी अपना घर हो। उसकी वापसी की भी किसी को बेहद प्रतीक्षा रहे। यद्यपि वह बेगम साहिबा को चाहने लगी थी, परन्तु अपने मस्तिष्क में वह हर समय तैयार रहती। पता नहीं कब सरदार साहब आ जायें और उसे जाना पड़े।

उनकी तरफ से अभी तक कोई सूचना न आई थी। बेगम साहिबा जब भी उनका ज़िक्र करतीं, यही कहतीं—

'खलंडरा है—बस सानी को आ लेने दे।'

भला सानी मियाँ आकर क्या कर लेंगे। इस व्यक्ति का बार-बार ज़िक्र सुनकर सपना के कान पक गये थे। बड़ी-बी उन्हें बहुत महत्व देती थीं तो क्या। साथ ही यह भी इच्छा थी कि कभी आ जायें तो दर्शन हो जायें। शायद खास चीज़ ही हो। फिर सपना को अपनी विवशताओं का तेजी से अहसास होता।

'हम दूसरों को देख-देखकर जीने वाले लोग हैं। आह, हम भी क्या

चीज हैं। 'कोई हँसता है तो हमारा ठहाका लगाने को जी चाहता है। कोई उदास हो तो जी-जान से गुज़र जाने की सोचते हैं।'

वह मेज पोश पर फूल बनाते हुये अपना मजाक उड़ाये जा रही थी। बेगम साहिबा अपने पलंग पर एक तक़िये से टेक लगाये बेटों को पत्र लिख रही थीं।

'ले देख लड़की—मैंने क्या लिखा है ? याद है पिछली बार सानी ने क्या पूछा था ?'

'मुझे तो याद नहीं।' सपना ने अधिक ध्यान न दिया।

'लड़की, तुझे अपने बारे में भी याद नहीं रहता।'

'अपने-आप को याद रखने का क्या लाभ, माँजी ?' उसने उनकी तरफ देखे बिना उत्तर दिया।

'लाभ-वाभ का मैं नहीं कहती—मेरे बेटे ने पता करना चाहा था हमारी होने वाली भाभी कैसी है ?'

'शक्ल की या मिजाज की ?' सपना ने हँस कर पूछा।

'ले भला मैं क्या जानूँ—मैंने जो समझा लिख दिया—सुन ना—बातें न बना—रंग गेहुँआ खिलता हुआ, आँखें काली बोलती हुई और—'

सपना खिलखिला कर हँस पड़ी, और बेगम को क्रोध आ गया।

'लड़की, तू तो मजाक उड़ाती है—मुझे जैसा लिखना आया लिख दिया।'

सपना को अपनी गुस्ताखी पर अफसोस हुआ। हँसी को दबाते हुये बोली,

'माँ जी—आँखें बोलती हैं ?क्या मेरी आँखें बोलती हैं ?'

उसके स्वर में सुनने की चाह थी। बेगम साहिबा ने पत्र तह करते-करते खोल लिया—

'हाँ—हाँ—मैं खूब जानती हूँ। कुछ चेहरों पर सुन्दर आँखें होती

हैं—परन्तु कुछ पहली नजर में देखने पर साधारण आँखें होती हैं जैसे तुम्हारी।'

सपना का दिल एक क्षण के लिए बुझ गया। हालांकि वह जानती थी उसके चेहरे का कोई भी नक्श अपनी सुन्दरता या असुन्दरता से चौंका देने वाला नहीं।

'हाँ माँ जी, आपने ठीक ही कहा।' वह फिर मेजपोश में लग गई थी।

'तुम्हारी आँखें साधारण हैं, परन्तु कुछ कहती और सुनती हुई—पता नहीं लड़की तुम क्या हो?'

'मैं क्या हूँ? आप क्यों सोचती हैं? साधारण लड़की हूँ।'

बेगम साहिबा पत्र पर नजरें जमाये रहीं।

'देख, मैंने तेरे बारे में सब लिख दिया है। नाम, बाप का नाम, पहचान आदि।'

वे अपनी बात का आप ही मजा ले कर हँसीं।

'संदिग्ध व्यक्तियों की तरह मेरा नाम और हुलिया लिखा जाने लगा।' सपना के मुँह से आह निकल गई।

उसने संदिग्ध व्यक्तियों के सम्बंध में मुंदरा के घर बहुत कुछ सुन रखा था। इस मंडली में वह भी तो शामिल रही थी। वह इस शब्द के घिनौने अर्थ से खूब परिचित थी और अब जब कि बड़ी-बी ने हुलिये का नाम लिया तो दिल के किसी कोने में दब कर बैठा हुआ डर उसके सारे शरीर में फैल गया।

कोई नई समस्या न पैदा हो जाये। वह काँपते-काँपते सोच रही थी।

उन दिनों जब वह मुन्दरा के पास थी, पिछवाड़े के घर की एक लड़की किसी के साथ भाग गई तो उसके लोगों ने अदालत में मुकदमा दर्ज करवा दिया। कितने मर्द संदेह में पकड़े गये। खूब-खूब पिटाई हुई। उस औरत ने रुपया पानी की तरह बहाया था। बड़ी कीचड़ उछली

और कई शरीफों की पगड़ियाँ भी इस गंदगी से भर गईं। बड़ी दौड़-धूप के बाद पता चला कि वह किसी दूसरे बड़े शहर के बाजार में बैठी है और धंधा कर रही है। सब को तसल्ली हो गई। शुक्र खुदा का किया कि शादी करके तो नहीं बैठ गई। काम ही करना है, यहाँ किया या वहाँ। गंदगी का कीड़ा आखिर गंदगी में ही जीवित रह सकता है।

अब सपना को यह संदेह हुआ, कहीं सरदार साहब और सानी मियाँ ने मिल कर उसके लिए कोई नया जाल न बिछाया हो। उन्होंने मुन्दरा को न बता दिया हो। जहरा आपा अपना वादा भूल न गई हों। सानी उसे पकड़वाना तो नहीं चाहते। परन्तु मैंने क्या अपराध किया है—निश्चय ही उन्होंने मुझे मुन्दरा के कोठे पर देखा होगा।

उसका दिल एक बार फिर डूब रहा था।

अल्ला, सानी को अपने इरादों में सफल न कर—सरदार साहब अपना लेते तो यह रोज-रोज का धड़का तो न रहता—मौसी कहीं उसे लेने आ न धमके—फिर क्या होगा! क्या होगा फिर?

कल क्या होगा?

इस एक प्रश्न में उलझते-जीते-साँस लेते दिन गुजार देने अब कठिन थे। उसने बेगम साहिबा को लिखने से मना भी न किया। क्या पता क्या सोचें? जो होनेवाला था वह होना ही था। वह चाहती थी यह समय जो वह बिना उद्देश्य के गुजार रही है एक साथ गुजर जाये। सारा मिल कर एक ही बार नष्ट हो जाये ताकि वह कुछ करने के योग्य हो सके।

सपना को हर पल एक धुन सवार रहती—उसे कुछ करना है। उसे कुछ करना चाहिये। वह क्या करे? क्या करे कि वह सब कुछ कर गुजरे जो उसे करना है।

इस बेकारी की पीड़ा और दुःख को वही महसूस कर सकती थी। अपने छोटे होने का ख्याल उसे सालता रहता। सपना की तबियत गिरी-गिरी रहने लगी।

□□

सरदार साहब की तरफ से वह निराश हो चुकी थी। उन्होंने उसे वहाँ डाल कर ऐसी चुप्पी साध ली कि बेगम साहिबा भी हैरान थीं। उनका व्यवहार पहले जैसा ही प्यार भरा था। घर के कामों में उलझ कर दिल लगाये रखने की आदत भी हो गई थी। परन्तु हर रात का गुजरना मुसीबत बन जाता।

वह रोज के कामों में व्यस्त थी कि बेगम साहिबा हाँफती-हाँफती उसके पास आई—

'सरदार साहब तुम्हें लेने आ रहे हैं।'

'सच ?'

वह आटा गूँधते-गूँधते रुक गई, 'कब ?'

'ओहो—बड़ो बेचैन हो लड़की !'

सपना ने नजरें झुका लीं। उसके मस्तिष्क में आशंकाओं और आशाओं ने एक साथ शोर मचा रखा था।

'अरे, मैं भी अजीब हूँ। तुम्हारे यहाँ होते हुये मैं कहीं हो आती। ख्याल ही नहीं आया। सबीना के यहाँ हो आती। भाभी से मिल आती।'

उन्हें अचानक कई प्रोग्राम सूझ रहे थे, जो वे सपना की उपस्थिति में कर सकती थीं।

'परन्तु तू क्यों जायेगी—मैं तो तुझे न जाने दूँगी—सरदार ने समझा

ही क्या है ? यूँ इतनी जल्दी भेजने वाली मैं भी नहीं—ले जाना है तो तरीके से ले जाये, हाँ—आता-आता कई दिन लगायेगा। बारिशें कुछ कम हुई हैं। मैं सोचती हूँ एक-दो जगह हो आऊँ—क्यों क्या ख्याल है ?'

उन्होंने सपना से पूछा।

'आप हो आयें। मैं यहाँ अकेली रहूँगी ? और यदि वे आ गये तो ?'

'आने दो। चार दिन यहाँ रह जायेगा तो क्या ? मुझे तो जाना ही चाहिये।'

काफी दिनों से ज़ीनत के अतिरिक्त कोई न आया था। सबीना ने कई बार कहला कर भेजा कोई आ कर मिल जाये। मैं ठीक हालत में होती तो अवश्य आती। सानी के लिये उसने अपने ससुराल में कई लड़कियाँ देख रखी थीं। परन्तु न वह आया न बेगम साहिबा उसकी इच्छा जान सकीं। पत्रों में वह हमेशा असली बात गोल कर जाता। और वे सपना को बता रही थीं,

'सानी आये न आये, सरदार तो आ रहा है। सरदार को मना ही लिया न आखिर उसने—सरदार सानी को मना लेगा—मित्र मित्र के काम आते हैं।'

वे फिर कहने लगीं,

'ले मैं जाकर देख ही आऊँ। मेरी भतीजी तो उसे बिल्कुल पसंद नहीं। हमेशा इनकार करता रहा। तू मेरा बक्स तैयार कर दे। सुबह हलीमन को साथ लेकर चली जाऊँगी। अब तो मेरा दिल कहता है मान ही जायेगा—तू दुआ कर।'

सपना कुछ भी न सोचती, खाना पकाती रही। सरदार साहब के आने की उसे प्रसन्नता न थी। जैसे जीने की इच्छा एकदम खत्म हो गई हो। वह केवल इस्तेमाल की चीज है, केवल इस्तेमाल को ! और इसका क्या लाभ ?

उसने अकस्मात अपने-आप से पूछा,

'आखिर क्या लाभ ?'

'हलीमन को साथ ले तो जाऊँ, तू अकेली रह जायेगी।' बेगम साहिबा का इरादा ढुलमुल होने लगा।

'यह तो आप ठीक कह रही हैं।'

'तो चल, तू भी साथ चल।' वे बिना सोचे बोलीं।

'तो घर में कौन रहेगा ?'

'तू और कौन—?'

'यहाँ भी रहूँ और साथ भी चलूँ ?'

सपना ने महसूस किया, बड़ी-बी सचमुच उसे आवारा आत्मा समझती हैं।

'अच्छा चलो नहीं जाती। तुम अकेली यहाँ कैसे रहोगी—आप ही आप हो जायेगा रिश्ता जहाँ होना होगा।'

'कोई काम अपने-आप नहीं होता। आप अवश्य जाइये। मेरी चिंता न करें। हलीमन को साथ ले जाइये—मैं चौकीदार की बीवी को पास सुला लूँगी। परन्तु आप पहले अमीन भाई या सबीना आपा के पति को कहला भेजतीं तो अधिक अच्छा रहता। दोनों में से कोई मोटर पर ले जाता।'

'अरे छोड़ो—मैं इस उम्र में उनके अहसान उठाती फिरूँ। बेशक वे मुझे दो कौड़ी का समझें—अच्छा था मैं उनको तलवार की धार पर रखती।'

कहते कहते उनकी बूढ़ी आँखें भीग गईं।

'देख ले, अब भी छोटे की खातिर जा रही हूँ। मेरे बच्चों को मेरा ख्याल नहीं। इनसे अच्छी तो जीनत है। इस घर के लिये मरती है। देखा था जब वह जा रही थी, कैसी उदास थी?'

बेगम साहिबा के मुँह से जीनत के लिए अच्छे शब्द सुन कर सपना के

दिल में बड़ी-बी के लिये प्यार उमड़ आया। गुज़रे दिनों को याद करके वे उदास हुई जाती थीं। उनकी आँसुओं में गुन्थी हुई आवाज को सुन कर उस मुसाफिर का ख्याल होता था जो रेगिस्तान में अपने काफिले के साथ अपने ही ख्यालों में खोया चलता रहा हो और अचानक उसने पाया हो कि वह बाकी लोगों से बिछुड़ गया है। फिर वह अकेला जिस-तिस को आवाज़ें देता फिरा हो, परन्तु सुनने वाला वहाँ कोई न हो।

सपना ने उनकी हालत को सोचते हुए कहा—

'आप अपने बच्चों को अपनी मौजूदगी का अहसास दिलवाइये। उनको बताइये कि उनको आपकी ज़रूरत है। मेरा ख्याल है सबीना आपा को आज ही तार दे दिया जाये। फिर देखिये, जिस हाल में होंगी भागी चली आयेंगी।'

'न-न, ऐसा कभी न करना, मेरी बच्ची परेशान हो जायेगी।'

बेगम साहिबा के ख्याल तुरन्त बदल गये। इसके बाद वे जो कुछ भी कहती रहीं सपना ने ध्यान देना आवश्यक न समझा। फिर पता नहीं वे कब उसके पास से उठ कर चली गईं।

□□

दूसरा दिन निकलते ही वे अपना बक्स तैयार किये हलीमन के लड़के की प्रतीक्षा कर रही थीं कि हलीमन ख़ुद चली आई।

'देखो हलीमन, हम तुम्हारी छोटी बीबी के पास जा रहे हैं। तुम्हारा लड़का कहाँ रह गया, बुलाओ उसे।'

'इस सर्दी में आप अकेली जायेंगी, मैं तो न जाने दूँगी। कहिए तो मैं साथ चलूँ। उन लोगों को सूचना दे दी है ?'

हलीमन ने कहा।

'हलीमन, मैं चाहती हूँ अचानक जाऊँ ताकि मेरी बेटी को पता चले कि उसकी माँ अब भी हिम्मत रखती है। मैं आज भी वही हूँ जो पहले थी।'

सपना रसोई में उनके लिये नाश्ता बना रही थी। उनके जाने के ख्याल से उसका दिल काँपा। इतना बड़ा घर और जिम्मेदारी, और हलीमन उनके साथ जाने को कह रही थी।

'मेरे लिये क्या सोचा है?'

उसने वहीं बैठे-बैठे पूछा।

'ओहो, लड़की, तुझे हर समय अपनी पड़ी रहती है। खुद ही तो चौकीदार की बीवी को पास रखने को कह रही थी। मैं सब को कहे जाती हूँ। सरदार साहब आयें तो मेरे आने तक रोक लेना। और जो कहीं सानी आ जाये—क्या खबर वह आ ही जाये—मैं न भी जाऊँ तो क्या फर्क पड़ता है!'

वे फिर रहने वाली थीं।

परन्तु कितनी ही बातों के बाद बेगम साहिबा की सवारी विदा हुई। सपना ने सुख का साँस लिया। कल से तलवार की तरह सिर पर लटकी हुई थीं, जाऊँगी—नहीं जाऊँगी।

अब वह अपने भविष्य के बारे में और सरदार साहब के सम्बन्ध में सोच सकती थी। परन्तु अकेलेपन का फिर अहसास होने लगा था और दिल भटकने लगा था।

चौकीदार की जवान बीवी सुस्त और मूर्ख थी। उसका पास होना न होना बराबर था। वह तमाम दिन घर के कामों में घिरी रहती। छोटे-छोटे दो बच्चों का साथ था। पहले दिन अपने तमाम कुनबे समेत सपना के कमरे में सोने के लिए चली आई। लिहाफ़ मुँह पर डाल कर जो सोई है तो न अपना होश न बच्चों का पता। सपना को सारी रात

नींद न आई। कभी बड़ा रोने लगता, कभी मुन्नी चीखती, और माँ नींद में ही बड़बड़ाती—

'सो भी जा, हरामी कहीं का—'

उनके चिल्लाने से कोठी के भरा-पुरा होने का संदेह होता था। सपना को क्रोध आता रहा। उसका जी चाहता था चौकीदार की बीवी को चुटिया से पकड़ कर खड़ा कर दे।

दूसरी रात तंग आकर उसने अपना बिस्तर ऊपर के कमरे में डाल लिया। नीचे की सारी जगह चौकीदार के हवाले हो गई। हलीमन का लड़का और पति दिन में कई बार आकर पूछ जाते थे किसी तरह का कष्ट तो नहीं, कोई जरूरत हो तो हुक्म करें।

□□

उन्हें घर से गये एक सप्ताह हो चुका था। सर्दियों की बारिश का अन्तिम दौर शुरू होने वाला था। आकाश पर बादल जमा होने लगे थे। मौसम की खराबी को देखते हुए आशा की जा सकती थी कि बेगम साहिबा बारिशें गुजार कर ही वापस आयेंगी। सपना को सरदार साहब की बहुत प्रतीक्षा थी। काश वे बेगम साहिबा की अनुपस्थिति में आयें ताकि खुल कर बातचीत हो सके। वह ऊपर की खिड़की खोले सारा दिन रास्ता देखती रहती। किसी और काम में दिल न लगता था। हलीमन की अनुपस्थिति में माली अपने हाथ से खाना पकाता। उसे बड़ा ही अजीब लगता। लड़का दिन भर बाग में काँट-छाँट में व्यस्त नज़र आता। सड़क पर से इक्का-दुक्का लोग गुज़रते। कभी कोई इक्का—कोई मोटर, कभी कोई साइकिल सवार।

फिर उसे ख्याल आया कि वाकई उसके माँ-बाप आपस में बहुत प्यार रखते थे। जैसे एक-दूसरे के लिए बने हों। जब से उसे सरदार साहब के माध्यम से पता चला कि तारा उसकी सगी माँ न थी और पूना उसका सगा बाप न था, उसे एक नई उलझन रहने लगी थी। वह इस यथार्थ के बारे में विस्तार से जानना चाहती थी। परन्तु वे आ ही नहीं रहे थे। उसने दिल में तय कर लिया कि इस बार तो सरदार साहब से अवश्य रूठेगी। और यदि कहीं अब्बा-मियाँ मिल जाते तो कितना अच्छा होता। वह सरदार के पास एक दिन न ठहरती। बड़े आदमी हैं, इनको समझना कितना कठिन है।

सामने से डाकिया आता दिखाई दिया। उसने चिल्ला कर कहा—

'बाबा पूछना—यदि कोई हमारी चिट्ठी हो तो।'

'बीबी, इधर की चिट्ठी इधर ही डालेगा।'

वह भागी-भागी नीचे पहुँची। डाकिया लेटर-बक्स में चिट्ठी डाल कर जा चुका था। बेसब्री से खोल कर पढ़ा। बेगम साहिबा ने लिखा था।

दो दिन के अंदर-अंदर पहुँच रही हूँ। इसलिये वह कोई चिन्ता न करे। सपना को तसल्ली भी हुई और निराशा भी। घरवाली घर आ जाये तो अच्छा ही है। और निराशा इसलिये हुई कि इनकी अनुपस्थिति में सरदार साहब आ जाते तो खुल कर दो बातें हो सकती थीं। पर खैर, वे दो दिन में आ रही थीं। अभी आशा टूटी न थी। संभव है वे आज शाम तक आ जायें। नहीं तो कल। और माली पास खड़ा पूछ रहा था।

'बीबी, किसका पत्र है ? खैरियत तो है ?'

'बाबा, तुम्हारी बेगम का।'

वह मुस्कराया।

'हमारी बेगम क्यों कहती हैं बीबी, जोरू कहें।'

'बाबा, तुम हलीमन को इतना चाहते हो। हलीमन को तो परवाह भी नहीं।'

वह सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते बोली।

'औरतों की चाहत ऐसी ही होती हैं बीबी, वे किसी को नहीं चाहें तो अच्छा—'

सपना बूढ़े की दार्शनिकता से सहमत न थी। वह ऊपर कमरे में जा कर बिखरी हुई किताबों को अलमारी में सजाने लगी। अभी थोड़ी देर पहले तस्वीरें देखने के शौक में उसने सारी किताबें उलट-पलट कर रख दी थीं। उसे किसी के आने की बहुत प्रतीक्षा थी।

□□

आज हवा पागल हुई फिरती थी। ज़ोर-ज़ोर से पट बजाती, ठहाके लगाती, कभी चीखती रात के मोटे काले दोशाले को फड़फड़ा रही थी। और सर्दी से दाँत बज रहे थे।

वह शाम को जल्दी ही बिस्तर में लेट गई। पकाने-खाने को दिल न किया। क्या करे? वह ऊपर की मंजिल में अकेली थी। आज क्यों ऊपर आ गई? नीचे बिस्तर मँगवा लिया होता। वह खुद से पूछने लगी।

इतने दिनों के बाद पहली बार उसका जी चाहा कि ज़हरा के नाम पत्र लिखा जाये। चाहे न भेजे, लिखना तो चाहिये ही। कभी मिलीं तो दिखाऊँगी, देखा आपा, मैं तुम्हें कितना याद किया करती हूँ। और हाँ आपा, मुझे मेरे अकेलेपन ने डस लिया। और मेरी इच्छा ने मुझे नीलाम कर दिया। इच्छा क्या? यही कि जीना चाहती हूँ। परंतु दिन बड़े भारी

और बोझिल होते जाते हैं। दिन कहाँ ? मैं खुद बोझिल हूँ। समय का साथ नहीं दे सकती। जल्दी-जल्दी हाँफने लगती हूँ। क्षण हैं कि उड़े जाते हैं। जो होना है हो नहीं पाता—और—

अभी कलम चल रहा था कि एक जोर के झक्कड़ से शायद बिजली की तारें कट गईं, और हर तरफ अँधेरा छा गया। तेज हवा से कठिनाई से बाहर निकल कर उसने चौकीदार को आवाज दी। वह लेम्प लिये आया।

'आप डरती हैं तो नीचे आ जायें!'

वह निकट आ कर बोला।

'नहीं—डरने को कोई बात नहीं। यहाँ मैंने आतिशदान में आग सुलगा रखी है। नीचे नये सिरे से जलानी पड़ेगी। तुम लेम्प रख दो, हवा में क्यों खड़े हो, जाओ—'

'आप हुक्म दें तो बीवी को ऊपर भेज दूँ। बच्चों को अपने पास रख लूँगा।'

उसे सपना की पहली शिकायत का ख्याल था।

'मुझे किसी बात से डर नहीं लगता। तुम जाओ—शुक्रिया—'

वह सीढ़ियाँ उतरने लगा तो बोली—

'चौकन्ने रहना चौकीदार। ऐसा न हो कोई बाहर खड़ा आवाज़ें देता रहे और आँधी के जोर में हमें सुनाई न दे। और सब कुंडियाँ आदि तुमने भी एक बार देख ली हैं न ?'

चौकीदार 'जी हुज़ूर-जी हुज़ूर' कहता नीचे उतर गया। सपना कमरे में आई। आतिशदान में आग ठीक की और फिर लिखने बैठ गई।

आज की रात भयानक है। परन्तु मैंने इससे कहीं अधिक भयानक रातें देखी हैं। जब वह लोग जंगल में रहते थे तो कैसे-कैसे तूफान आया करते थे। परन्तु वहाँ उनका अपना घर था। जैसे पेड़ पर किसी परिंदे

का घोंसला—।

फिर एक तूफान आया और उनका घोंसला तिनका-तिनका हो कर बिखर गया।

वह ऊटपटांग लिखती चली गई। फिर बत्ती मद्धम करके सोने की चेष्टा करने लगी। हवा कुछ थम चुकी थी। नीचे से किसी के बातें करने की आवाज आ रही थी। चौकीदार अपनी बीवी से उलझ रहा होगा या बच्चे ने गंदगी फैला दी होगी।

'उँह क्या मुसीबत है !'

लिहाफ को अच्छी तरह उड़स चुकने के बाद उसे ख्याल हुआ कि उसके हाथ-पैर सर्दी से एकदम ठंडे हैं—और बिस्तर कितना गर्म और नर्म था।

बिस्तर से बड़ी कोई चीज नहीं।

वह अपने-आप बड़बड़ाई। आराम और आस-पास की चीजें उसके विचारों को एक बार फिर पिछले दिनों की तरफ मोड़ ले गईं। आज की हवा के कंधों पर सवार होकर वे सारे विचार मस्तिष्क में लौट आये जिन्हें वह भुलाने की चेष्टा किया करती थी। दुहराते रहने से अफसोस होता था।

'अब्बा-मियाँ ? अब्बा-मियाँ तुम कहाँ हो ?'

उसने कई बार पुकारा।

'अब्बा-मियाँ। मैं तुम्हारी तरफ से कभी निराश नहीं हुई। पता नहीं मेरा दिल क्यों कहता है तुम जीवित हो। और एक दिन मुझसे आ मिलोगे !'

हवा का तेज झोंका आया और लेम्प की मद्धम रोशनी काँप गई। दीवार पर लगी हुई तस्वीरें और कैलेंडर सब काँप गये। आतिशदान में चिंगारियाँ कभी जी उठती थीं, कभी मर जाती थीं—वह खुली आँखों अपने आस-पास का निरीक्षण करती डर से हाँफने लगी और अपना

चेहरा लिहाफ में ढाँप लिया।

उफ, मैं कितनी अकेली हूँ, और तुम सब कहाँ हो? तुम सब तो मुझे जीवन की राह में मिले—तुम कदम गिन-गिन कर मेरे साथ चले। मैं अभी तक चल रही हूँ। मुझे तुम्हारी अब भी आवश्यकता है। वह इंसान झूठ बोलता है जो कहता है मुझे किसी की आवश्यकता नहीं—जब अकेलापन डसता है तो उसका विष किसी-किसी पर तो प्रभाव नहीं करता, परन्तु किसी-किसी को बुरी तरह से डगमगा देता है—मैं मरे हुओं को नहीं बुलाती, जिंदों को पुकारती हूँ—उन सब को जिनकी आँखों में मैंने प्यार की थोड़ी-सी झलक भी देखी—जहरा—जहरा—आपा—

उसके साथ ही उसे जंगल की पुरानी तूफानी रात भी याद आ गई।

मैं तुम्हें भी याद करती हूँ। तुम्हारा अस्तित्व मेरे लिये दिये की लौ में देखी हुई एक झलक है। यह झलक घूँघट में भी आँखमिचौलो खेलती रही और कैद में भी—हाँ, तुम कहाँ हो—? मैं पूछती हूँ तुम किधर हो? और आप सरदार साहब—और वह नींद में हिचकोले खाने लगी—

कोई तो आ जाओ—आ जाओ न!

कहीं किसी ने पुकारा—

'चौकीदार—चौकीदार—'

हल्की फुहार पड़ने लगी थी।

'मैं आ गई—लो मैं आ चुकी हूँ!'

उसने लिहाफ मुँह से उतारा। कोई नीचे आंगन में खड़ा पूछ रहा था—

'ऊपर कौन है? खिड़की में मद्धम रोशनी कैसी है?'

सपना का दिल आशा से धड़कने लगा।

'सरदार साहब आ गये!'